पुष्यमित्र
गुरुदत्त

भारती साहित्य सदन - नई दिल्ली

भूमिका

मानव-चरित्र राजनीति की आधारशिला है और चरित्रहीनता राजनीति मे अवतरित होकर देश और राष्ट्र के ह्रास मे कारण होती है। चरित्रहीनता को राजनीति मे अवतरित होने मे समय लगता है। यही कारण है कि राज्य मे उच्छृंखलता अथवा भूल तुरन्त प्रभाव उत्पन्न नहीं करती।

इसको पाप का घडा भरना कहते है। यह माना जाता है कि घड़ा भर कर ही उछलता है। यही बात अशोक की नीति के विषय मे कही जा सकती है। अशोक ने राजनीति मे एक सम्प्रदाय का विशेष समर्थन किया था और वह सम्प्रदाय सन्यास धर्म को मानने वाला था, जो राज्य-धर्म कदापि नही हो सकता।

पंचशील का राज्य-कार्य मे चलन अव्यवहारिक है। जहाँ तक किसी एक राज्य का, अपने देश के कार्य से सम्बन्ध है, पंचशील का एक सीमा तक, प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु अन्य राज्यों, विशेष रूप मे अन्य राष्ट्रो से व्यवहार के समय तो पचशील सदा असफल रहा है।

मौर्यवशीय अशोक ने बौद्ध पचशील का प्रयोग अन्य राष्ट्रों के साथ भी किया। जब तक तो चन्द्रगुप्त और बिन्दुसार के काल का तथा अशोक के अपने जीवन के पूर्व काल का दबदबा बना रहा, राज्य मे शान्ति बनी रही। ज्यो-ज्यो वह दबदबा पुराना और प्रभावहीन होता गया, पहिले देश के भीतर विद्रोह हुआ और पश्चात् विदेशीय आक्रमण होने आरम्भ हो गये।

जब-जब अशोक के उत्तराधिकारी यह अनुभव करते रहे कि उनकी पंचशील की नीति राज्य और राष्ट्र के ह्रास मे कारण हो रही है, तब-तब बौद्ध सम्प्रदाय के प्रवक्ता उनको प्रेरणा देकर शान्ति और आत्मोन्नति के वाग्जाल मे फँसा कर अकर्मण्यता मे रत करते रहे।

परिणाम यह हुआ कि अशोक के साम्राज्य का विघटन, जो उसके जीवन-काल मे ही आरम्भ हो गया था, उत्तरोत्तर बढता गया।

मौर्यवंश के अन्तिम अधिकारी के राज्यकाल मे तो मौर्य साम्राज्य सुकडकर एक छोटा-सा राज्य ही रह गया था। इस समय विदेशीय आक्रमणकारी भी बढते-बढते साकेत तक पहुँच गये थे, परन्तु राज्य की ओर से उनको रोकने का उपाय तक नहीं किया गया।

तब मौर्यवंश को समाप्त किया गया और उसके स्थान पर एक ब्राह्मण परिवार जिसका नाम शुंग था, राज्यगद्दी पर आया। शुंग परिवार की स्थापना करने वाला पुष्यमित्र था।

इतिहास मे पुष्यमित्र के विषय मे बहुत कम लिखा मिलता है। इस पर भी जो कुछ मिलता है, वह इस प्रकार है—

हर्षचरित मे मौर्य वश के अन्तिम राजा बृहद्रथ की हत्या के विषय मे लिखा है—

"पुष्यमित्रस्तु सेनानी समुद्धृत्य बृहद्रथम्।' सेना का निरीक्षण करते समय राजा का वध कर डाला।

"सम्भवत बृहद्रथ अत्यन्त दुर्बल राजा था (प्रज्ञा दुर्बल) और पुष्यमित्र को सारी सेना की पूरी सहायता उपलब्ध थी।

"शुंग, वर्ण के ब्राह्मण थे। विख्यात वैय्याकरण पाणिनी इनका सम्बन्ध भारद्वाज गोत्र से स्थापित करता है और आश्वलायन श्रौत सूत्र मे उनका आचार्य कहा गया है।"

आगे चलकर इतिहासकार लिखता है,

"हमे ठीक ज्ञात नहीं कि (आक्रमणकारी) यवन सेनापति कौन था। कुछ विद्वान् उसको डेमेट्रियस और अन्य उसको मिनैण्डर मानते हैं।

"अश्वमेघ का अनुष्ठान पुष्यमित्र के राज्यकाल की एक महत्त्वपूर्ण घटना थी······पतंजलि स्वयं इस यज्ञ मे ऋत्विज बने।······

"यदि हम दिव्यावदान और तिब्बती इतिहासकार तारानाथ का प्रमाण मानें तो यह स्पष्ट है कि पुष्यमित्र का अधिकार पंजाब मे जालन्धर और स्यालकोट तक था······और मालविकाग्निमित्र के अनुसार पुष्यमित्र के साम्राज्य मे विदिशा और नर्मदा तक के दक्षिण प्रान्त भी सम्मिलित थे।"

यह उद्धरण डॉक्टर रमाशकर त्रिपाठी के 'प्राचीन भारत का इतिहास' मे से लिया गया है।

वास्तव मे इतिहास अपने को दुहराता है। जब-जब भी पचशील जैसे सिद्धान्त का असीम प्रयोग राजनीति मे हुआ है, तब-तब ही देश विदेशीय तथा अराष्ट्रवादियो से क्लान्त हुआ है।

आज भी भारत मे एक ऐसा ही परीक्षण हो रहा है। महात्मा गांधी ने इस बौद्ध पंचशील का रूपान्तर अहिंसात्मक व्यवहार तथा आन्दोलन का प्रचलन देश मे किया। इस प्रचलन से पूर्व भी स्वराज्य आन्दोलन देश मे चल रहा था और उसका प्रभाव भी हो रहा था। यदि रॉलेट कमेटी की रिपोर्ट पढी जाय तो ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि १६०१ से आरम्भ हिंसात्मक आन्दोलन का प्रभाव अग्रेजी मस्तिष्क पर अहिंसात्मक के प्रभाव से अधिक हुआ था। अग्रेज भयभीत थे और राज्य मे हिन्दुस्तानियो को अधिक-और-अधिक सुविधाएँ देते जाते थे। यह कहना असगत प्रतीत नहीं होता कि यदि वह दबाव जो क्रान्तिकारी एक ओर से और नरम दल वाले, विधानात्मक आन्दोलन द्वारा, दूसरी ओर से डाल रहे थे, जारी रहता, तो स्वराज्य १६३५ तक मिल जाता। यह स्वराज्य देश-विभाजन के बिना होता और देश मे देश-प्रेम और देशीय सस्कृति और परम्पराओ मे निष्ठा की स्थापना रहती। परन्तु महात्मा गांधी ने अहिंसात्मक आन्दोलन से एक वर्ष मे स्वराज्य ले देने का वचन देकर ऐसी भ्रान्ति उत्पन्न की कि सी० आर० दास और पण्डित मोतीलाल नेहरू जैसे बुद्धिमान वकीलो से लेकर गाँव के भगी, चमार तक महात्मा गांधी के पीछे लग गये। सबने

महात्माजी के नेतृत्व मे न्यूनाधिक त्याग और प्रयत्न किया।

गाँधीजी के आन्दोलन का यह चमत्कारक विस्तार वैसा ही हुआ, जैसा महात्मा बुद्ध के काल मे बडे-बडे महाराजा, राजकुमार और राजकुमारियाँ अपना घर-बाहर छोडकर, शिर मुंडा, पीत-वस्त्र धारण कर महात्मा के पीछे चल पडे थे। महात्मा बुद्ध ने एक ही जन्म मे और बिना ज्ञान प्राप्त किये तथा बिना भले कर्म किये मोक्ष-प्राप्ति का आश्वासन दिया था। महात्मा गाँधी ने एक वर्ष मे ही एक करोड रुपया और एक करोड़ स्वयं-सेवक एकत्रित कर स्वराज्य प्राप्ति का विश्वास दिलाया था।

दोनो का आश्वासन मिथ्या था, परन्तु कौन है जो अनायास खीर पा जाने के लोभ को छोड़ सकता है? सफलता और असफलता का विचार छोड़ भी दिया जाय तो भी मिथ्यावाद के प्रचार से मानव-चरित्र मे पतन अवश्यम्भावी है। जो कुछ देश मे सदैव तथा सर्वत्र पचशील के सिद्धान्त ने उत्पन्न किया, वह ही महात्मा गाँधी के सर्वत्र और सर्वदा अहिंसा के आचरण ने किया। दोनो ने अन्यायाचरण, असत्य भाषण, कुटिलता और क्रूरता करने वालो का विरोध भी छोड दिया।

देश विभाजन हुआ। इसका विरोध नहीं हो सका। प्रत्युत देश विभा-जन की माँग करने वालो को सिर पर उठाकर मान और आदर का पात्र माना गया। इतना ही नहीं कि जो देश विभाजन की माँग तलवार की नोक पर करते थे, उनको सहन किया गया, प्रत्युत उनके अत्याचार के शिकार हिन्दुओ को दुष्ट, देशद्रोही और भीरु कहकर सम्बोधित किया गया।

यह सदा और सर्वत्र अहिंसा का सिद्धान्त मानने वालो का व्यवहार रहा है कि कलकत्ता मे डायरेक्ट ऐक्शन कराने वाले मिस्टर जिन्ना को क़ायदेआजम मानते थे और देश के लिए सर्वस्व निछावर करने वाले सावर-कर और भाई परमानन्द इत्यादि व्यक्तियों को गद्दार कहकर सम्बोधन करते थे।

अहिंसावादी सर्वदा और सर्वत्र हिंसा को मानने वाले प्रबल विपक्षियों से मित्रता का व्यवहार करते देखे जाते हैं। विरोधियों के जूते खाते हुए

भी उनके सामने चीं-चीं कहने नहीं सकते, परन्तु अपने हितैषियों की निन्दा किया करते हैं। यही बौद्ध करते थे और यही गांधीवादी करते आये हैं।

यहाँ स्थान नहीं कि १९२१ से लेकर आज तक की गांधीवादी नीति की बौद्ध मीमांसा से समानता प्रकट करने के लिए उदाहरण दिये जाएँ। किंचित् गम्भीरता से इस काल के इतिहास और उसके परिणामों का अध्ययन किया जाय तो यह, स्वर्णसम चमचमाता, पंचशील का सिद्धान्त वास्तव में पीतलसम प्रतीत होगा।

इस सिद्धान्त का एक आश्चर्यकारक परिणाम यह हुआ है कि गांधीजी का मानस पुत्र पण्डित जवाहरलाल हुआ है और पण्डित जवाहरलाल का मानस पुत्र कोई भारतीय स्टालिन होने वाला प्रतीत हो रहा है।

गांधीजी का अहिंसात्मक सिद्धान्त का रूपान्तर पण्डित जवाहरलाल का पंचशील है। पंचशील के प्रभाव से ही पण्डितजी रूस और चीन को तो पचशील के अनुयायी मानते हैं और देश तथा विदेश के डेमोक्रेटिक सत्ताओं को, जो मुख से पचशील का व्यर्थ घोषण नहीं करते, शान्ति के शत्रु मानते हैं।

इति। इस विचार को प्रकट करने के लिये पुष्यमित्र तथा तत्कालीन परिस्थितियों को आधार बनाकर यह उपन्यास 'पुष्यमित्र' लिखा गया है।

इसमें इतिहास कम और कल्पना अधिक है ही। इस पर भी कल्पना में आधार है। सिद्धान्तों और विचारों में संघर्ष तो वास्तविक ही है। पच-शील का विकल्प है, 'यथायोग्य व्यवहार।"

इसके अतिरिक्त यह उपन्यास है। इससे किसी से द्वेष अथवा किसी के मान-अपमान करने का आशय नहीं।

—गुरुदत्त

अब यज्ञशाला में यज्ञ रचाया गया। जब संस्कार समाप्त हुआ तो सब आये हुए अभ्यागतों ने बालक को आशीर्वाद दे बालक के माता-पिता को बधाइयाँ दीं। इस पर अरुणदत्त ने उठकर, हाथ जोड़ सबका धन्यवाद कर दिया।

मिष्ठान्न वितरित हुआ और सब लोग प्रसाद के पत्तों से बने दोनों में मिठाई ले-लेकर विदा हो गए। पुष्यमित्र भी अपने गुरु के साथ विदा होने लगा तो भगवती की आँखों में अश्रु भर आये।

आचार्य श्वेताम्बर ने देवी भगवती की आँखों को भरते देखा तो कहा, "देवी! तुम्हारा बालक महायशस्वी, तेजोमय और प्रतापी होने वाला है। इस तेजस्वी बालक से संसार का कल्याण हो, ऐसा यत्न करना है।

"यह यहाँ माता-पिता के लाड-प्यार में होना सम्भव नहीं। बारह वर्ष तक यह मेरे संरक्षण में रहेगा और पश्चात् लौटकर माँ के वात्सल्य-पूर्ण हृदय को शान्ति प्रदान करेगा।

"देवी! समाज के इस विधान को धैर्य और शान्ति से स्वीकार करो।"

भगवती अपनी दुर्बलता पर लज्जा अनुभव करने लगी। उसने आँचल से अपने चक्षु पोंछे और अपने पुत्र के सिर पर हाथ फेर आशीर्वाद दिया। पश्चात् आचार्य श्वेताम्बर बालक पुष्यमित्र को लेकर अरुणदत्त के गृह से विदा हो गया।

उस समय पाटलीपुत्र में मौर्य वंशज देववर्मन् का पुत्र शतधन्वन् राज्य-गद्दी पर विराजमान था। जो कुछ राज्यकार्य में बौद्ध प्रभाव का ह्रास महाराज सम्प्रति के काल में हुआ था, वह बौद्धों को पुनः प्राप्त होता जा रहा था। सम्प्रति के काल में ब्राह्मणों और शैव मतावलम्बियों को जो मान प्राप्त हुआ था, वह धीरे-धीरे विलुप्त होता जा रहा था।

इस पर भी सम्प्रति के काल से राज्य-परिवार का एक पुरोहित होता था जो राज्य-परिषद् का सदस्य माना जाता था।

बौद्धों का प्रभाव इतना था कि राज्य-परिषद् के सात सदस्यों में तीन बौद्ध थे। अन्य चार में से एक महाराज स्वयं थे, एक अरुणदत्त था।

महामात्य भी एक ब्राह्मण था और सेनापति क्षत्रिय ।

महाराज अशोक के नाम की महिमा गानकर बौद्ध सदैव महाराज शतधन्वन् को महाराज अशोक के पद-चिह्नों पर चलने की प्रेरणा देते रहते थे । मगध-साम्राज्य की आय उतनी नही रही थी, जितनी अशोक के काल मे थी । इस पर भी बौद्ध-विहारो को दान-दक्षिणा उसी स्तर पर दिलवाई जाती थी ।

: २ :

पुष्यमित्र अभी सात-आठ वर्ष का बालक ही था और उसका अभी उपनयन-सस्कार भी नहीं हुआ था कि एक दिन वह माँ के कहने पर कोपीनो के लिए वस्त्र क्रय करने पिता के एक परिचित वस्त्र-विक्रेता के यहाँ गया । जाते हुए वीथिका मे ही एक स्त्री मैले, चिथडे हुए वस्त्रो मे, नगे पाँव, एक बालिका को अँगुली पकडाये, बहुत थके हुए पगो से चलती हुई आती दिखाई दी । पुष्यमित्र ने समझा कोई भिखारिन होगी । इस कारण उसकी ओर ध्यान दिए बिना वह उसके समीप से निकल कर आगे बढा । परन्तु उस स्त्री ने अन्य कोई पुरुष वीथिका मे न देख उसको पुकार लिया । उसने कहा, "बालक !"

पुष्यमित्र खडा हो उस स्त्री का मुख देखने लगा तो उसने पूछा, "राज-पुरोहित का गृह कौन-सा है ?"

"क्या काम है उनसे ?" पुष्यमित्र ने आश्चर्य मे पूछा ।

स्त्री ने तनिक डाँट के भाव मे कहा, "राजपुरोहित तुम हो क्या ?"

"नही, वे मेरे पिता हैं ।"

"काम तुम्हारी माँ से है, तुमसे नही ।"

इस डाँट से पुष्यमित्र ने नम्र हो अपना गृह बता दिया । वह स्त्री उस ओर चल पडी ।

पुष्यमित्र राजमार्ग पर वस्त्र-विक्रेता की दुकान पर पहुँचा । इस समय श्रावको की एक मण्डली राजपथ पर से होती हुई उस ओर आती दिखाई दी । इस मण्डली मे पाँच सौ के लगभग श्रावक थे । ये पीत-वसनधारी,

पाँव से नगे, सिर मुँडे हुए और बौद्ध सघ मन्त्र—'बुद्ध शरण गच्छामि धम्म शरण गच्छामि, सघ शरण गच्छामि' का उच्चारण करते हुए जा रहे थे। पथ के दोनो ओर आते-जाते नागरिक इनको देखते, माथे पर त्योरी चढाकर परस्पर कहते, 'व्यर्थ मे खाने वाले, कोई भी सार्थक काम करने मे अयोग्य, ये पुन इस नगर मे आए हैं। अवश्य कोई आडम्बर खडा करेंगे।'

इस पर भी श्रावको की मण्डली इन कहने वालो की टीका-टिप्पणी की ओर कुछ भी ध्यान न देती हुई, अपनी धुन मे लीन, आगे और आगे बढती चली जा रही थी। जब यह मण्डली राजपथ पर से निकल रही थी, तो राजपथ के दुकानदार दुकानो से बाहर निकल, आदरयुक्त मुद्रा बनाकर इनको देखते थे। वैसे तो कोई भी दुकानदार इनको देख प्रसन्नता अनुभव नहीं करता था।

जिस दुकान पर पुष्यमित्र वस्त्र क्रय करने आया था, वह दुकानदार भी श्रावको की मण्डली आती देख खडा हो गया था। जब सब श्रावक मन्त्र-गान करते हुए आगे बढ गए तो वह दुकानदार एक दीर्घ नि श्वास छोड पुष्यमित्र से पूछने लगा, "बालक ! क्या चाहिए ?"

पुष्यमित्र ने अपनी माँग उपस्थित करने के स्थान पूछ लिया, "कौन थे ये ?"

"भगवान जाने कौन थे। आज इस राज्य मे पीत वस्त्रो की महिमा है। जिसने दो टके का रग ले वस्त्र रग लिए, उसका आदर होना ही चाहिए।"

पुष्यमित्र अभी बहुत ही कम आयु का था। इस पर भी समझ रहा था कि दुकानदार क्या कह रहा है ? वास्तव मे वह उसे पसन्द नही करता। इस कारण उसने पुन पूछ लिया, "क्यो ?"

"तुम नही जानते बालक ! यह राजाज्ञा है। जब ये लोग किसी पथ पर निकलें, तो प्रजा को आदरयुक्त मुद्रा मे खडे हो इनका स्वागत करना चाहिए और जब तक ये उस पथ पर से निकल न जाएँ, इस मुद्रा मे खडे

रखना चाहिए।"

यह बात तो पुष्यमित्र के बाल-मस्तक को भी नहीं सुहाई। उसने कहा, "वाह! जिसका आदर तुम मन से नहीं करते, उसके लिए दिखावे की क्या आवश्यकता है? क्या हमारे मनों पर भी राजा राज्य करता है?"

"बालक! हम तो वैश्य हैं। यहाँ के तो ब्राह्मण भी इस अत्याचार का विरोध करने की सामर्थ्य नहीं रखते। जब देश में ब्राह्मण ही तेजहीन हो गये हैं, तो फिर अब्राह्मणों का मान करना आवश्यक हो गया है।"

पुष्यमित्र कोपीनों के लिए वस्त्र क्रय करने आया था, परन्तु उस दुकानदार ने पूर्ण ब्राह्मण वर्ग की निन्दा की तो वह मन-ही-मन जलभुन गया, परन्तु वह इसका उत्तर नहीं जानता था। इस कारण चुप हो, वस्त्र क्रय कर अपने घर को लौट पड़ा। मार्ग में वह विचार करता चला जा रहा था कि क्या सत्य ही ब्राह्मण तेजहीन हो गए हैं?

उसने अपने पिता से यह सुन रखा था कि एक सच्चे ब्राह्मण में मिथ्याचरण को भस्म कर देने की शक्ति होती है। यदि यह सत्य है तो, वह मन में विचार करता था कि दुकानदार का कहना सत्य है। यदि इस काल में कोई सच्चा ब्राह्मण होता तो यह अन्याययुक्त आज्ञा चल न सकती।

दुकानदार ने वस्त्र नापते हुए कहा था, मानो वह अपने आपको ही सुना रहा हो, "हमको भारी कर देना पड़ता है, परन्तु उसके प्रतिकार में हमको कुछ नहीं मिलता। पूर्ण कर या तो राज्य-परिवार की सुख-सुविधा में व्यय हो जाता है, अथवा इन श्रावकों के पेट में चला जाता है।"

दुकानदार की इस बात पर बालक पुष्यमित्र विचार करता हुआ घर की ओर आ रहा था। उसको ऐसा भास हो रहा था कि यह बात भ्रममूलक है। उसका पिता भी परिषद् का सदस्य है। भला इस प्रकार की बात सत्य कैसे हो सकती है?

घर पर पहुँच उसने अपने पिता को दुकानदार का पूर्ण वार्त्तालाप सुना कर पूछा, "पिताजी! वह दुकानदार सत्य कहता था क्या?"

"हाँ बेटा! शासन का सर्वप्रथम कार्य प्रजा की आततायियों से रक्षा

बहा रही थी। माँ ने उसको नए वस्त्र पहिनने के लिए दिए थे और बीस रजत उसके सम्मुख रखे हुए थे।

पुष्यमित्र ने माँ को वस्त्र दिए तो माँ ने वह भी उस स्त्री को देते हुए कहा, "इस लडकी के लिए कपडे बनवा लेना। और मैं चाहती हूँ कि तुम कुछ दिन यहाँ ठहरकर विश्राम करो। भीतर एक आगार रिक्त पडा है, उसमे ठहर सकती हो।"

"नही भगवती! मै जिस उद्देश्य से यहाँ आई थी, वह जब पूर्ण नही हो सकता तो मैं जाती हूँ। इसके पिता की इच्छा थी कि इसकी शिक्षा वही, महर्षि जी के आश्रम मे हो। सो इसको वहाँ पहुँचा दूं। पश्चात् ही निश्चिन्त होऊँगी।

"तुमने मुझको पहिचान लिया और मेरी सहायता की है, मैं तुम्हारी ऋणी हूँ।"

इतना कह वह स्त्री बालिका की अगुली पकड और वस्त्र तथा रजत उठा, हाथ जोड नमस्कार कर गृह से बाहर निकल गई। पुष्यमित्र उस स्त्री को जाते हुए देखता रह गया। जब वह चली गई तो उसने अपनी माँ से पूछा, "माँ! यह कौन थी?"

"बेटा! मेरी एक सखी है। हम दोनो एक ही आश्रम मे पढती थी। इसका विवाह स्थानेश्वर के प्रकाड विद्वान श्री निखिलेश्वर जी से हुआ था। यह बच्ची, उन्ही पडित जी की लडकी है।

"स्थानेश्वर पर यवनो का अधिकार हो गया और इसके पति उस झगडे मे मारे गये हैं। इनके घर को आग लगा दी गई। यह बेचारी ज्यो-त्यो कर अपनी और इस बच्ची की जान बचाती हुई यहाँ आ पहुँची है।

"अब यह महर्षि पतजलि के आश्रम मे अपनी लडकी को छोडने जा रही है।"

"परन्तु माँ! एक ब्राह्मण को यवनो ने क्यो मारा है? उसके घर को आग क्यो लगा दी है?"

"इसके पति ने यवनो को स्थानेश्वर से निकाल देने के लिए षड्यन्त्र

दूर-दूर प्रान्तों मे विद्रोह होने आरम्भ हो गये। उस समय ऐसा अनुभव किया जाने लगा कि अशोक वृद्ध हो गया है और किसी युवा पुरुष को राज-गद्दी पर बैठना चाहिए। सबकी दृष्टि सम्प्रति पर थी। वह सुन्दर, मेधावी युवक था। कुणाल चक्षुविहीन होने से उचित अधिकारी नही समझा गया। अशोक भी चाहता था कि सम्प्रति ही गद्दी पर बैठे।

"परन्तु बौद्ध भिक्षु कुणाल का पक्ष लेते थे। कुणाल बौद्ध मतावलम्बी था और सम्प्रति शैव था। अत विवाद खड़ा हो गया। कुणाल के पक्ष मे पूर्ण बौद्ध सम्प्रदाय था। सम्प्रति अशोक के समर्थन पर भी निस्सहाय था।

"सम्प्रति की सहायतार्थ एक तेजस्वी ब्राह्मण वज्रबाहु खड़ा हो गया। उसने सम्प्रति को बौद्धों के कुचक्र से निकाल कर एक स्वतन्त्र स्थान पर खड़ा कर दिया और दोनों एक सेना निर्माण कर पाटलीपुत्र पर अधिकार करने चल पड़े।

"इस बीच अशोक राज्याच्युत् कर कहीं अन्यत्र भेजा जा चुका था और कुणाल राज्याधिकारी माना जा चुका था। इस पर भी राज्य मे सम्प्रति की सेना का विरोध करने की क्षमता नही थी। अत पिता-पुत्र मे सन्धि हो गई और कुणाल नाम मात्र का राजा रह गया। वास्तविक राज्य का कार-भार सम्प्रति के हाथ मे आ गया।

"इस पर भी पुत्र के मन मे पिता के प्रति श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न हो गई और इसके परिणामस्वरूप राज्य को बौद्धों के दुष्प्रभाव से रिक्त नही किया जा सका। अत राज्य मे वह दुर्बलता, जो अशोक के काल मे उत्पन्न होने लगी थी, बढ़ती गई। वह राज्य जो गांधार तथा कपिश से लेकर काम-रूप देश तक और हिमालय से लेकर कावेरी तक विस्तृत था, टूटने लगा। दूर-दूर के प्रदेश स्वतन्त्र राज्य बनने लगे। यहाँ तक कि अशोक के सम्बन्धी भी जहाँ-जहाँ पर थे, स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर बैठे।

"अब सम्प्रति का पर-पौत्र बृहद्रथ राज्य कर रहा है। महाराज शतधन्वन् के काल से तो विदेशियों के भी आक्रमण होने आरम्भ हो गये हैं।"

पुष्यमित्र इस कथा को सुनकर एक परिणाम पर पहुँचा कि देश मे

क्षत्रिय-वर्ग का अभाव वर्तमान दुर्दशा का परिणाम है। वज्रबाहु ने क्षत्रिय वर्ग की सृष्टि तो की थी, परन्तु उसमें कुछ दोष रह गया था; अन्यथा सम्प्रति सुधार को अन्तिम ध्येय तक ले जा सकता था। वह त्रुटि क्या थी, इसका विचार कर पुष्यमित्र अपनी योजना में से, उसे दूर रखने के लिए प्रयत्न करना चाहता था।

एक बात उसको समझ आ रही थी। वह थी क्षत्रिय वर्ग के अभाव के साथ-साथ ब्राह्मणों के नेतृत्व में त्रुटि। अतः गम्भीर भाव धारण कर, अपने पिता से आशीर्वाद ले, वह अपने आगार में अपनी योजना के परिवर्जन के लिए चला गया।

५

महाराज बृहद्रथ को राज्यगद्दी पर बैठे तीन वर्ष हो चुके थे। इन तीन वर्षों में उसने तीन विवाह किये थे। बृहद्रथ की तीनों रानियाँ अपने अपने सम्बन्धियों के लिए धन, भूमि अथवा राज्य में पदवी की माँग करती रहती थीं। सबसे बड़ी रानी विदिशा का भाई लक्ष्मणपुर में आयुक्त था। उसका पत्र आया था कि उसको दो लक्ष स्वर्ण की अत्यन्त आवश्यकता है।

एक दिन महाराज के पास तीनों रानियाँ बैठी थीं कि विदिशा ने अपने भाई के पत्र का उल्लेख करते हुए कहा, "महाराज! लक्ष्मणपुर से भाई का पत्र आया है कि सेना के अभाव में कृषकों ने तथा दुकानदारों ने कर देने से इन्कार कर दिया है। पूर्व के आयुक्त ने धन को बचाने के लिए सेना का विघटन कर दिया था और अब कर प्राप्त करने के लिए सैनिकों की आवश्यकता है। नवीन सेना-निर्माण के लिए दो लक्ष स्वर्ण की अत्यन्त आवश्यकता है।"

विदिशा की इस माँग को सुनकर महाराज ने कहा, "यह माँग सर्वथा युक्तियुक्त है। हम राज्य परिषद् में इतना धन स्वीकार करवा कर भेज देंगे।"

"परन्तु महाराज!" विदिशा ने कह दिया, "इतना धन तो राज्य-

कोष मे है नही ।"

"तो फिर हम क्या कर सकते है ? धन कहाँ से दिया जा सकता है ?"

"पद्मा विहार पर प्रतिवर्ष दो लक्ष से ऊपर व्यय किया जाता है। इस वर्ष उसको धन न दिया जाय ।"

"यह बहुत कठिन है ।"

"क्यो ?"

"तुम नही जानती विदिशा ! जैसे मैं अपनी प्रिय रानियो का व्यय बन्द नही कर सकता, उसी प्रकार विहार का व्यय बन्द नही किया जा सकता ।"

इस पर सौम्या, महाराज की दूसरी रानी, कुछ उद्विग्न भाव मे कहने लगी, "महाराज ! आप हमारी तुलना इन सिर मुडो से कर हमारा अपमान कर रहे हैं। देखिये, मैं एक उपाय बताती हूँ। मेरे पिता लक्ष्मणपुर मे आयुक्तक बना दिये जायं। मुझे विश्वास है कि वे आपसे बिना एक भी स्वर्ण लिए, वहाँ नवीन सेना का निर्माण कर सकेंगे और कर प्राप्त कर आपको भेज सकेंगे ।"

महारानी सौम्या के पिता का नाम वीरभद्र था और वह सेना मे एक सेनानायक था। अपनी लडकी का विवाह बृहद्रथ से कर आज तक उसने किसी भी सुविधा की माँग नही की थी। इस कारण महाराज ने इस योजना को स्वीकार करते हुए कहा, "यह ठीक है। हम महारानी विदिशा के भाई को किसी अन्य स्थान का आयुक्तक बना देंगे ।"

परन्तु विदिशा को इसमे अपना और अपने भाई का अपमान प्रतीत हुआ। उसने कहा, "महाराज ! ऐसा नही होगा। मुझे विश्वास है कि वीरभद्र जी भी, लक्ष्मणपुर मे जाकर, कुछ कर नही सकेंगे और उनको भी स्वर्ण की आवश्यकता पडेगी ।"

"महाराज ! परीक्षा कर देखना चाहिए ।"

यह वाद-विवाद अभी आगे चलता, परन्तु इसी समय प्रतिहारिन ने आकर सूचना दी कि महामात्य चन्द्रभानु किसी अत्यावश्यक कार्य से

महाराज से मिलना चाहते हैं।

महारानियाँ अन्त पुर के भीतरी आगारो मे चली गईं तो महामात्य ने आगार में प्रवेश कर नमस्कार की और अपने आने का आशय बता दिया। उसने कहा, "महाराज ! अभी-अभी कौशाम्बी से एक गुप्तचर यह समाचार लाया है कि गान्धार सैनिको ने आक्रमण कर कौशाम्बी पर अधिकार कर लिया है और आस-पास के गाँव मे लूटमार मचा दी है।"

"ओह ! तो गान्धार भारतवर्ष में इतनी दूर तक आ पहुँचे हैं ?"

"हाँ महाराज ! पिछले बीस वर्षो से वे एक-एक गाँव पर अधिकार कर अपने राज्य की वृद्धि करते चले आ रहे है। इससे पहिले समाचार आया था कि उन्होंने हस्तिनापुर पर अधिकार जमा लिया है।"

"परन्तु तब हमने अपना विरोध पत्र उनको भेजा था। उसका क्या परिणाम हुआ ?"

"महाराज ! हम अपने धर्म से बँधे हुए सबके कल्याण का चिन्तन करते हैं। हम निर्वाण-पथ पर अग्रसर हो रहे हैं और पथ विचलित होने के भय से अहिंसा करने में सकोच करते है। परन्तु ये गाधार हमारी भावना का आदर नहीं करते। महाराज ! गाधार मानव नही, पशु हैं। मानवो के साथ मानवता का सा व्यवहार तो ठीक है, परन्तु पशुओ के साथ मानवता का व्यवहार अयुक्ति-सगत है।"

"महामात्य ! यदि ऐसा है तो भगवान तथागत ने यज्ञो में पशु बलि का विरोध क्यो किया था ?"

"महाराज ! पशुओ के स्वभाव वाला मनुष्य पशुओ से भी भयकर होता है।"

"अच्छा ऐसा करें। आज सायकाल राज्य परिषद् की बैठक बुला लें। राज्य परिषद् में इस समस्या पर विचार किया जायगा।"

महामात्य इससे प्रसन्न नही था। वह जानता था कि बौद्धो के हठ के कारण राज्य-परिषद् मे पुन वही निर्णय होगा, जो पिछली बार हस्तिनापुर पर गाधारो के आक्रमण के समाचार पर हुआ था। इस पर

भी वह महाराज की आज्ञा सुन चुपचाप उठ, नमस्कार कर चला गया ।

. ६ .

वीरभद्र बृहद्रथ का श्वसुर था । उसको महाराज का श्वसुर बनने की किञ्चित् मात्र भी इच्छा नहीं थी, परन्तु जब महाराज ने सौम्या को देखा तो उस पर मोहित हो गये और फिर वीरभद्र उसका महाराज से विवाह करने के लिए विवश हो गया ।

विवाह हुआ तो वीरभद्र ने प्रयत्न किया कि महाराज क्षत्रियो का सा व्यवहार करे और राज्य की रक्षा का प्रबन्ध करे । इसी प्रयत्न मे उसने एक दिन, जब वह महाराज से मिलने गया था, कह दिया, "महाराज ! यदि आपका व्यवहार क्षत्रियो जैसा होता, तो ये यवन इतनी दूर तक न चले आते ।"

"वीरभद्रजी ! जब राज्य परिषद् मुझको युद्ध की सम्मति नहीं देती तो मेरा दोष कैसे हो गया ?"

"परन्तु महाराज ! यह राज्य परिषद् भी तो आपने ही निर्माण की है । जब राज्य-परिषद् मे आपने शूद्र रखे हैं तो वे आपको क्षत्रियो के योग्य सम्मति कैसे दे सकेंगे ?"

"कौन शूद्र है हमारी परिषद् मे ?"

"बौद्ध, वर्ण-व्यवस्था को नही मानते । अत वे शूद्रो से भी नीच अर्थात् वर्ण-सकर हैं ।"

इस पर तो महाराज को क्रोध चढ आया । उन्होने कह दिया, "वीरभद्रजी ! आप सौम्या के पिता हैं, इसलिए हम आपको क्षमा करते हैं । अन्यथा राज्य-परिषद् के इस अपमान पर आपको प्राण-दण्ड मिलना चाहिए था । अब आप जा सकते है ।"

वीरभद्र वहाँ से चला आया । वह पुन कभी महाराज से मिलने नही गया और राज्य-परिषद् मे उसकी उन्नति पर विरोध होता रहा ।

वीरभद्र की पत्नी का एक भाई शीलभद्र था । वह गुप्तचर विभाग मे कार्य करता था । महामात्य ने उसकी नियुक्ति कौशाम्बी मे की हुई थी ।

शीलभद्र ही कौशाम्बी से यवनो के आक्रमण का समाचार लेकर आया था।

महामात्य को समाचार देकर जब वह वीरभद्र तथा अपनी बहिन से मिलने आया तो उन्होंने भी समाचार जानने की उत्सुकता प्रकट की। शीलभद्र ने बताया, "मुझको कौशाम्बी तब भेजा गया था, जब यवन हस्तिनापुर पर अधिकार कर चुके थे। वहाँ, पिछले वर्ष ही, यह चर्चा चल पड़ी थी कि यवन कौशाम्बी पर शीघ्र ही आक्रमण करेंगे। मैंने यह समाचार सविस्तार लिखकर पाटलीपुत्र भेज दिया था।

"मैंने अपना सन्देह वहाँ के आयुक्तक सोमप्रभ को भी बताया। सोमप्रभ बौद्ध उपासक था। मेरे इस समाचार का आधार यह था कि एकाएक कौशाम्बी मे यवनो की सख्या बढने लग गई थी।

"सोमप्रभ ने भी पाटलीपुत्र सूचना भेजी, परन्तु न तो उसे और न ही मुझे कोई उत्तर आया कि क्या करना चाहिए।

"परिणाम यह हुआ कि दो मास पूर्व एकाएक दो लक्ष गान्धार सैनिक कौशाम्बी को घेरा डाल बैठ गये। वहाँ के सेनानायक ने युद्ध की योजना बना ली, परन्तु सोमप्रभ ने समझौता करना उचित समझा। उसने एक शान्ति आयोग यवन सेनापति के पास भेजा और सन्धि कर ली। सन्धि की शर्तो मे यह निश्चय हुआ कि बिना रक्तपात कौशाम्बी यवनों को दे दी जाय और इसके प्रतिकार मे यवन लोग कौशाम्बी की प्रजा के धन, सम्पद् तथा मान की रक्षा करें।

"इस सन्धि के अनुसार कौशाम्बी यवनो के हाथ मे दे दी गई। यवनाधिपति डोमैट्रियस कुछ दिन पश्चात् वहाँ पहुँच गया। इस समय तक यवनो का नगर पर पूर्ण रूप से अधिकार हो चुका था। यवन अच्छे-अच्छे भवन, सुन्दर वस्तुएँ और युवा स्त्रियाँ अपने लिए लेने लगे। कुछ डरा-धमका कर, कुछ छल कपट से तथा कुछ बलपूर्वक।

"इस पर सोमप्रभ ने डोमैट्रियस के सम्मुख उपस्थित होकर सन्धि के नियमो का स्मरण कराया। डोमैट्रियस ने पूछ लिया, 'तुम कौन हो ?'

"सोमप्रभ ने कहा, 'मैं यहाँ का आयुक्तक हूँ। मैंने ही आपके सेना-

पति से सन्धि की थी ।'

'तुमसे सन्धि अमान्य है । तुम पराजित हो । हम विजयी है और पराजित की विजयी के साथ सन्धि नही होती ।'

'महराज !' सोमप्रभ ने कहा, 'सन्धि तो एक प्रकार का वचन-पत्र होता है । श्रीमान् जैसे शक्तिमान और माननीय व्यक्ति के लिए वचन-भग शोभा की बात नही है ।'

"डोमेट्रियस को इस पर क्रोध चढ आया । उसने कहा, 'तुम हमारा अपमान कर रहे हो ।'

'नही श्रीमान् ! मैं आपके प्रतिनिधि द्वारा दिये गये वचन आपको स्मरण करा रहा हूँ ।'

'तुम मूर्ख हो ! हम तुमको प्राणदड की आज्ञा देते हैं ।'

"सोमप्रभ तो वही उसी समय मार डाला गया । उसकी सम्पत्ति राज्याधिकार मे ले ली गई और उसकी स्त्री तथा कन्याओ को लूट लिया गया । इस पर तो नगर-भर मे धाँधली मच गई । जो जिसके हाथ मे आया और जिस स्त्री पर, जिसकी दृष्टि पडी, वह उसने अपने खड्ग के बल पर हथिया ली ।"

इस कथा को सुन कर वीरभद्र की आँखो से खून उतरने लगा । उसकी पत्नी पद्मा के अश्रु बहने लगे । इस पर भी वे कुछ नही कर सकते थे ।

: ७ :

शीलभद्र गुप्तचर विभाग मे भेजे जाने से पूर्व सेना मे था । सेना मे उसके कई मित्र तथा परिचित थे । वह सेना-शिविर में उनसे मिलने गया तो उसने देखा कि एक ब्राह्मणकुमार को घेर कर कई नायक बैठे है । उस मडली में उसके भी मित्र थे । मित्रो ने जब उसे पहिचाना तो उठकर उससे गले मिलने लगे । शीलभद्र ने बताया कि वह कौशाम्बी पर यवनो के आक्रमण तथा वहाँ के रक्तपात की सूचना लेकर आया है । उस ब्राह्मण-कुमार ने उससे विस्तार में कौशाम्बी का समाचार पूछ लिया और शीलभद्र ने सविस्तार वर्णन कर दिया ।

सैनिक तो महाराज और राज्य-परिषद् के सदस्यो को गाली देने लगे। यह परिस्थिति उनकी ही बनाई हुई थी। ब्राह्मणकुमार ने उनको धैर्य से परिस्थिति पर विचार करने का आग्रह करते हुए कहा, "इसमे महाराज का इतना दोष नही। यह तो उस वातावरण का दोष है, जो बौद्ध जीवन-मीमासा ने पिछले छ-सात सौ वर्ष से इस देश में बनाया है। मैं तो इसका यही उपाय समझता हूँ, जो मैंने आपको बताया है।"

यह ब्राह्मणकुमार पुष्यमित्र ही था। पुष्यमित्र ने सबसे पूर्व सेनापति से वार्तालाप कर उसको अपने पक्ष मे किया था। सेनापति ने अपनी असमर्थता बताई कि इस पुरानी सेना से उद्धार-कार्य सम्पन्न नही हो सकता। इस पर पुष्यमित्र ने अपनी योजना उसके सम्मुख रख दी। यही योजना वह सेनानायको को समझा रहा था, जब शीलभद्र कौशाम्बी का समाचार लेकर वहाँ आया। पुष्यमित्र की योजना थी कि सेनानायक, जो सैनिक शिक्षा दे सकते है, सेना मे अवकाश लेकर गाँव-गाँव मे फैल जायँ और वहाँ के युवको को एकत्रित कर, उनको समझा कर सैनिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए तैयार करे। इस प्रकार एक वर्ष मे ही दो लक्ष सैनिक शिक्षा प्राप्त कर, बीस सहस्र पुरानी सेना के साथ महाराज के सम्मुख उपस्थित हो यह माँग उपस्थित करे कि यवनो को देश से निकालने के लिए युद्ध की घोषणा कर दी जाय।

पुष्यमित्र ने यह समझाया कि यह कार्य अवैतनिक किया जाना चाहिए, परन्तु नवीन सेना के लिए शस्त्रास्त्र तथा गणवेश बनवाने के लिए धन एकत्रित किया जायगा। यह धन सेट्ठियो से प्राप्त होगा।

उसने पाटलीपुत्र के प्रमुख सेट्ठी धनसुखराज से भी अपनी योजना पर बातचीत की थी। यह धनसुखराज वही सेट्ठी था, जिसकी दुकान पर सात वर्ष की आयु का बालक पुष्यमित्र वस्त्र क्रय करने गया था। पुष्य-मित्र अपनी शिक्षा प्राप्त कर जब से लौटा था, इस सेट्ठी से मिलता रहता था और अपनी योजना पर उससे विचार-विनिमय करता रहता था।

धनसुखराज पुष्यमित्र की योजना से पूर्णतया सहमत था, परन्तु वह

कुछ भयभीत भी था। वह समझता था कि यदि राजा को इसका ज्ञान हो गया तो यह देशद्रोह माना जायगा और उनको सूली पर चढ़ाया जा सकता है। इस पर भी अब पानी नाक तक चढ़ चुका था। पूर्ण नगर में सैनिकों की लूटमार तथा अत्याचार के समाचार फैल चुके थे और लोगों में, विशेषतया धनी वर्ग में, यही कुछ निकट भविष्य में पाटलीपुत्र में होने की आशंका घर कर चुकी थी। इसी कारण पुष्यमित्र की योजना भययुक्त होते हुए भी, वह इसमें सहायक होना चाहता था।

सेनानायकों को अपनी योजना भली-भाँति समझाकर पुष्यमित्र सेठ धनसुखराज के पास जा पहुँचा। उसने सेठ से कहा, "धर्ममूर्ति ! मैं अपनी योजना का श्रीगणेश कर आया हूँ। अब मैं चाहता हूँ कि आप लोग मिल कर धन एकत्रित करें, जिससे नवीन सेना के लिए गणवेश तथा शस्त्र इत्यादि निर्माण करने का कार्य आरम्भ किया जा सके।

धनसुखराज ने पुष्यमित्र के मुख पर ध्यान से देखते हुए कहा, "कल मैं शिव मन्दिर में पूजा करा रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि तुम पुरोहित बन पूजा कार्य सम्पन्न करो। नगर भर के परिचित सेट्ठी वहाँ एकत्रित होंगे। तुम उनके सम्मुख अपनी योजना रखना। आवश्यकता हुई तो मैं तुम्हारी बात का समर्थन कर दूँगा।

अगले दिन पुष्यमित्र पूजा के समय मन्दिर में जा पहुँचा। धनसुख ने उनको पुरोहित के आसन पर बैठाया और स्वयं यजमान बन बैठ पूजा करने लगा।

इस पूजा में धनसुखराज के बहुत से सम्बन्धी, मित्र इत्यादि उपस्थित थे। प्रायः सभी व्यापारी थे और करोड़पति से लेकर साधारण आय वाले, सभी श्रेणी के लोग थे।

पूजन हुआ और पूजा के पश्चात् धनसुखराज ने सब उपस्थित जनों को सम्बोधित कर कहा, "आज की पूजा में पुरोहित के आसन पर राज-पुरोहित प० अरुणदत्त के सुपुत्र प० पुष्यमित्र विराजमान हैं। अब ये आपसे एक विशेष निवेदन करना चाहते हैं। मुझे आशा है कि आप इनकी

बात को ध्यानपूर्वक सुनेगे और उस पर गभीरता पूर्वक मनन करेंगे।"

इस परिचय के पश्चात् पुष्यमित्र ने कहना आरम्भ कर दिया। उसने अपनी बात महाभारत युद्ध के कारणो को बताते हुए आरम्भ की। उसने कहा, "दुर्जन मनुष्य समझाने से कभी नही समझता। दुर्योधन आदि कौरवो को बार-बार समझाया जाता था कि वे अपने भाइयो से सरलता का व्यवहार रखे, परन्तु वे सदैव कुटिलता का व्यवहार रखते रहे। जब वे अपने भाइयो को पाँच गाँव तक देने को तैयार नही हुए तो युद्ध अनिवार्य हो गया। एक बार युद्ध आरम्भ हुआ तो प्रत्येक प्रकार के छल, कपट नीति और प्रयोगो से युद्ध जीता गया। भगवान कृष्ण ने अपने प्रवचन मे यह बात स्पष्ट कर दी कि 'परित्राणाय साधुनाम् विनाशायच दुष्कृताम्' इस युद्ध का उद्देश्य है।

"इसी प्रकार," पुष्यमित्र का कहना था, "नन्द परिवार के लोग व्यसनी, दुराचारी, अभिमानी तथा मूर्ख हो गये थे। इसलिए महाराज चाणक्य ने एक दासी पुत्र को खडा कर नन्दो का विनाश कराया और यहाँ पर एक अति सुदृढ साम्राज्य की स्थापना की।

"आज देश की समस्या कुछ भिन्न है। देश के भीतर से कुछ विशेष हानि नही हो रही, जितनी विदेशीय आक्रमणकारियो से हो रही है।

"अत हमको उन विदेशीयो का मुखतोड उत्तर देना चाहिए। महाराज तथा बौद्ध श्रावक अभी तक इन आक्रमणकारियो को समझाने का यत्न करते रहे है कि उनका व्यवहार उचित नही, परन्तु ये यवन लोग, दुर्योधन की भाँति अपना अनाचार छोड नही रहे। अब स्थिति असह्य हो चली है और हमारा कर्तव्य है कि हम कृष्ण की भाँति युधिष्ठिर अर्थात् महाराज बृहद्रथ की विजय करायें और दुष्ट विदेशीय आक्रमणकारियो को परास्त कर देश से बाहर निकाल दें।

"युधिष्ठिर की भाँति हमारे महाराज अत्यन्त सरल चित्त और शान्तिप्रिय हैं। वे रक्तपात पसन्द नही करते और जो कुछ विदेशीय अपने अधिकार मे कर चुके हैं, उनको देने को तैयार हो गये हैं, परन्तु डोमेट्रियस

दुर्योधन की भाँति अपनी दुष्टता छोडने को तैयार नही और निरपराध नागरिको को मार-पीट तथा अपमानित करने मे सकोच नही करता ।

"इस समय हमारा कर्तव्य है कि हम महाराज की सहायता करे, जिससे वे डोमैट्रियस को परास्त कर सके । ऐसा करने के लिए मेरी यह योजना है कि एक विशाल, सुदृढ और शक्तिशाली सेना का निर्माण किया जाय और इसके द्वारा देश को विदेशियो से मुक्त किया जाय ।

"मैंने नवीन सैनिक भरती करने का कार्य आरम्भ कर दिया है । इन नवीन सैनिको को वेतन नही दिया जायगा । ये स्वेच्छा से देश तथा जाति के उद्धार के लिए अपना तन-मन अर्पण करने को तैयार हो जायँगे । इनको सैनिक शिक्षा देने के लिए हमारे सेनानायक अवैतनिक कार्य करेंगे । इस पर भी शस्त्रास्त्र के लिए तथा इन नवीन सैनिको के गणवेश के लिए धन की अत्यन्त आवश्यकता है और मैं देश के धनी-मानी लोगो से इस अर्थ धन की भिक्षा माँग रहा हूँ ।

"यह सुझाव दिया जा रहा है कि यह सेना महाराज बृहद्रथ निर्माण करे । सुझाव बहुत सुन्दर है, परन्तु महाराज ने अभी तक इस कार्य को नही किया । इस न करने का कारण भी हम सबको विदित है ।

"हमही, जो देश की रक्षा से लाभ उठाने वाले हैं और देश के पराधीन हो जाने से जिनको हानि होने वाली है, इस कार्य को करने के अधिकारी है । जो लोग महाराज को सेना-निर्माण करने से मना करते हैं, उनका देश मे अपना कुछ भी नही ।

"मेरी योजना इस प्रकार है कि सेना भरती कर, उसको शस्त्रास्त्रो से सुसज्जित कर महाराज की सेवा मे भेंट कर दी जाय । यदि तो वे इस भेंट को स्वीकार कर लें तो निस्सन्देह डोमैट्रियस से युद्ध होगा और विजय हमारी होगी । यदि महाराज इस भेंट को स्वीकार नही करेंगे, तो हम स्वय डोमैट्रियस पर आक्रमण कर उसे देश से बाहर कर देंगे ।

"जब विदेशीय यहाँ से निकल जायेंगे तब पुन विजित देश हम मगध-सम्राट को भेंट मे दे देंगे ।"

इस योजना को सुन प्रथम प्रतिक्रिया तो यह हुई कि सबके सब सेट्ठी स्तब्ध बैठे रह गए। जब बात मस्तिष्क में बैठी तो कई प्रकार की शंकाएँ उपस्थित होने लगीं।

एक सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र था। सबसे पहिले उसने ही शंका उपस्थित की। उसने पूछा, "यह राज्य-कार्य है। इसको हम अपने हाथ में कैसे ले सकते हैं?"

"यह राज्य-कार्य हम अपने हाथ में नहीं ले रहे। इस कार्य को सेनानायक इत्यादि ही करेंगे और वे इसको करने के योग्य हैं। आपको तो केवल वही कार्य करना है, जो अब तक करते आए हैं। अर्थात् राज्य-कार्य चलाने के लिए धन देना। राज्य को धन हम शुल्क की तौर पर विवश होकर देते हैं। यहाँ तो एक ब्राह्मण देश और समाज के कल्याण के लिए भिक्षा माँग रहा है।

"यदि आप समझते हैं कि मैं दान पाने का पात्र हूँ और कार्य कल्याणमय है तो धन तो आप ही देंगे।"

दूसरा प्रश्न था, "एक राज्य में दो सेनाएँ कैसे हो सकती हैं?"

पुष्यमित्र का कहना था, "यह नवीन सेना प्रथम सेना का अंग ही होगी। केवल इसका कार्य आक्रमणकारियों से युद्ध करना होगा, जो पहली सेना करने के योग्य नहीं है।"

"यह देश-द्रोह नहीं होगा क्या?"

"नहीं, यह देश की विधर्मियों से रक्षा के निमित्त होगा। जो कार्य देश की रक्षा के निमित्त किया जाय, वह देश-द्रोह कैसे हो सकता है?"

"यदि महाराज किसी प्रकार भी युद्ध करने की आज्ञा न दें तो?"

"तब जनता यह युद्ध बिना राजा की अनुमति के चलायगी।"

"यह कैसे पता चले कि जन-साधारण युद्ध चाहता है?"

"देहातों में नव सेना निर्माण का कार्य होगा। यदि जनता नहीं चाहेगी तो सेना में भरती नहीं होगी। यदि आप लोग धन नहीं देंगे तो यह समझा जायगा कि आप युद्ध नहीं चाहते।"

इस प्रकार चिरकाल तक प्रश्नोत्तर होते रहे। तदनन्तर धनसुखराज

ने अपना वक्तव्य दे दिया। उसने कहा, "स्थानेश्वर, इन्द्रप्रस्थ, हस्तिनापुर और कौशाम्बी में यवन सेना ने अधिकार कर लिया है। यह बात निश्चित ही है कि यदि उनको रोका न गया तो वे एक दिन पाटलीपुत्र पर भी अधिकार करने के लिए आक्रमण कर देंगे। तब पाटलीपुत्र में वही कुछ होगा, जो अन्य स्थानों पर हुआ है। वहाँ पर धन-सम्पद् लूट लिया गया है। युवकों की हत्या कर दी गई है और स्त्रियों से बलात्कार किया गया है।

"हम ऐसा नहीं चाहते। इस कारण सेना तो निर्माण करनी ही पड़ेगी। महाराज उस सेना का प्रयोग करते हैं तो ठीक है, अन्यथा जाति के क्षत्रिय-वर्ग उसका प्रयोग करेंगे।

"हम जो धनीवर्ग में से हैं, धन देंगे तो क्षत्रिय जाति के लोग पूर्ण जाति की रक्षा के लिये युद्ध करेंगे।"

इस प्रकार बात निश्चित हो गई। एक अर्थसमिति बना दी गई और धन एकत्रित होने लगा।

पहले पाटलीपुत्र के राजपथ पर, पश्चात् पाटलीपुत्र के अन्य भागों में और तदनन्तर मगध राज्य के अन्य स्थानों पर मगध संरक्षण समितियाँ बनाई गईं। धन आने लगा और सेना के लिए शस्त्र, अस्त्र तथा गणवेश बनाए जाने लगे।

८

राज्य-परिषद् की बैठक में कौशाम्बी पर हुए यवन आक्रमण के समाचार पर विचार-विनिमय हो रहा था। परिषद् में महामात्य चन्द्रभानु, सेनापति विद्रुम, राजपुरोहित अरुणदत्त, सेठ नीलमणि कोषाध्यक्ष, सेठ महाकान्त प्रमुख न्यायाधीश, महाप्रभु बादरायण और श्रावक सुनन्द सदस्य थे और सभी इस बैठक में उपस्थित थे।

महाराज के पधारने पर महामात्य ने कौशाम्बी से आये गुप्तचर का समाचार सुनाया। पश्चात् महाराज ने कुछ उत्तेजना के स्वर में कहा, "मौर्य राज्य सिन्धु नदी तक फैला हुआ था। यह घटता-घटता कौशाम्बी

तक रह गया है। साथ ही हमारी प्रजा पर जो घोर अत्याचार हुआ है, वह हम सहन नही कर सकते। मैं चाहता हूँ कि मत्री मडल इस आँधी को रोकने का कोई उपाय करे।"

"परन्तु महाराज!" राजपुरोहित का प्रश्न था, "अभी तक इसके विरोध के लिए कुछ उपाय किया गया है अथवा नही?"

उत्तर महामात्य ने दिया। उसका कहना था, "हमारे देश तथा धर्म की नीति यह रही है कि वातचीत कर समस्या का सुझाव ढूंढा जाय। इसके लिए हम कई वार प्रयत्न कर चुके हैं, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इस का यवनो पर कोई प्रभाव नही पड रहा। हमने लिखा था कि हम मानव-समाज एक मानते है। हम गान्धार तथा भारतीयो मे कोई अन्तर नही मानते। यदि गान्धार इस देश मे प्रभुता प्राप्त कर रहते हैं, तो हमारा उन से वैमनस्य नही। हम यह चाहते है कि वे भी मानव के आत्म-सम्मान की रक्षा करें। इस सव कुछ लिखने का कोई उत्तर नही आया और यवनो का व्यवहार विगडता ही जा रहा है।"

अरुणदत्त ने कहा, "महाराज! यवनो से युद्ध की घोषणा कर दी जाय। जो समझाने से नही समझते, उनको अपनी शक्ति का परिचय देना ही होगा।"

इस पर नीलमणि कोषाध्यक्ष ने कह दिया, "पहिले शक्ति एकत्रित की जाय तव ही तो शक्ति का परिचय दिया जा सकता है।"

"तो हमारा इतना बडा साम्राज्य क्या शक्ति-विहीन है?"

"हाँ पुरोहित जी! शक्ति का स्रोत धन है और हमारे कोष मे कुछ सहस्र स्वर्ण से अधिक कुछ नही।"

"इस वर्ष की आय किधर गई?"

"इस वर्ष आय वहुत कम रही है। साकेत से कर नही आया। विदर्भ ने भी कर देने से इन्कार कर दिया है। लक्ष्मणपुर के आयुक्तक ने लिखा है कि विना सैनिको की सहायता के कर प्राप्त नही हो सकता। सेना है नही। स्थानेश्वर, इन्द्रप्रस्थ और कौशाम्बी से भी कर नही आ रहा।"

इस पर महाराज ने कह दिया, "कर बढा दिए जायँ।"

राजपुरोहित का कहना था, "राज्य व्यय कम कर दिया जाय।"

"इसके लिए स्थान नही। सबसे अधिक व्यय विहारो मे होता है। यदि उसमे कमी की गई तो भिक्षु लोग भूखे मरने लगेंगे।"

"हमारे पास कितनी सेना है ?"

"इस समय बीस सहस्र है। परन्तु वेतन मिले कई-कई मास हो चुके है।" सेनापति विद्रुम ने कह दिया।

इस पर महामात्य ने कहा, "कर-वृद्धि की आज्ञा दे दी जाय और जितना अधिक धन प्राप्त हो, सेनावृद्धि मे व्यय किया जाय।"

इस पर महाप्रभु बादरायण कहने लगे, "प्राय सेट्ठी लोग उपासक हैं और वे अपने कर का प्रयोग सेना के विस्तार पर पसन्द नही करेंगे।"

"यह आप कैसे कहते है ?" महामात्य का प्रश्न था।

"युद्ध उनके धर्म के विपरीत है।"

"तो क्या अपना धन-जन अरक्षित रखना उनके धर्म के अनुसार है ?"

"यह बात नही महामात्य ! यदि जनता नवीन राज्य के अधीन रहना स्वीकार कर ले तो फिर कौन राजा होगा, जो अपनी प्रजा को व्यर्थ मे तग करेगा। जहाँ-जहाँ पर भी अत्याचार हुए है, वहाँ प्रजा के विद्रोह करने पर ही हुए है। इन्द्रप्रस्थ के नागरिको ने यवन-राज्य स्वीकार कर लिया था। इस कारण वहाँ किसी प्रकार का अत्याचार नही हुआ। अब कौशाम्बी के सोमप्रभ ने डेमिट्रियस से झगडा किया तो वहाँ हत्याकाण्ड मच गया है।"

अब सेनापति ने कहा, "हत्याएँ हुई हैं अथवा नही हुई हैं, धन लूटा गया है अथवा नही, विवादास्पद बात नही। विवाद की बात तो यह है कि महाराज के राज्य का एक भाग डेमिट्रियस ने अधिकार मे कर लिया है। यह उसका अधिकार नही। हमको अपने राज्य का वह भाग वापिस लेना चाहिये।"

"हमारा और पराया तो मूर्खो की बात है। कोई राज्य का अश हमारा

कैसे हो गया ? प्रजा वहीं रहती ही है । हम यहाँ प्रबन्धक के रूप में रहें, चाहे डेमिट्रियस रहे, इसमें क्या अन्तर है ?"

"तब तो ठीक है," न्यायाधीश का कहना था, "हमारा विचार है कि यदि महाप्रभु का कथन मान लिया जाय तो महाराज एक पत्र डेमिट्रियस को लिख दें, जिसमें उनका धन्यवाद करें कि उसने महाराज के स्थान पर प्रबन्ध-कार्य करना आरम्भ कर दिया है और इससे महाराज के कन्धों पर बोझा हल्का हो गया है ।"

"मैं समझता हूँ कि," महाप्रभु का कहना था, "मेरे कथन का मिथ्या अर्थ लगाया जा रहा है। मैं राज्य छोड़ने के लिए नहीं कहता । मैं तो यह कह रहा था कि जहाँ तक प्रजा का सम्बन्ध है, उसने तो किसी-न-किसी के अधीन रहना ही है। उसको विद्रोह करने में कोई कारण नहीं है। रहा हमारा अर्थात् महाराज का आक्रमणकारी के साथ सम्बन्ध, वह परस्पर समझौते से निश्चित होना चाहिए ।"

"समझौता कैसे किया जाय और फिर यदि दूसरा समझौता तोड़ दे तो उसका पालन कैसे कराया जाय ?"

"मैं चाहता हूँ कि हमारे राज्य का कोई अधिकारी डेमिट्रियस से स्वयं जाकर मिले और उससे मिलकर उसकी इच्छा जाने । पश्चात् हम समझ सकते हैं कि युद्ध के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय है अथवा नहीं ।"

"तो ठीक है," महाराज का कहना था, "हम समझते हैं कि महामात्य दूत बन कर जायें और डेमिट्रियस से मिलकर उसकी इच्छा जानने का यत्न करें ।"

"मैं समझता हूँ," राजपुरोहित का कहना था, "राज्य को सबल बनाने का कार्य आरम्भ कर दिया जाये । शत्रु मानेगा नहीं । अन्त में उससे युद्ध करना ही पड़ेगा । अतः सेना के विस्तार और सुदृढ़ करने का कार्य अभी से आरम्भ कर दिया जाय ।"

"ऐसा करने से तो," महाप्रभु का कहना था, "शत्रु भड़क उठेगा । हमारी ओर से युद्ध की तैयारी देखकर तो समझौते की सम्भावना क्षीण हो जायगी ।"

"जब वह स्वय एक बलशाली सेना रखता है, तो हमको सेना बढ़ाते देख उसको रोष क्यों होगा ?"

"हम तो शान्ति से वार्त्तालाप कर सन्धि करना चाहते है न ? इस कारण हमको अपना व्यवहार भी ऐसा बनाना चाहिये, जिससे हम मन, वचन और कर्म से एकरस प्रतीत हो ।"

अब सेनापति ने पूछ लिया, "मान लीजिये कि डेमिट्रियस कोई ऐसी बात नही मानता, जो हमारे हित मे हो, तब हम क्या करेगे ?"

"मुझको मनुष्य-प्रकृति पर विश्वास है। उसके सद्‌गुणो पर भरोसा कर ही तो भगवान् तथागत ने अपनी अहिंसा की मीमासा निकाली थी ।"

अब महाराज ने अपना निर्णय दे दिया. "हम समझते है कि आज का विचार समाप्त हुआ । जो कुछ हमने निश्चय किया है, उसको कार्यान्वित किया जाय। अभी महामात्य को जाने की तैयारी आरम्भ कर देनी चाहिये और वहां जाकर शत्रु की इच्छाओ की जानकारी हमे देनी चाहिये ।"

महाप्रभु ने कहा, "हमारा राजदूत पूर्ण रूप से शान्ति का दूत बनकर जाना चाहिये। अत वे अपने साथ पचास श्रावक ले जाये तो बहुत अच्छा रहेगा । साथ ही यदि भगवान् तथागत के किसी प्रवचन की व्याख्या की आवश्यकता पडी तो हो सकेगी ।"

राजपुरोहित का कहना था, "इसमे क्या आपत्ति हो सकती है ? परन्तु मुझको विश्वास है कि महामात्य अपने कार्य मे सफल नही होगे। अतएव मैं तो यह चाहता हूँ कि युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी जाय, अन्यथा आग लगने पर कुआँ खोदने से आग बुझ नही सकेगी ।"

इस पर महाराज उठ खड़े हुए और राज्य-परिषद् की बैठक समाप्त हुई।

: ६ :

राज्य-परिषद् के सब सदस्यो मे से सबसे अधिक निराशा राजपुरोहित प० अरुणदत्त को हुई थी। सेनापति के मुख पर पूर्ण कार्रवाई पर सन्तोष विराजमान था। महामात्य चिन्ता अनुभव कर रहा था। वह नही जानता था कि बिना राज्य मे शक्ति रखे कैसे शत्रु से बात कर सकेगा ?

कोपाध्यक्ष युद्ध का निर्णय न हो सकने से प्रसन्न था। वह जानता था कि युद्ध का व्यय राज्य सहन नही कर सकता।

जब महाराज चले गये तो सेनापति ने राजपुरोहित से पूछा, "पण्डित जी! कैसी रही आज की बैठक?"

"मुझको तो कोई मार्ग सूझ नही रहा।"

"मेरे लिए मार्ग स्पष्ट होता जा रहा है।"

"किस प्रकार?"

"देखिये पण्डितजी! महामात्य सर्वथा अयोग्य व्यक्ति है। मैंने उनसे कहा था कि हमको राज्य की बागडोर अपने अधिकार मे कर लेनी चाहिये। यदि महाराज युद्ध के लिए तैयार न हो सकें तो महाराज को बन्दी बना लिया जाय और उनके नाम पर हम राज्य चलायें। सेना तैयार करें और कौशाम्बी पर आक्रमण कर दें।

"परन्तु महामात्य कहने लगे, 'यह तो राज्यद्रोह हो जायगा।' ऐसा वह नही कर सकता। इस पर मैं हँस पडा और मैंने कह दिया कि मैं तो हँसी कर रहा था।"

"आपने ठीक किया है। ऐसी बात हमको मन मे भी नही लानी चाहिए।"

न्यायाधीश चुपचाप इनकी बातें सुनता हुआ इनके साथ-साथ चल रहा था। राजपुरोहित की बात सुन उसने कह दिया, "पण्डित जी! बृहद्रथ राज्य है क्या?"

"वह राज्य का प्रतीक है।"

"किस वेद-शास्त्र मे लिखा कि बृहद्रथ, जो महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य के परपौत्र का परपौत्र होगा, वही मगध राज्य का प्रतीक होगा।"

"तो राज्य का प्रतीक कौन हो सकता है।"

"राज्य-परिषद्।"

"राज्य-परिषद् तो इस विषय मे एकमत नही है।"

"एकमत की जा सकती है।"

"कैसे ?"

'प्रजा-परिषद् की बैठक बुला कर।"

"प्रजा-परिषद् मे कौन-कौन बुलाया जायगा ?"

"प्रत्येक एक लक्ष जनता के पीछे एक व्यक्ति। पूर्ण राज्य, जो इस समय हमारे पास बचा है, उसके, इस अनुपात मे प्रतिनिधि बुला लिये जाएँ।"

"यह असम्भव है। यदि परिषद् बुला भी ली जाय तो उसका एक मत होना असम्भव है।"

"तो फिर विप्लव हो जायगा, पण्डित जी! प्रजा यवनो का विरोध चाहती है और हम अपनी अज्ञानता के कारण शान्ति-शान्ति का पाठ पढाकर शत्रु की सहायता कर रहे हैं।"

इस पर सेनापति ने कह दिया, "देखिये पुरोहित जी! महामात्य के जाने के पश्चात् आप महामात्य नियुक्त होंगे। अत मैं चाहता हूँ कि मेरे अथवा सेना के विषय मे जो भी सूचना आपको मिले, वह मुझसे पूछे बिना महाराज अथवा राज्य-परिषद् मे उपस्थित न करें। मेरा इसी प्रकार का समझौता महामात्य चन्द्रभानुजी के साथ था और यही समझौता आपके साथ होना चाहिये। अन्यथा मैं सैनिकों को कह कर एक दिन मे विप्लव उत्पन्न कर दूंगा। तब उसमे कौन बचेगा और कौन नही, कहा नही जा सकता।"

इस चुनौती पर पण्डित अरुणदत्त विस्मय मे मुख देखता रह गया।

सेनापति अपने भवन मे पहुँचा तो पुष्यमित्र उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। पुष्यमित्र यह जानने के लिए आया था कि राज्य-परिषद् ने क्या निर्णय लिया है। सेनापति ने राज्य-परिषद् की कार्यवाही बताने के पश्चात् कहा, "जी तो चाहता है कि यहाँ पर सेना का राज्य स्थापित कर दूं और महाप्रभु इत्यादि सबको मृत्यु के घाट उतार दूं।"

इस पर पुष्यमित्र ने मुस्कराते हुए कहा, "ऐसा नही सेनापति! मैं देश मे विप्लव खडा करना नही चाहता। विप्लव से अव्यवस्था हो

जायगी और तब शत्रु को पाटलीपुत्र पर पुनः आक्रमण का अवसर मिल जायगा।

"अभी तो नवसेना निर्माण में इन बातों से बाधा पड़नी चाहिए। फिर तो वर्षा होनी प्रारम्भ हो जायगी। पाटलीपुत्र में आज सभी श्रेष्ठियों ने जो [illegible] धन देने का निर्णय ले लिया है।

"अब मैं स्वयं भी गाँव-गाँव में भ्रमण कर युवकों को सेना में भर्ती होने की प्रेरणा देना चाहता हूँ। राज-मन्दिर पर चोटों का अवसर जब आयगा, तब नवीन सेना के निर्माण के पश्चात् भी महामात्य पद का विरोध करेंगे।"

. १० .

महामात्य और उनके साथ प्रधान बौद्ध-भिक्षु, यवनाधिपति डेमिट्रियस से विचार-विमर्श करने के लिए पाटलीपुत्र से रवाना हो गए और उनके स्थान पंडित अरुणदत्त महामात्य नियुक्त हो गया। अरुणदत्त देख रहा था कि पुष्यमित्र प्राय घर से अनुपस्थित रहने लगा है। कभी-कभी तो दस-दस बीस-बीस दिन तक उनके दर्शन नहीं होते थे। इसके साथ-साथ पुष्यमित्र को पूछने के लिए बहुत से लोग आने लग गये थे। इन सब हलचल से अरुणदत्त यह तो समझ रहा था कि पुष्यमित्र कुछ कर रहा है, परन्तु क्या कर रहा है और किस अर्थ कर रहा है, यह नहीं जानता था।

महामात्य को पाटलीपुत्र से गये कई मास व्यतीत हो चुके थे और उनका कोई समाचार नहीं आया था। महामात्य के परिवार के सदस्य समाचार न आने पर बहुत चिन्ता अनुभव करने लगे थे और उनकी पत्नी तो कई बार अरुणदत्त के भवन में आकर उससे आग्रह कर चुकी थी कि उनका पता किया जाय।

अरुणदत्त इसके लिए अपने को निस्सहाय पाता था। राज्य का कोई सूचना-विभाग नहीं था, गुप्तचर-विभाग भी छिन्न-भिन्न हो चुका था, जिन के द्वारा पाटलीपुत्र से सूचना प्राप्त की जा सकती। वह समझता था कि महामात्य चन्द्रभानु के कारण ही सारे प्रबन्ध मे गड़बड़ हुई है, परन्तु अब तो वह स्वयं महामात्य के पद पर आसीन था। अतः उसने

निश्चय कर लिया कि वह कुछ गुप्तचर कौशाम्बी भेजकर सूचना मँगवाने का प्रयत्न करेगा।

इसी अर्थ उसने कोषाध्यक्ष सेठ नीलमणि को बुला भेजा। जब नीलमणि आया तो उसने पूछ लिया, "सेठ जी! कोष की क्या अवस्था है?"

नीलमणि ने स्थिति वर्णन कर दी। उसने कहा, "महाराज की आज्ञा आई है कि दस सहस्र स्वर्ण महारानी सौम्या को दे दिये जायं। कोष में तो इतना धन भी नहीं है।"

"तो फिर क्या होगा?"

"मैंने महाराज को पूर्ण स्थिति से अवगत कर दिया है। उनकी आज्ञा हुई है कि किसी सेट्ठी से ऋण ले लिया जाय और जब कोष में धन आयेगा तो यह ऋण चुका दिया जायगा।"

"मैं चाहता हूँ कि कुछ गुप्तचर नियुक्त कर उनको कौशाम्बी भेजा जाय, जिससे महामात्य चन्द्रभानु का समाचार मिल सके।"

"कितना धन इस कार्य के लिये चाहिये?"

"मैं पाँच व्यक्ति भेजना चाहता हूँ। प्रत्येक गुप्तचर के साथ पाँच-पाँच अश्वारोही जाने चाहिएँ, जो वहाँ का समाचार यहाँ तक पहुँचा सकें।

"इस प्रकार तीस व्यक्तियों का कम-से-कम दो-दो मास का व्यय मिलना चाहिये। यह लगभग तीन सहस्र स्वर्ण होगा।"

"यह तो बहुत अधिक हो जायगा।"

"जहाँ आप दस सहस्र महारानी जी के लिये प्रबन्ध कर रहे हैं, वहाँ इनका भी प्रबन्ध कर दीजिये।"

"महाराज की आज्ञा के बिना एक टंका भी ऋण नहीं लिया जा सकता।"

महाराज बृहद्रथ के पास अनुमति के लिये अरुणदत्त ने संदेश भेजा तो उन्होंने आज्ञा दे दी कि पन्द्रह सहस्र स्वर्ण का प्रबन्ध कर दिया जाय। सेठ नीलमणि ने धनसुखराज के पास ऋण के लिए सन्देश भेज दिया। धनसुखराज अपने पास से इतना धन दे तो सकता था, परन्तु वह जानता

था कि यह धन वापस मिलने की कोई आशा नही। इस कारण उसने यह प्रयत्न किया कि कई सेठ्ठी मिलकर यह प्रबन्ध कर दे, जिससे प्रत्येक पर अधिक बोझा न पडे। इससे बात फैल गई कि राजकोष रिक्त हो गया है।

महाराज के लिये ऋण का प्रबन्ध तो हो गया, परन्तु सब अनुभव करने लगे थे कि अब राज्य स्थिर नही रह सकता। राज्यकोष की इस स्थिति पर विचार करने के लिये एक सेट्ठियो की गोष्ठी बुला ली गई। गोष्ठी मे सेठ लक्ष्मीपति ने अपने विचार रख दिये, "सौ, दो-दो सौ स्वर्ण एकत्रित कर यह धन हम राज्य को दे रहे है, परन्तु इतना निश्चित है कि यह ऋण तब तक वापस मिलने की आशा नही, जब तक पुष्यमित्र की योजना फलीभूत नही होती।

"प्राय सारा धन या तो राज्य-परिवार की सुख-सुविधा पर व्यय हो जाता है या बौद्ध विहारो को दान मे दे दिया जाता है। अत हमको चाहिये कि राज्य सरक्षण समिति को पर्याप्त धन देकर नवीन सेना के निर्माण का कार्य शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण कर दें, जिससे हमारे घरो मे रखा धन तथा राज्य को दिया गया ऋण सुरक्षित रह सके।"

परिणाम यह हुआ कि सरक्षण समिति का एक सदस्य, सेठ पूर्णचन्द्र पुष्यमित्र के साथ-साथ घूमने लगा और जहाँ-जहाँ, जितने धन की आवश्यकता पडती, खुले हाथ से देने लगा। इसमे सेना-निर्माण का कार्य पूर्ण गति से चलने लगा। परन्तु इसका एक परिणाम यह भी हुआ कि इसके समाचार महामात्य तक पहुँचने लगे।

एक दिन राजपुरोहित के एक सम्बन्धी, जो प्रतिष्ठानपुरी मे रहते थे, पुरोहित जी से मिलने आये तो बधाई देने लगे। राजपुरोहित के पूछने पर उन्होने बताया, "राज्य भर मे यह विख्यात हो रहा है कि जब से आप महामात्य पद पर नियुक्त हुए हैं, तब से राज्य की सेना में वृद्धि होनी आरम्भ हो गई है। सब बुद्धिमान व्यक्ति समझने लगे हैं कि राज्य ने उचित दिशा मे करवट ली है।"

"सेना मे वृद्धि ? कहाँ हो रही है ?"

"पूर्ण राज्य भर मे। हमारे प्रतिष्ठानपुरी मे ही इस समय तीस नये सैनिक शिविर लगने लगे है। प्रत्येक शिविर मे साठ से अस्सी तक युवक सैनिक शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं और सुना है कि ऐसे शिविर गांव-गांव, नगर-नगर मे खुल रहे हैं।"

"इनको सैनिक शिक्षा कौन दे रहा है?"

"महाराज के सेनानायक।"

अरुणदत्त इसको सेनापति का षड्यन्त्र समझता था। सेनापति ने एक बार कहा था कि वह सेना की सहायता से विप्लव खडा कर देगा। तो कदाचित् वह ही इसकी तैयारी कर रहा हो।

अपने सम्बन्धी के सामने तो अरुणदत्त ने चुप रहना ही उचित समझा, परन्तु सेनापति को सचेत करने के लिए उसने सबसे पहले उसी से बात करनी चाही।

उसने सेनापति को बुला भेजा और उसके आने पर पूछा, "विद्रुम जी! यह सेना का विस्तार कौन कर रहा है?"

"कौन सी सेना का?"

"महाराज की सेना का?"

"तो महाराज कर रहे होंगे। मुझको इस बात का ज्ञान नही। मुझको तो यह बताया गया है कि महाराज ने पन्द्रह सहस्र स्वर्ण सेठियो से ऋण लिया है। कदाचित् यह धन इसी उद्देश्य से लिया हो।"

"परन्तु मुझको तो सूचना मिली है कि सेनानायक इस विस्तार-कार्य मे लगे हुए हैं।"

"सेना को पिछले छ मास से वेतन नही मिला। इस कारण बहुत से सेनानायक छुट्टी लेकर अपने-अपने गाँव को चले गये है। वे सेनानायक तथा सैनिक क्या कर रहे हैं, मुझको पता नही।"

"सुना है धन भी खुले हाथो बाँटा जा रहा है।"

"मुझको तो अपना वेतन मिले एक वर्ष के लगभग हो चला है और मेरा अपना निर्वाह कठिनाई से हो रहा है। मैं सेना-निर्माण के लिए धन

कहाँ से दे सकता हूँ ?"

इन युक्तियो से अरुणदत्त को विश्वास हो गया कि सेनापति ऐसा कार्य नही कर सकता। कदाचित् यह महाराज का कार्य ही हो और बौद्धो से इस बात को छिपा कर रखने के लिये राज्यपरिषद् के किसी सदस्य को न बताया गया हो।

इस प्रकार अपने मन मे निर्णय कर उसने नवीन सेना-निर्माण के समाचारों पर से आँखें मूंद ली और कान बन्द कर लिये।

द्वितीय परिच्छेद

: १ :

भगवती की सखी जगदम्बा स्थानेश्वर के एक विद्वान् निखिलेश्वर की पत्नी थी। अरुन्धति उनकी एकमात्र सन्तान थी।

जगदम्बा और भगवती दोनों ने महर्षि पतंजलि के आश्रम में शिक्षा प्राप्त की थी। शिक्षा समाप्त हुई तो एक का विवाह पाटलीपुत्र के राज-पुरोहित के पुत्र अरुणदत्त से हो गया और दूसरी का स्थानेश्वर के विद्वान् पंडित निखिलेश्वर से।

पंडित निखिलेश्वर की स्थानेश्वर में भारी ख्याति थी। वे एक महा-विद्यालय के अधिष्ठाता थे, जिसमें वेद, शास्त्र तथा उपनिषदों की ही मुख्यतः शिक्षा दी जाती थी। नगर के प्रायः गण्यमान्य परिवारों के बालक तथा बालिकाएँ इनके विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करते थे और इस प्रकार पंडित निखिलेश्वर नगर के सब शिष्ट परिवारों से मान तथा प्रतिष्ठा पाते थे।

जब यवन-आक्रमण स्थानेश्वर पर हुआ तो वहाँ का आयुक्तक, जो बौद्ध उपासक था, अपने को असहाय समझ भाग खड़ा हुआ। नगर में नाम-मात्र की सेना थी, जो यवन-आक्रमण को रोकने में सर्वथा अशक्त थी।

इन सैनिकों ने नगर के प्राचीन द्वार पर खड़े होकर शत्रु की टिड्डी-दल सेना का विरोध किया और एक-एक कर सबने अपनी आहुति दे दी। पश्चात् यवनों का अधिकार स्थानेश्वर पर हो गया।

निखिलेश्वर को बौद्ध आयुक्तक की भीरुता पर अत्यन्त क्रोध आया।

कौशाम्बी मे यवनों द्वारा हत्याकाड का समाचार, जिस दिन मिला, उसी सायकाल पूजा-हवन के उपरान्त पूर्ण आश्रमवासी महर्षि के चारों ओर एकत्रित हो गये और समाचारो के विषय मे चर्चा चल पड़ी।

महर्षि के ग्यारह-बारह सौ शिष्यो मे कौशाम्बी के विद्यार्थी भी पर्याप्त सख्या मे थे। अत उनकी इन समाचारो मे विशेष रुचि थी। महर्षिजी के समाचार जानने के अनेक साधन थे। वर्ष भर देश-भर के भिन्न-भिन्न स्थानो से दर्शक तथा पुराने शिष्य आते रहते थे और वे स्थान-स्थान के समाचार दे जाया करते थे।

आज कौशाम्बी से कुछ लोग आकर वहाँ के समाचार बता गये थे। ये समाचार आश्रमवासियो मे जगल की अग्नि के समान फैल गये और वे महर्षिजी से इस विषय मे अन्य जानकारी प्राप्त करने के लिए आ पहुँचे।

सन्ध्योपासना के उपरान्त महर्षि ने आश्रमवासियो की इच्छा जानकर कौशाम्बी के समाचार बताते हुए कहा, "यवन समस्या अब देश मे एक विकट रूप धारण कर चुकी है। लगभग एक सहस्र कोस लम्बा-चौडा देश का भाग इन्होंने अपने अधीन कर लिया है। देश की यह भूमि अत्यन्त उपजाऊ और धन-जन से सम्पन्न है। इन साधनो के रखते हुए यवनो को देश से निकालना सुगम नही।

"इस पर भी यह कार्य ऐसा है, जो किसी को करना ही है। सर्व प्रथम तो राज्य को इस कार्य को करने का प्रयत्न करना चाहिए। राज्य को ही अपनी शक्ति, धन और जन को सगठित करना चाहिए। परन्तु ऐसा हो नही रहा। इसमे मुख्य कारण जनता का प्रभाव राज्य पर कम हो जाना है और राज्य भी जनता के हित मे विचार करना छोड बैठा है।"

इस दिन एकत्रित हुओ मे महिला-आश्रम की छात्राएँ भी भारी सख्या मे उपस्थित थी। कौशाम्बी मे स्त्रियो के साथ अनाचार भारी परिमाण मे हुआ था। इस कारण छात्राएँ क्रोध से उतावली हो रही थी। इन सब मे अरुन्धति सबसे आगे थी। जब महर्षि जी ने कहा कि राज्य अपना कार्य नही कर रहा, तो उसने खडे होकर कहा, "वह तो हम आपसे कई-बार

सुन चुके है। यह हमने समझ लिया है कि राज्य मे लोक कल्याण की भावना नही रही। परन्तु सदा की भाँति इसके अतिरिक्त आपके पास क्या कोई सुझाव नही ?"

"देखो अरुन्धति ! अधीर होने से कुछ बनता नही। प्रत्येक कार्य के सफल होने मे वातावरण मे परिपक्वता आनी चाहिए। यह परिपक्वता है जन विचार की। बौद्ध धर्म मे बहुत से अच्छे गुण थे, परन्तु उन गुणो की मिथ्या मीमांसा जनता मे फैल गई और उसके दुष्परिणाम उत्पन्न होने मे समय लगा। पश्चात् उन दुष्परिणामो की अनुभूति मे समय लगना भी अनिवार्य था। इस अनुभूति मे और भी अधिक समय लग रहा है, जाति में ब्राह्मणत्व के निस्तेज हो जाने से।

"पिछले पचास वर्ष मे मेरे सहस्रो शिष्य इस आश्रम से शिक्षा प्राप्त कर निकले हैं, परन्तु उनमे एक भी ऐसा तपस्वी और त्यागी शिष्य नही निकला, जो उच्चकोटि का विद्वान् होता और फिर अपनी पूर्ण विद्या तथा अनुभव को देश और समाज पर निछावर करने की क्षमता रखता।

"वास्तविक ब्राह्मण देश मे एक भी होता तो देश मे क्षत्रिय-वर्ग का निर्माण असम्भव नही था। क्षत्रिय-वर्ग उत्पन्न हो जाता तो विदेशीय आक्रमणो को निस्तेज करना कठिन नही था।"

"तो महर्षि जी का कहना है कि इस भारत भूमि मे ब्राह्मण और क्षत्रिय निःशेष हो गये है ?"

"हाँ अरुन्धति ! मैं अपने जीवन भर मे एक भी ऐसा ब्राह्मण बनाने मे सफल नही हो सका। इस पर भी मैं साहस छोडे बिना सतत इस प्रयत्न मे सलग्न हूँ।"

"हम इसमे क्या करें ? हमारा मार्ग दर्शन महर्षि क्या करते है ?"

"मेरे आश्रमवासियो को सदैव तैयार रहना चाहिये, उस महापुरुष की सहायता करने के लिए। एक बात तो हम कर ही सकते है। वह है जनता मे उचित दिशा मे विचार करने का अभ्यास डालना। बौद्ध धर्म के पचशील की मिथ्या मीमासा जनता के मन से निकाल दे। इस प्रकार जनता

मे नेता की सहायता के लिए भावना उत्पन्न होगी। दूसरे जब भी कोई नेता इस दिशा मे कार्य करने के लिए युद्ध क्षेत्र मे अवतीर्ण हो, हमको उसके कार्य मे सहायक होना चाहिए।"

: २ :

महर्षि के इस कथन से सन्तोष किसी को भी नही हुआ। इस पर भी प्रत्येक आश्रमवासी यह समझने लगा था कि उस भीड के समय उसका भी कुछ कर्तव्य है। एक बात सब समझ गये थे कि जनता के विचारो मे परिवर्तन लाना प्रत्येक ब्राह्मण का कर्तव्य है।

आश्रम मे कुछ वृद्धजन भी रहते थे। उनका कार्य आश्रम मे एक सहस्र से ऊपर छात्रो के भोजन-वस्त्रादि का प्रबन्ध करना था। वे तो तुरन्त ही आश्रम छोड, जनता मे फैल जाना चाहते थे और जन साधारण मे देश और समाज के प्रति कर्तव्य की भावना का प्रसार करना चाहते थे, परन्तु महर्षि उनको स्वीकृति नही देते थे।

इस पर अरुन्धति का प्रश्न था, "क्या महर्षि हम सब को खड्ग धारण कर अपने देश और समाज की रक्षा करने के लिए तैयार हो जाने को कहते हैं ?"

"हाँ, यह भी एक कार्य है, परन्तु इसके लिए नेतृत्व की आवश्यकता है। जन-विचारो को प्रेरणा देना उससे भी अधिक आवश्यक और प्रथम कार्य है।"

इसके पश्चात् विद्यार्थी गण जब-तब भी उनको अवसर मिलता, परस्पर विचार-विमर्श करते। प्रात -साय पठन-पाठन-काल से पूर्व तथा पश्चात् अध्यापको तथा विद्यार्थियो मे कार्य की दिशा पर विचार होता रहता था।

जब-जब भी अरुन्धति ऐसी सभाओ मे होती, वह उग्र विचारो की पोषक बनी रहती थी। वह कहती थी कि देश के स्वतन्त्र और निर्भय होने में दो बाधाएँ है। एक बौद्ध मिथ्या जीवन मीमासा और दूसरा राज्य, जो अपना कर्तव्य पालन नही कर रहा। इन दोनो को देश से निर्मूल कर देना चाहिए।"

उसके कथन पर प्रश्न यही उठा करता था कि किस प्रकार उन्मूलन किया जा सकता है और फिर कौन करे ?

इसके लिए अवसर आया। एक दिन अरुन्धति अपनी कुटिया के बाहर पुष्प-वाटिका मे पौदो को जल से सीच रही थी। इस समय आश्रम के बाहर, कुछ अन्तर पर मैदान मे एक जन-समूह का घोर नाद सुनाई दिया।

आश्रम की शान्ति मे यह एक विलक्षण विघ्न था। ऐसा पहले कभी सुनाई नही दिया था। अतएव यह सब सुनने वालो का ध्यान आकर्पित करने वाला सिद्ध हुआ। अरुन्धति भी जल-सिंचन छोड, सीधी हो सुनने लगी कि यह कैसा शब्द है। जब यह नाद बार-बार आने लगा तो कलश, जिसमे जल भर कर वह सीच रही थी, एक ओर भूमि पर रख, एक उच्च स्थान पर खडी हो, आश्रम की प्राचीर के बाहर उस ओर देखने लगी, जिधर से यह नाद बार-बार उठता सुनाई पड रहा था।

उसने देखा कि आश्रम की प्राचीर से कुछ अन्तर पर बहुत से युवक एकत्रित है और एक ऊँचे स्थान पर एक युवक खडा, दूसरो को कुछ बता रहा है। एकत्रित भीड बार-बार किसी की जय बोल रही है। अरुन्धति समझ नही सकी। उसके मन मे इसका अभिप्राय जानने की इच्छा प्रबल हुई। वह स्वय बाहर जाकर जानना चाहती थी कि यह क्या है, परन्तु महर्षि की स्वीकृति के बिना यह सभव नही था। अतएव वह महिला कक्ष मे से निकल महर्षि की कुटिया की ओर चल पडी। वहाँ पर पहिले ही कई विद्यार्थी महर्षि को घेरे हुए खडे थे और सब आश्रम के बाहर उत्सुकता पूर्वक देख रहे थे। महर्पि ने अरुन्धति को उस ओर आते देख कह दिया, "लो, आश्रम की दुर्गा भवानी भी आ गयी है।"

इस पर सब हँसने लगे।

अरुन्धति जानती थी कि महर्पि उसको माँ-दुर्गा कह कर चिढ़ाया करते है और आश्रमवासी महर्षि के इस सबोधन पर हसा करते है। वह इस प्रकार के सबोधन किए जाने पर लज्जा से लाल हो जाया करती थी। इस पर भी अपने मे गर्व अनुभव करती थी और विचार करती थी कि

—४

अपनी शिक्षा से अवकाश पाकर वह महर्षि के उस सम्बोधन को सत्य सिद्ध करके दिखायगी।

जब वह महर्षि के पास पहुँची तो विद्यार्थी गण उनके लिए मार्ग छोड़ एक ओर हट गए। अरुन्धति महर्षि के सामने आ खड़ी हुई और कहने लगी, "भगवन! इस अभूतपूर्व नाद का कारण जानने की आवश्यकता अनुभव कर आई हूँ।"

"वह हम भी अनुभव कर रहे हैं।"

"तो मैं जाऊँ देखने के लिए? आश्रम में पश्चिम की ओर भारी भीड़ एकत्रित है और एक युवक उनको कुछ सम्बोधन कर रहा है।"

"यह हमने भी देखा है, परन्तु अरुन्धति! वह देखो, शखपाद वहाँ का समाचार ला रहा है।"

एक हृष्ट-पुष्ट युवक लम्बे-लम्बे पग उठाता हुआ आश्रम के बाहर से उस ओर आ रहा था। यह शखपाद था। महर्षि के सम्मुख आकर खड़ा हो, हाथ जोड़ उसने निवेदन किया, "भगवन्! गाँव के लगभग दो-सौ युवक वहाँ एकत्रित हैं और एक ब्राह्मण कुमार ऊँचे स्थान पर खड़ा हो उनको कह रहा है कि वे नव-सेना में भरती हो जाएं। उसका कहना है कि महाराज को एक बहुत बड़ी देश-भक्तों की सेना की आवश्यकता है। वे विदेशीय तथा विधर्मियों को, जो आक्रमण कर देश के बहुत बड़े भाग पर अधिकार जमा बैठे हैं, देश से बाहर कर देना चाहते हैं। अतएव यह प्रत्येक युवक का कर्तव्य है कि अपने आपको महाराज की सेना में भरती होने के लिए उपस्थित करदे।

"भगवन्! उस युवक ने यवनों के कौशाम्बी में किए अत्याचारों का भीषण चित्रण किया, जिसको सुनकर युवकों की भृकुटि चढ़ गई और वे महाराज बृहद्रथ की जय-जयकार कर उठे। अब सब युवक सेना में भरती होने के लिए एक सेना-नायक को अपना-अपना नाम लिखा रहे हैं।"

महर्षि इस सूचना पर कुछ विचार करने लगे। इस समय शखपाद ने पुनः कहना आरम्भ किया, "भगवन्! उस युवक का यह भी कहना है

कि महाराज के पास नवीन सेना को वेतन मे देने के लिए धन नही है। इस कारण इस नवीन सेना को कोई वेतन नही मिलेगा। जब तक ये शिक्षा प्राप्त करेंगे, अपना निजी जीविकोपार्जन का कार्य करते हुए करेंगे। जब ये युद्ध-शिविर मे जायेंगे, उनको गणवेश तथा भोजन मिलेगा। सब युवक इसको अपने देश तथा धर्म का कार्य समझ, इसमे अपना तन-मन लगा दे।"

अब महर्षि ने पूछ लिया, "कितने युवक भरती हुए है?"

"भगवन्! प्राय. सभी युवक इसमे सम्मिलित होना चाहते हैं।"

"वह ब्राह्मणकुमार राज्य मे क्या पदवी रखता है?"

"मैंने पूछा था। यह कोई नही जानता।"

"शंखपाद! तुरन्त जाओ और उस ब्राह्मणकुमार को हमारा परिचय देकर हमारी ओर से निमन्त्रण दो। वह अवश्य कोई विशेष प्रतिभाशाली व्यक्ति है।"

: २ :

गाँव के लोगो को एकत्रित किया था एक सेनानायक ने और उनको प्रेरणा देने वाला था पुष्यमित्र। पुष्यमित्र गाँव-गाँव मे घूम-घूम कर नव-सेना मे भरती होने की प्रेरणा दे रहा था। इसी अर्थ वह गोनर्द मे आया था।

गोनर्द के युवक सेना-नायक को अपना नाम आदि लिखा रहे थे कि शंखपाद पुन उस समूह मे जा पहुँचा। इस समय तक एक सौ के लग-भग युवक नाम लिखा चुके थे। शेष कार्य पुष्यमित्र, सेना-नायक को सौप, वहाँ से विदा होने लगा तो शखपाद ने आगे बढकर अपना आशय वर्णन कर दिया। उसने कहा, "ब्राह्मण देवता! मैं महर्षि पतजलि के आश्रम से महर्षि जी का सन्देश लेकर आया हूँ। महर्षि जी आपको आश्रम मे पधारने का निमन्त्रण दे रहे है।"

"महर्षि पतजलि? कहाँ है उनका आश्रम?"

"वह है। आइए, मैं मार्ग दर्शन कराता हूँ।"

पुष्यमित्र महर्षि जी के विषय मे जानता था। उसकी माँ भगवती इसी

आश्रम में शिक्षा पा चुकी थी। अतएव वह महर्षि जी के दर्शन करने के लिए शंजगाद के साथ चल पड़ा।

आश्रमवासी एक भारी संख्या में महर्षि सहित पुष्यमित्र की प्रतीक्षा कर रहे थे। पुष्यमित्र पहुँचा तो महर्षि जी को देख, आगे बढ उनके चरण स्पर्श करने लगा। चरण स्पर्श कर वह हाथ जोड़ खड़ा हो गया।

महर्षि ने पुष्यमित्र को सिर से पांव तक देखा और उसके ओजस्वी मुख को देखकर बहुत प्रभावित हुए। पश्चात् उन्होंने पूछा, "वत्स! तुम कौन हो? मैं अस्सी वर्ष की आयु का हो गया हूँ, परन्तु इस जीवन में ऐसा चमत्कार करने वाला मैंने कोई व्यक्ति नहीं देखा, जो राज्य की सेना में अवैतनिक सेनानी भरती करा सके।"

"भगवन्! मैं राजपुरोहित पंडित अरुणदत्त और आपकी शिष्या देवी भगवती का पुत्र पुष्यमित्र हूँ। यह कार्य मैं स्वेच्छा से बिना किसी राजा अथवा राज्याधिकारी की आज्ञा के कर रहा हूँ।

"मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हो रहा है कि शीघ्र ही मगध राज्य को यवनों से भीषण युद्ध करना पड़ेगा। उस समय राज्य को एक सुदृढ सेना की आवश्यकता पड़ेगी। जैसे आग लगने पर कुआँ खोदना मूर्खता है, इसी प्रकार युद्ध आरम्भ होने पर सेना तैयार करना भारी मूर्खता होगी। अत-एव मैं यह आयोजन सैनिकों तथा सेट्ठी-वर्ग के लोगों की सहायता से चला रहा हूँ।

"अभी तक हम एक लक्ष के लगभग सैनिक भरती कर चुके हैं। हमारी योजना दो लक्ष सैनिक तैयार करने की है। इनके लिए गणवेश तथा शस्त्रास्त्र बनवाए जा रहे हैं। इस सेना में शिक्षा देने वाले सैनिक अवैतनिक कार्य कर रहे हैं और भरती हुए युवक बिना वेतन के अपनी सेवाएँ दे रहे हैं।

"जब यह सेना शिक्षित तथा शस्त्रादि से सुसज्जित हो जायगी, हम महाराज बृहद्रथ की सेवा में अर्पण कर देंगे और उनसे निवेदन करेंगे कि वे देश का विदेशियों से उद्धार करें।"

"तो अभी तक इस सेना के निर्माण के लिए किसी प्रकार की राजाज्ञा नही है ?"

"नही भगवन्! इसके प्राप्त होने की न तो आशा है और न आवश्यकता।"

महर्षि पतजलि अवाक् पुष्यमित्र का मुख देखने लगे। पश्चात् कुछ विचार कर कहने लगे, "वत्स! तुम हमारी शिष्या भगवती के सुपुत्र हो। हमारा स्नेह तुम पर उमड रहा है। इस कारण जो कुछ तुम कर रहे हो, उसकी अपने मन पर प्रतिक्रिया बता देना हम आवश्यक समझते है।

"यह तुमको ज्ञात होना चाहिए कि किसी भी राज्य मे राजाज्ञा के बिना सेना निर्माण करना राज्यद्रोह है।"

"भगवन्! राज्यद्रोह नही, राजद्रोह हो सकता है। साधारण रूप मे राजा राज्य का प्रतीक होता है, परन्तु कभी राजा स्वय राज्यद्रोही हो जाय तो राज्य का पक्ष, राजा का विरोध कर ही, लिया जा सकता है ?"

"परन्तु तुम्हारा कार्य राज्य के पक्ष मे है, इसका प्रमाण देना होगा ?"

"एक प्रमाण तो यह है ही कि राज्य के एक लक्ष से ऊपर युवक सेना मे स्वेच्छा से भरती हो चुके हैं। राज्य का धनी वर्ग अभी तक दस लक्ष-स्वर्ण मुद्रा इस कार्य के लिए एकत्रित कर चुका है। अभी और एकत्रित हो रहा है। क्या यह एक स्पष्ट प्रमाण नही कि राज्य का पक्ष यही है जो मैं कर रहा हूँ ?"

महर्षि पुष्यमित्र की युक्ति से प्रभावित हुआ। इस पर भी उसने कहा, "तुम युक्ति तो तार्किको की भाँति करते हो। तुम निर्भीकता मे ब्राह्मण हो। तुम शौर्यता मे क्षत्रिय हो। तुम सगठन करने तथा परिश्रम करने मे वैश्य और शूद्र के समान हो। अतएव तुम पूर्ण समाज के प्रतीक हो। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि तुम अपने मे राजा बनने के पूर्ण लक्षण रखते हो। परन्तु राजनीति मे एक रहस्य है। वह है सेना और अवसर। देखो, तुमने राज्य का पक्ष लिया है और तुम्हारे कथनानुसार ही राजा राज्य का विरोधी है। इस कारण सेना को राज्य के निमित्त निर्माण

कि वह किसके आदेश पर कार्य करती है। यह भी सम्भव है कि एकत्रित सेना उद्देश्य के विरोधियों को ही अपना नेता मान बैठे और उद्देश्य की पूर्ति के स्थान उद्देश्य का विरोध करने वाली बन जाय।

"इस कारण मैं समझता हूँ कि इस आन्दोलन को गलत व्यक्तियों के नेतृत्व में न जाने देने का प्रयत्न हमीं से होना चाहिए। इसके लिए मैं अपनी एक योजना बताना चाहता हूँ।

"मैं इस आश्रम के युवकों को कहूँगा कि वे भी सैनिकों के रूप में इस नवीन सेना में भरती हो जाएँ। सैनिक शिक्षा प्राप्त कर वे दो-दो चार-चार की संख्या में प्रत्येक सैनिक-शिविर में प्रवेश ले लें और उन शिविरों में शिक्षा प्राप्त कर रहे सैनिकों के विचारों को उचित दिशा दें।

"हमारे आश्रम के युवक पढ़े-लिखे विद्वान् हैं और वे अपनी योग्यता के कारण अवश्य इस सेना में प्रतिष्ठित स्थान पा जावेंगे और फिर इस आन्दोलन को उचित दिशा का ज्ञान करा सकेंगे।"

· ४ ·

पुष्यमित्र को कार्यारम्भ किए एक वर्ष से ऊपर हो चुका था। इस कार्य से पूर्ण राज्य-भर में चहल-पहल उत्पन्न हो गई थी। इस पर भी इस चहल-पहल की स्पष्ट सूचना राज्य-परिषद् को नहीं थी। एक तो राज्य का गुप्तचर विभाग सर्वथा अयोग्य था। दूसरा राज्य का महामात्य अभी तक अरुणदत्त था और जब-जब भी सैनिक-शिविरों की सूचना आती, वह अपने वचन के अनुसार सूचना सेनापति को भेज देता और सेनापति इसको एक साधारण-सी बात कहकर, इसका उल्लेख राज्य-परिषद् में करने से मना कर देता।

महामात्य चन्द्रभानु का अभी तक कोई समाचार कौशाम्बी से नहीं मिला था। गुप्तचर, जो उसका समाचार लेने कौशाम्बी गये थे, लौटे नहीं थे। जो अश्वारोही उनके साथ गये थे, मार्ग में सूचना की प्रतीक्षा करते-करते थक कर वापस चले आये थे।

चन्द्रभानु की अनुपस्थिति में अरुणदत्त कोई झगड़े की बात करना

नही चाहता था और उसके लौट आने की किसी भी दिन आशा कर रहा था।

पुष्यमित्र घर से कई-कई दिन तक अनुपस्थित रहता था। प्राय जब कभी वह आता तो सायकाल आकर प्रातः सूर्य निकलने से पहले ही विदा हो जाता। कभी माँ पूछ लेती, "बेटा! कहाँ रहते हो आजकल?"

"माँ!" पुष्यमित्र का उत्तर होता, "धर्म की स्थापना के लिए यत्न कर रहा हूँ।"

"घूम-घूम कर धर्म की स्थापना कैसे करोगे?"

"अन्न-अनाज तो देहातो मे उत्पन्न होता है। मैं उन खेतो में बीज के साथ धर्म का बीज भी डाल रहा हूँ। समय पर फसल के साथ धर्म भी पर्याप्त मात्रा मे मिला हुआ होगा और जो कोई भी उस अन्न का भोग करेगा, वह धर्ममय होकर धर्म की स्थापना मे सहायक हो जावेगा।"

भगवती इस बुझारत का अर्थ समझने मे अशक्त थी। वह कहती, "माँ को पागल बना रहे हो बेटा?"

"नही माँ! भगवान् कृष्ण ने गीता मे कहा है, जैसा अन्न खाया जाता है वैसा ही मन बनता है और उसके अनुकूल मनुष्य के कर्म होते जाते है। इसीलिए देहातो के खेतो मे धर्म का बीज रोपने जाया करता हूँ।"

एक दिन वह बहुत रात्रि व्यतीत हुए आया। घर का द्वार बद था। उसने द्वार खटखटाया तो उसने देखा कि द्वार खोलने वाली एक युवती है। पुष्यमित्र उसे देख विस्मय मे उसका मुख देखता रह गया।

युवती द्वार खोल, एक ओर हटकर खडी हो गयी, जिससे पुष्यमित्र भीतर आ सके, परन्तु पुष्यमित्र एक अपरिचित युवती को वहाँ खडे देख यह समझा कि अन्धेरे मे वह किसी अन्य के घर के बाहर आ खडा हुआ है। युवती हाथ मे दीपक लिए मार्ग दिखा रही थी। पुष्यमित्र घर के बाहर हो पुन ध्यान से देखना चाहता था कि वह अपने घर के बाह रही खडा है न।

इसी समय उसकी माँ द्वार पर आ गई। पुष्यमित्र ने माँ को देखा

तो समझ गया कि घर तो अपना है, परन्तु उस युवती के विषय मे उसकी उत्सुकता बनी हुई थी। उसने पूछ लिया, "मा ! यह कौन है ?"

"तो बिना जाने भीतर नही आओगे ?"

यह युवती अरुन्धति थी और दो दिन से वह अपनी माँ की सखी भगवती के घर पर आकर ठहरी हुई थी। पुष्यमित्र को भीतर आने मे सकोच करते देख, वह कहने लगी, "मौसी ! मै अपने आगार मे बैठी एक पुस्तक पढ रही थी कि द्वार खटखटाने का शब्द हुआ। मै दीपक लेकर देखने चली आई कि कौन आया है तो द्वार खोलने पर इनको खडे देखा। ये आपके सुपुत्र ही हैं न ?"

इस प्रश्न के साथ अरुन्धति ने पुष्यमित्र की ओर मुस्कराकर देखा। इससे पुष्यमित्र समझा कि वह उसको जानती है और केवल व्यग्य मे यह कह रही है।

माँ ने पुष्यमित्र का परिचय कराने के स्थान अरुन्धति का परिचय उसको कराना उचित समझा। उसने कहा, "यह लडकी महर्षि पतजलि के आश्रम से आई है ? कहती है कि महर्षिजी ने तुम्हारे लिए एक विशेष सन्देश भेजा है।"

"ओह ! परन्तु देवी !" पुष्यमित्र ने अरुन्धति के मुख पर देखते हुए पूछ लिया, "क्या महर्षिजी को कोई अन्य दूत नही मिला, जो एक सुकुमारी कन्या को इतनी लम्बी यात्रा पर भेज दिया है ?"

"इस प्रश्न का उत्तर तो महर्षिजी ही दे सकते हैं। मैं तो सन्देश देने आई हूँ और इस विषय मे ही कुछ कह सकती हूँ।"

"तो देवी बताएँ कि महर्षिजी की क्या आज्ञा है ?"

"इस समय ? यहाँ द्वार पर खडे होकर ? आपने शिष्टाचार सीखा प्रतीत नही होता ?" अरुन्धति ने मुस्कराते हुए कहा।

माँ हँस पडी और हँसते हुए बोली, "बेटा ! भीतर चलो न। यह दो दिन से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है।"

पुष्यमित्र इस प्रकार डांटे जाने से लज्जा अनुभव करने लगा और

मित्र मुस्कराता हुआ भीतर चला आया। पूछने पर कि कहाँ गये थे, मिलते ही उसने कहा, "तुम्हारी याद बार बार ही मन में आ जाती है।"

"यह याद नहीं आ सकेगी।" धनपति ने कह दिया।

"क्यों ?"

"महारानी की आज्ञा है।"

"क्या उनकी आज्ञा माननी ही होगी ?"

"न मानने से भारी दण्ड होने की सम्भावना है।"

पुष्यमित्र इस बात को सुनकर गम्भीर विचार में डूब गया। इस पर धनपति ने पुष्यमित्र से विदा लेते हुए नमस्कार करते हुए कहा, "अब प्रात काल जलाहार के समय आकर दर्शन होंगे।"

पुष्यमित्र गम्भीर विचार में मग्न, यन्त्रवत्, उसको देखता रह गया। और वह अपने आगार में चली गई। माँ पुष्यमित्र को अपने आगार में ले गई। पिताजी वहाँ नहीं थे। पुष्यमित्र ने पूछ लिया, "पिताजी कहाँ हैं ?"

"आज राज-परिषद् की विशेष बैठक हो रही है। वे वहीं गये हुए हैं। अभी तक बैठक समाप्त हुई प्रतीत नहीं होती।"

"अच्छा माँ ! मैं अब विश्राम करूँगा। भोजन मैंने कर लिया है। इस समय तो बहुत ही थका हुआ अनुभव कर रहा हूँ। प्रातःकाल का चला हुआ बीस कोस की यात्रा करके आ रहा हूँ।"

"यह क्या हो रहा है बेटा ? तुमको घर पर आकर आराम करने का भी अवकाश नहीं मिलता ?"

"माँ ! बताया तो था कि राज्य के लोगों में धर्म का बीज बो रहा हूँ।"

"मुझे मत बनाओ बेटा ! इस लड़की ने मुझे कुछ और ही बताया है।"

"क्या बताया है ?"

"कहती थी कि इस राज्य में विप्लव होने वाला है और वह तुम्हारे करने से ही हो रहा है।"

"माँ ! ठीक ही कहा है उसने। मैंने भी यही कहा है। राज्य में अध-

मस्तिष्क खाली हो रहा है। मैंने धर्म के वृक्ष भारी संख्या में लगा दिए हैं। उन वृक्षों के फल जब यहाँ पकेंगे तो अधर्म का लोप हो धर्म की स्थापना होगी। इसी को तो विप्लव कहते हैं।"

पुष्यमित्र अपने आगार में जाने ही वाला था कि उसके पिता आ गए। पुष्यमित्र ने अपने पिता के चरणस्पर्श किए तो पिता ने उसको पुनः भीतर बुला लिया और कहा, "तुमने सुना है मित्र ! कि महामात्य चन्द्रभानु की कौशाम्बी में हत्या कर दी गई है ?"

"किसने की है ?"

"महामात्य के साथ गये सब श्रावक सूली पर चढ़ा दिये गए हैं। गुप्तचर, जो उनका समाचार लेने भेजे गए थे, सब बंदी बना लिये गए थे। उनमें से एक भागने में सफल हो गया था। वह यहाँ आया है और उसी ने यह वृत्तान्त बताया है।"

"अब क्या होगा पिता जी ?"

"इसी बात पर विचार करने के लिए राज्य-परिषद् की बैठक बुलाई गई थी। सदैव की भांति इसमें भी कुछ निश्चय नहीं हो सका। महाप्रभु और उनके साथी कहते हैं कि शान्तिमय ढंग से यवनों को समझाने का प्रयत्न करना चाहिए, जब कि सेनापति कहता था कि युद्ध की घोषणा कर दी जाय।"

"महाप्रभु कैसे समझावेंगे ?"

"उनका कहना है कि यदि यवन-सेना आक्रमण करे तो लाखों की संख्या में लोग सेना के मार्ग पर लेट जावें और उनको आगे बढ़ने न दें। उनमें सोया हुआ मानव जाग उठेगा और वे आक्रमण करने से रुक जावेंगे।"

"यह तब होगा, जब यवन सेना कौशाम्बी से आगे बढ़ेगी, परन्तु इस समय वे क्या करने को कहते हैं ?"

"इस समय की नीति पर भी राज्य-परिषद् में एकमत नहीं है। मैंने यह सम्मति दी थी कि महाराज सेनापति को लिखित आज्ञा दे दें कि वह युद्ध कर यवनों को देश से बाहर कर दे। युद्ध का सारा प्रबन्ध सेनापति

कार्य की प्रगति से महर्षि पूर्ण रूप से परिचित हैं। वे आपके कार्य को सफल बनाने के लिए चिन्तन करते रहते हैं। उनका विचार है कि जिस भाँति आप चल रहे हैं, सफलता अति सदिग्ध है। उन्होंने अपने सदेह को और सदेह के कारणो को आप तक पहुँचाने के लिए मुझको भेजा है।"

"महर्षिजी को मेरे कार्य की सफलता मे सदेह हो रहा है ?"

"हाँ, यद्यपि वे उस कारण को, जिसके कारण यह सदेह और भी दृढ होता जाता है, दूर करने का यत्न कर रहे हैं, इस पर भी रोग का कारण तो आप मे है। इस कारण रोग की चिकित्सा करने से पूर्व वे रोग के कारण को मिटा देना चाहते है।"

"क्या रोग है और क्या कारण है रोग का ?"

"रोग तो है महाराज वृहद्रथ। इस रोग को सेना मे महाराज के गुणानुवाद गा-गाकर आप पुष्ट कर रहे हैं। महर्षि चाहते है कि आज के पश्चात् आप अपने मुख से महाराज का नाम मत लें और यदि कही महाराज के प्रति विरोध प्रकट हो तो आप चुप रहे।"

"मैं तो समझता हूँ कि महाराज का नाम लेने से मैं तथा नवीन-सेना विद्रोह के लाछन से बची रहेगी, अन्यथा यह वृक्ष बडा होने से पूर्व ही नष्ट किया जा सकता है।"

"आपके कार्य के आरम्भ-काल मे भले ही इस बात की आवश्यकता रही हो, परन्तु अब न तो महाराज के नाम की आवश्यकता है और न ही उससे लाभ। विपरीत इसके महाराज वृहद्रथ आपके उद्देश्य के विरोधी है। वे सेना को आपके विरुद्ध भी आज्ञा दे सकते है। ऐसा सम्भव है कि जब सेना एकत्रित हो जावे तो महाराज की आज्ञा हो जाय कि आप राज्यद्रोही हैं और आपको बन्दी बना लिया जाए।

"इसके अतिरिक्त युद्ध बिना पूर्ण राज्य के सहयोग के नही चल सकता। कदाचित् यह एक लम्बा युद्ध होगा। केवल सेट्ठियो के धन से यह सफल नही होगा। इस अवस्था मे वृहद्रथ के विरोध के कारण यवनो से युद्ध असफल होगा।"

"तो क्या किया जाय ?"

"महर्षि आपकी सेना मे एक ब्राह्मणकुमार की प्रतिष्ठा ऊँची कर रहे हैं। वे सैनिको के मन मे यह बात बैठा रहे है कि सेना यवनो से युद्ध करने के लिए तैयार की जा रही है। जो भी व्यक्ति इस युद्ध का विरोध करता है अथवा इसमे सहयोग नही देता, वह देशद्रोही है और सेना उसको शत्रु मानती है।

"महाराज बृहद्रथ भी सेना मे चर्चा का विषय बन रहा है। उसको मूर्ख और भीरु प्रकट किया जा रहा है।

"इस प्रकार महर्षि एक दिशा मे आपके कार्य को ले जाने के लिए यत्नशील है और वे चाहते हैं कि आपको उस दिशा का ज्ञान हो और आप इस दिशा को बदलने का यत्न न करें।"

"मेरी योजना यह नही, जिसका महर्षि अनुमान लगा रहे हैं। मैं अपने लिए कुछ नही कर रहा। मैं चाहता हूँ कि जब यह सेना तैयार हो, महाराज को भेंट मे दे दी जाय और उनको युद्ध के लिए विवश कर दिया जाय।"

"परन्तु बृहद्रथ को कैसे विवश करेंगे ?"

"जब एक विशाल, शस्त्रास्त्र से सुसज्जित सेना को सामने खडी देखेंगे तो वे युद्ध के लिए विवश हो जावेंगे।"

"परन्तु आर्य! यदि सेना के मन मे महाराज के प्रति भक्ति बनी रही तो वह महाराज बृहद्रथ का कहा मानेगी। महाराज सेना को यह भी आज्ञा दे सकते हैं कि आपको बन्दी बना लिया जाय। अथवा वे सेना को विघटन की आज्ञा भी दे सकते हैं। आपको विदित होना चाहिए कि महाराज के ऊपर बौद्ध महाप्रभु का प्रभाव सर्वोपरि है। यह भी हो सकता है कि सेना के एकत्रित होने से पूर्व ही आप महाराज से अकेले मिलने जावें तो वे वही आपको अपने अगरक्षको द्वारा पकडवाकर मृत्यु दण्ड दिलवा दें।"

इस सम्भावना को सुन पुष्यमित्र अरुन्धति का मुख देखता रह गया। इस पर अरुन्धति ने अपना कहना जारी रखा। उसने बताया, "महर्षिजी

से पता चल गया था कि आप महाराज से मिलने पाटलीपुत्र आ रहे है। अतएव उन्होने तुरन्त मुझको एक वेगगामी अश्व देकर कहा कि मै यहाँ पहुँचूँ और आपको ऐसी भूल करने से रोकूँ।"

इस बात को सुनकर तो पुष्यमित्र और भी अधिक विस्मय से अरुन्धति का मुख देखने लगा। उसका आज का कार्यक्रम ऐसा था कि सर्वप्रथम सैनिकों की एक सभा मे उपस्थित हो और पश्चात् मध्याह्न के समय महाराज से भेंट करने की अनुमति ले। महर्षि पाटलीपुत्र से अढाई-सौ-कोस दूर बैठे हुए उसके विषय मे इतना कुछ जानते है, वह समझ नही सका, कैसे ?

कुछ विचार कर उसने कहा, "तो महर्षि जी नही चाहते कि मैं महाराज से मिलूं ?"

"उनको विश्वास है कि वहाँ जाने पर आपके जीवन का भय है।"

"तो फिर क्या करूं ?"

"जो कर रहे है, करते जाएं। केवल महाराज के विषय मे न कुछ कहें और न कुछ सुनें।"

पुष्यमित्र गभीर विचार में बैठा रह गया। वह विचार कर रहा था कि वह किसी शक्ति द्वारा एक ऐसे पथ पर धकेला जा रहा है, जो उसका निर्वाचित किया हुआ नही है। उसे चुप देख अरुन्धति उठ खडी हुई और उसको नमस्कार कर आगार से बाहर जाने लगी। पश्चात् द्वार के पास पहुँच, एकाएक घूमकर खडी हो गई और कहने लगी, "आर्य ने मेरा धन्यवाद नही किया।"

पुष्यमित्र हस पडा और हँसकर कहने लगा, "तो क्या देवी ने मेरे लिए कुछ किया है ?"

"हाँ, यदि आर्य महर्षि का कहा मानेंगे तो उनका सदेश यहाँ तक लाने मे बहुत बडा कार्य किया है। कदाचित् आर्य को सूली पर चढाये जाने से बचा लिया है।"

"तब तो मैं देवी का बहुत आभारी हूँ।"

"तो इस आधार पर आप समझ रहे हैं।"

"क्या ?"

"मेरे दो धर्मभाई यहाँ आए हुए हैं। एक है गजपाद। इसको, जब वह चाहे, आप से मिलने की सुविधा दें। दूसरे का नाम है कान्तमणि। यह आर्य का सहायक बनना चाहता है।'

पुष्यमित्र ने हँसते हुए कहा, "ऐसा प्रतीत होता है कि देवी और महर्षि-जी को मेरे जीवन का बहुत भय लग रहा है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं श्रुति भगवती के अनुसार आत्मा को अमर मानता हूँ और मरने से नहीं डरता।"

"परन्तु आर्य !" अरुन्धति ने द्वार से भीतर हो, पुष्यमित्र के समीप पुनः आकर कहा, "आपके मरने-जीने की महर्षि जी को इतनी चिन्ता नहीं। वह आज के वार्तालाप का विषय भी नहीं। वे तो आपकी योजना के विषय में चिन्तित हैं। यह सत्य है कि न केवल उनको प्रत्युत इस राज्य की कोटि-कोटि जनता को आपकी योजना की चिन्ता है। इसी कारण आपके जीवन की चिन्ता करनी पड़ रही है। आर्य से निवेदन है कि गजपाद तथा कान्तमणि को अपना कार्य करने से मना न करें और उनकी सेवा, जो महर्षि के आदेशानुसार होगी, स्वीकार करें।"

६

अरुन्धति तो पूजागृह से बाहर चली गई, परन्तु पुष्यमित्र इस सब वार्त्तालाप का अर्थ समझने के लिए वहाँ बैठा रहा। कितने ही काल तक वह विचार करता रहा और अपना मार्ग निश्चित करता रहा। उसका ध्यान तब भंग हुआ, जब माँ पूजा के आगार में आकर खड़ी हुई और कहने लगी, "बेटा ! अल्पाहार के लिए तुम्हारे पिता जी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

पुष्यमित्र उठा और भोजन करने वाले आगार में जा पहुँचा। वहाँ पंडित अरुणदत्त और अरुन्धति बैठे थे।

जब तीनों आहार लेने लगे तो पिता ने कहा, "पुष्यमित्र ! मैं रात-भर

राज्य-परिषद् की बात पर विचार करता रहा हूँ। मुझको तो देश तथा जाति के लिए एक भयंकर स्थिति उत्पन्न हो गई प्रतीत होती है। दोनो का विनाश अब समीप ही प्रतीत होता है।

"मैं अब वृद्ध हो चुका हूँ। कदाचित् इसी कारण मेरे कथन का कुछ भी प्रभाव महाराज पर नही रहा। तुम युवा हो, विद्वान् हो। क्या तुम मिलकर महाराज को समझा नही सकते ?"

पुष्यमित्र को महर्षि पतंजलि का कथन स्मरण हो आया। उसने एक बार अरुन्धति के मुख पर देखा। अरुन्धति उत्सुकता से उसके उत्तर की प्रतीक्षा कर रही थी। पुष्यमित्र ने साहस पकड कर कहा, "पिता जी ! मैं महाराज से मिलने मे कोई लाभ नही समझता।"

"तो मैं महामात्य के पद से त्याग-पत्र दे देता हूँ।"

"परन्तु एक महामात्य के मारे जाने की सूचना पर आप त्यागपत्र देंगे तो यह समझा जायगा कि आप भयभीत हो गए है।"

"तो क्या किया जाय ? इस पद पर बने रहने का अब कुछ भी प्रयोजन नही रहा।"

"पिता जी ! मै समझता हूँ कि अभी त्यागपत्र देने का अवसर नही आया। आप सेनापति तथा कोषाध्यक्ष से इस विषय पर राय ले ले। वे भी कदाचित् त्यागपत्र देना चाहेगे। मैं चाहता हूँ कि आप तीनो इकट्ठे ही त्यागपत्र दें।"

"मैं चाहता हूँ कि तुम महाराज से मिल लो। कदाचित् मेरे स्थान पर तुमको महामात्य नियुक्त कर दिया जाय।"

"मैं अभी नही मिल सकता। मैं महर्षिजी के काम से बाहर जा रहा हूँ और नही जानता कि कब तक लौटूंगा।"

"तो क्या महर्षि जी का कार्य राज्यकार्य से भी अधिक आवश्यक है ?"

"वह भी देश का ही कार्य है पिताजी !" अरुन्धति ने पुष्यमित्र को उत्तर देने से बचाने के लिए कहा, "कौन अधिक आवश्यक है तथा कौन कम, यह हम नही जानते। मैं तो इतना जानती हूँ कि महर्षिजी के आदेश

की अवहेलना कल्याणकारी नहीं हो सकती।"

इस बात ने अरुणदत्त का मुख बन्द कर दिया। अल्पाहार समाप्त हुआ तो अरुणदत्त अपने आगार मे वस्त्र बदलने के लिए चला गया। उसे राज्यपरिषद् मे जाना था।

पुष्यमित्र तथा अरुन्धति अभी उसी आगार मे बैठे थे कि भगवती वहां आ पहुँची और आहार लेने लगी। पुष्यमित्र ने अरुन्धति से पूछ लिया, "देवी आश्रम के लिए कब प्रस्थान करने वाली हैं?"

"महर्षि का दूत तो लौट गया है। अब तो मौसी की एक सखी जगदम्बा की लडकी अरुन्धति, मौसी के पास रहने के लिए आई है। मौसी का आग्रह है कि कुछ दिन के लिए वह यहां रह जावे।"

"जगदम्बा? कौन है वह, मां?" पुष्यमित्र ने मां की ओर घूम कर पूछा।

"बेटा! मेरी एक सहपाठिन थी। एक बार पहिले भी यहां आयी थी। तब तुम बहुत छोटे थे। यहां से वह महर्षिजी के आश्रम मे चली गयी थी। पश्चात् उसका मुझे कोई समाचार नहीं मिला। उस समय अरुन्धति भी साथ थी। तब वह पांच वर्ष की बालिका-मात्र थी। अब तो यह सज्ञान हो गयी है। यह अपनी मां का एक पत्र साथ लाई थी और मैंने इसे यहां कुछ दिन रहने के लिए तैयार कर लिया है।"

पुष्यमित्र विचार कर रहा था कि इस लडकी की नस-नस मे राजनीति घॅसी हुई है। इसका प्रत्येक वाक्य तथा कार्य एक उद्देश्य विशेष का सूचक है। इस कारण, उसका अनुमान था कि वह मां के पास रहने का भी कोई उद्देश्य रखती होगी। उस उद्देश्य को भली-भांति समझ न सकने के कारण वह चुप था। उसको चुप देख मां ने कह दिया, "अरुन्धति बहुत ही प्रिय लडकी है। इसके यहां रहने से मुझको सुख अनुभव होगा।"

मां के अल्पाहार समाप्त करने पर तीनो भोजनागार से बाहर निकले। अरुन्धति पुष्यमित्र के पीछे-पीछे उसके आगार मे पहुँच गयी और धीरे से कहने लगी, "मेरी बात को सत्य सिद्ध करने के लिए आपको तो यहां से

[illegible] ।"

"महर्षि जी के आश्रम को ?"

"नहीं, वहाँ जाने की आवश्यकता नहीं। वहाँ से तो समय-समय पर कुछ [illegible], जो [illegible] उनका संदेश दे [illegible] तथा आपका पत्र-[illegible] ।"

"और [illegible] सूचना [illegible] ?"

"[illegible] स्थान पर आपको मिल जाएंगे। अपना नाम बताने से आपको अपना परिचय दे देंगे।"

पुष्यमित्र पाटलीपुत्र में [illegible] था, परन्तु उसी समय सेनापति का प्रतिहार उसको बुलाने आ पहुँचा।

वह सेनापति के भवन को चल पड़ा। सेनापति उत्सुकता से उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। जब पुष्यमित्र वहाँ पहुँचा तो सेनापति उसको एक पृथक् आगार में ले गया और कहने लगा, "देखो पुष्यमित्र! अभी तक तो हमारी योजना ठीक चल रही है। इस समय तक लगभग दो लक्ष सैनिकों को शिक्षा दी जा चुकी है तथा खड्ग इत्यादि शस्त्रास्त्रों से युद्ध करने की विधि उनको बताई जा चुकी है। यह सब आयोजन इतनी चतुराई से चलाया गया है कि पूर्ण राज्य में यही विख्यात है कि महाराज बृहद्रथ ही यह सेना निर्माण कर रहे हैं। परन्तु यह बात अब महाराज के कर्णगोचर एक अन्य ढंग से हुई है। आज परिषद् में इस विषय पर विचार-विनिमय होने जा रहा है। बताओ, मैं स्वीकार करूँ अथवा न ?"

पुष्यमित्र महर्षि पतंजलि के संदेश का अर्थ यही समझा था कि सेना-निर्माण की सूचना सेना को पाटलीपुत्र में एकत्रित करने के पश्चात् ही देनी चाहिए और सेना को एकत्रित करने में लगभग पन्द्रह दिन लग सकते हैं। इस कारण उसने कहा, "आपको अभी सेना-निर्माण से अनभिज्ञता प्रकट करनी चाहिए। यदि बहुत प्रमाण दिए जाएँ तो जाँच करने के लिए समय माँग लीजिएगा।"

"मानलो, इस सेना-निर्माण को राज्यद्रोह घोषित कर मुझे बदी बना लिया गया और मुझे इसके लिए दड दे दिया गया तो ?"

"रात्रि व्यतीत होने से पूर्व ही आपको बदीगृह से बाहर निकाल लिया जायगा।"

"तो इस कार्य के लिए तैयार रहो। मुझको लक्षण कुछ ठीक प्रतीत नहीं हो रहे हैं।"

"मैं पाँच सौ सुभट आपको छुडाने के लिए तैयार रखूँगा।"

: ७ :

सेनापति जानता था कि प्राचीन सेना के सैनिक राजाज्ञा को पवित्र मान, उसका पालन करना पसन्द करेंगे और नवीन सैनिक प्राचीन सैनिको का विरोध नही कर सकेंगे। इस कारण वह चिन्तित था। इस पर भी वह साहसी वीर था और इस कठिनाई का सामना करने के लिए मन को तैयार कर राज्य परिषद् मे गया।

उसको यह सूचना कि महाराज को एक नवीन सेना के निर्माण का ज्ञान है, अपने एक प्रतिहार से मिली थी। वह प्रतिहार उसकी ओर से राज्य प्रासाद का समाचार लाने के लिए नियुक्त किया गया था। इसका ज्ञान नही हो सका कि यह सूचना किस स्रोत से पहुँची है।

सेनापति जब राज्य परिषद् भवन मे पहुँचा तो महाराज के अतिरिक्त सब सदस्य उपस्थित थे। अरुणदत्त तो महामात्य चन्द्रभानु की अनुपस्थिति मे महामात्य का पद ग्रहण किये हुए था। सेठ नीलमणि कोपाध्यक्ष, सेठ महाकान्त प्रमुख न्यायाधीश, महाप्रभु बादरायण, श्रावक सुनन्द भी वहाँ उपस्थित थे। सेनापति विद्रुम आया तो महाराज को सूचना भेज दी गई।

महाराज आये और सभा के सभी सदस्यो ने उठकर महाराज का स्वागत किया। पश्चात् जब सब बैठ गये तो महाराज ने रात वाली बात छोड एक नवीन चर्चा चला दी। उन्होंने कहा, "डेमिट्रियस का राजदूत उसका एक पत्र लेकर आया है। मैं चाहता हूँ कि महाप्रभु वह पत्र

इस परिषद् मे पढकर सुनाएँ ।"

महाराज ने जब सकेत किया तो महाप्रभु ने अपने झोले मे से पत्र निकाल कर पढना प्रारम्भ कर दिया । पत्र मे लिखा था, "हमको विश्वस्त सूत्रो से ज्ञात हुआ है कि मगध साम्राज्य भर मे लाखो की सख्या मे सैनिको की भरती की जा रही है और महाराज का आशय इससे यवन साम्राज्य पर आक्रमण करने का है । इस कारण हम भारत निवासियों को और मगध सम्राट् को चेतावनी देते हैं कि तैयारी एक दम रोक दी जाय, अन्यथा उस नवीन सेना के तैयार होने से पूर्व ही, हम पाटलीपुत्र पर आक्रमण कर देना उचित समझेंगे । इससे जो भी प्रजा अथवा राज्य को हानि होगी, उसका उत्तरदायित्व हम पर नही होगा ।

"हमे एक मास के भीतर इस बात का आश्वासन मिल जाना चाहिए कि सेना भग कर दी गयी है ।"

इतना पढकर बादरायण ने पत्र बन्द कर पुन अपने झोले मे रख लिया । इस पर पण्डित अरुणदत्त ने पूछा, "यह पत्र किसने और किसको लिखा है ?"

महाप्रभु चुप रहे । उत्तर महाराज ने दिया, "एक भिक्षु यह पत्र लाया है । यह भिक्षु उन भिक्षुओ मे से एक है, जो महामात्य चन्द्रभानु के साथ कौशाम्बी भेजे गए थे ।"

"तो सब भिक्षु मार नही डाले गए ?"

"इससे तो यही सिद्ध होता है ।"

"महाराज !" सेठ नीलमणि ने पूछ लिया, "इस पत्र को लिखने वाला कौन है ?"

"पत्र के नीचे डेमिट्रियस के हस्ताक्षर हैं ।"

"ये हस्ताक्षर झूठे भी हो सकते हैं ।"

इस पर न्यायाधीश ने कह दिया, "मैं यह पत्र स्वय देखना चाहता हूँ ।"

"यह पत्र मेरी निजी सम्पत्ति है । यह मुझको लिखा गया है ।" महाप्रभु ने कह दिया ।

"तनिक दिखाइये, हम देखना चाहते हैं।"

"मेरा महाराज से निवेदन है कि मुझको अपने निजी पत्र दिखाने के लिए विवश न किया जाए।"

इस पर महाकान्त ने महाराज को सम्बोधन कर पूछा, "महाराज! डेमिट्रियस हमारा मित्र है अथवा शत्रु ?"

महाराज बृहद्रथ ने कुछ क्षण विचार कर कहा, "जहां तक राजनीति का सम्बन्ध है, वह शत्रु है। परन्तु महाप्रभु तो एक धर्म का प्रतिनिधित्व करते हैं। धर्म की दृष्टि मे कोई शत्रु नही होता।"

"ऐसी अवस्था मे", महाकान्त का कहना था, "महाप्रभु को इस राजनीतिक सस्था से पृथक् हो जाना चाहिए। यह सस्था डेमिट्रियस को तथा यवनो को भारत का शत्रु मानती है। महाप्रभु धर्मगुरु होने से ऐसा नही मान सकते। अतएव उनको राज्य परिषद् का त्याग कर देना चाहिए।"

अब सेनापति ने भी अपने विचार प्रकट कर दिए। उसने कहा, "राज्य परिषद् यह सहन नही कर सकती कि इसका एक सदस्य देश के शत्रु से निजी रूप मे पत्र व्यवहार करे।"

इस पर महाप्रभु ने अपनी स्थिति का वर्णन कर दिया। उसने कहा, "मैं इस परिषद् मे महाराज के निमत्रण पर सदस्य बना हूं। महाराज ने जब मुझको निमन्त्रण दिया था तो यह जानकर ही दिया था कि मैं एक सार्वभौमिक धर्म का नेता हूं। इस राज्य परिषद् मे सम्मिलित होने पर मैंने अपने धर्म को त्याग देने का वचन नही दिया था।

"एक बात मैं और निवेदन करना चाहता हूं कि महाराज तथा महाराज के पूर्वजो ने बौद्ध धर्म के प्रतिनिधियो को राज्य परिषद् मे लेने का निर्णय इस कारण किया था कि हम अपने पचशील से प्रजा मे शान्ति रखने का प्रयत्न करते रहते हैं। देश की कोटि-कोटि जनता हम मे श्रद्धा रखती है। अत महाराज को हमारी और हमारे पथ के लोगो के सहयोग की आवश्यकता रहती है, अन्यथा महाराज की राज्य सत्ता स्थिर नही रह सकती।"

इस पर महाराज बृहद्रथ ने स्पष्ट कह दिया, "इस परिषद् मे सब सद-स्यो का पद एक समान है। उस कारण कोई भी सदस्य किसी की धर्म-परायणता पर टीका-टिप्पणी नही कर सकता।"

इस पर महाकान्त ने कहा, "महाराज! इन श्रावको को या तो परि-षद् मे निकाल दिया जाय अन्यथा राज्य को इनके आदेशानुसार चलाने के लिए हमको परिषद् से निकाल देना चाहिए।"

"हम समझते हैं कि आप दोनो विचार के लोग इसमे रहे और कोई सर्वसम्मति से योजना बनाकर देश के कल्याण का प्रयत्न करे।"

अब महाप्रभु ने कहा, "इस समय सबसे पहले इस नवीन सेना के विषय मे विचार करना चाहिए।"

सेनापति का कहना था, "यह असत्य है। कोई सेना हमारी जान-कारी मे नही है।"

"तो डेमिट्रियस का यह आरोप मिथ्या है?"

"हम यहाँ बैठे जिस बात को जान नही सके, यहाँ से चारसौ-कोस पर बैठा एक विदेशी राजा कैसे जान सकता है? मेरा तो यह कहना है कि न तो कोई नवीन सेना यहाँ बन रही है, न ही यह सूचना डेमिट्रियस को मिली है। यह पत्र झूठमूठ मे बनाकर महाराज को धमकाया जा रहा है।"

"यह असत्य है महाराज! यह पत्र वास्तव मे यवनाधिपति का लिखा है और उसकी यह सूचना सत्य है कि यहाँ पर एक विशाल सेना का निर्माण हो रहा है।"

न्यायाधीश ने कहा, "ऐसी सेना की सूचना न तो महाराज को है और न ही महामात्य को। सेनापति स्वय इससे अनभिज्ञता प्रकट कर रहे हैं। केवल महाप्रभु ही जानते है कि यहाँ एक सेना सगठित की जा रही है। महाप्रभु के अतिरिक्त यवनाधिपति जानते है। इससे यह सिद्ध होता है कि महाप्रभु स्वय ही सेना तैयार कर रहे है और स्वय ही इसकी सूचना उन्होने अपने मित्र डेमिट्रियस को भेजी है। डेमिट्रियस ने भी धमकी अपने

मित्र को भेजी है, महाराज को नहीं। अतएव मेरी प्रार्थना है कि राज-परिषद् का एक सदस्य शत्रु से सम्पर्क कर रहा है और इस राज्य के रह-स्य की बातें शत्रु को बता रहा है।

"ऐसी अवस्था में शत्रु को राज्य की बातें बताने वाले को बन्दी बना-कर न्यायाधीश के अधीन कर दिया जाए, जिससे वह लोग इस अपराधी को उचित दण्ड दे सकें।"

बादरायण इस पर क्रोध से भभक उठा। उसने कहा, "दोषी सेना-पति हैं। उनकी ही आज्ञा से, राज्य-परिषद् की स्वीकृति के बिना सेना निर्माण की जा रही है।"

"यह असत्य है।"

"मैं इसको सत्य सिद्ध कर सकता हूँ।"

"पहिले महाप्रभु अपने को निर्दोष सिद्ध करें। पीछे वे दूसरों पर आरोप उपस्थित कर सकते हैं।"

इस वाद-विवाद को बन्द कर महाराज ने आज्ञा दे दी। उन्होंने कहा, "हम यह जानना चाहते हैं कि क्या यह सत्य है कि यहाँ कोई नवीन सेना सगठित की जा रही है? यदि ऐसा है तो कौन कर रहा है? इसके लिए धन कहाँ से आ रहा है?"

"महाराज स्वयं जाँच करें तो पता चल जायगा।"

"हम आज्ञा देते हैं कि महामात्य और सेनापति पन्द्रह दिन के भीतर इस बात का पूर्ण वृत्तान्त उपस्थित करें और यदि कोई दोषी हो तो उसको पकडकर बन्दी बनाया जाए।"

इस पर अरुणदत्त ने कहा, "महाराज की आज्ञा का पालन किया जायगा, परन्तु इसके साथ ही इस विषय में भी आज्ञा हो कि वह श्रावक, जो डेमिट्रियस का पत्र लेकर आया है, हमारे सामने उपस्थित किया जाय जिससे राज्य के महामात्य चन्द्रभानु के विषय में जानकारी प्राप्त की जा सके।"

"हम आज्ञा देते हैं कि उस श्रावक को महामात्य अरुणदत्त के समक्ष

मे कार्य करने पर विवश हो जायेंगे ।"

सेनापति ने कहा, "बौद्धों के बल से ही मगध में भ्रम फैला हुआ है। वास्तव में यवनों को देश से निकालने के हित में प्राय बौद्ध सब देश-वासियों का साथ देंगे। उनको अपने भिक्षुओं की नीति पसन्द नहीं। यह तो भिक्षुओं ने एक आतंक फैला रखा है कि बौद्ध जनता युद्ध का विरोध करेगी। ऐसा कुछ नहीं होगा, परन्तु यह भय महाराज के मस्तिष्क से निकालने की बात है।"

"इसी के लिए मेरी योजना चल रही है। मैं प्रयत्न कर रहा हूँ कि सब नवीन सैनिक पाटलीपुत्र में एकत्रित हो जाएँ। उनकी धनुर्विद्या तथा खड्ग चलाने में प्रतियोगिता होगी। उनको पुरस्कार मिलेंगे तथा गण-वेश और शस्त्र वितरित किए जायेंगे।

"आप आज्ञा दे दें कि पुराने सैनिकों में से कुछ चुने सैनिक वहाँ एकत्रित हो जायें। हम नवीन तथा प्राचीन सेना में सम्पर्क उत्पन्न करना चाहते हैं।"

"पुष्यमित्र! मुझको एक बात का भय लग रहा है। जब सैनिक एकत्रित हो गए और उन्होंने महाराज बृहद्रथ की जय-जयकार बुला दी और महाराज ने तुम्हे अथवा मुझे बन्दी बनाने की आज्ञा दे दी तो सब सैनिक हमारे विरुद्ध हो जायेंगे।"

"मैं इसका भी प्रबन्ध कर रहा हूँ। इस पर भी मैं चाहता हूँ कि आप इस झमेले से बाहर रहने का यत्न करें। यह इसलिए कि यदि कहीं यह आयोजन असफल रहा तो आप न फँस जायें। इस योजना का उत्तर-दायित्व मैं अपने सिर पर ले लूँगा।"

इस प्रस्ताव पर सेनापति गंभीर हो गया। कुछ क्षण तक विचार कर उसने कहा, "मैं मरने से भयभीत नहीं हूँ। यदि हम अपने उद्देश्य में सफल न हुए तो आगामी दस वर्ष में पूर्ण भारत देश पर यवनों का राज्य स्थापित हो जायगा। ये बौद्ध लोग, जो हिंसा करने से डरते हैं, स्वयं हिंसा का शिकार हो जायेंगे। इनके साथ दूसरे देशवासी भी पिस जायेंगे।"

"तो हमको असफल नही होना। ऐसा ही यत्न किया जायगा।"

पुष्यमित्र के अपने साधन थे, जिनसे वह अपनी पूर्ण योजना के सूत्र अपने हाथ मे रखे हुआ था। यह कार्य वह अर्थ समिति के द्वारा करता था। सेनापति के भवन से निकल वह सीधा सेट्ठी धनसुखराज के पास जा पहुँचा। वहाँ से उसने तीव्रगामी अश्वो पर देश के कोने-कोने मे यह संदेश भिजवा दिया कि सब सैनिक आगामी पूर्णिमा के दिन पाटलीपुत्र मे एकत्रित हो जावे। अर्थ समिति को उसने यह भी सूचित कर दिया कि उस दिन तक सभी सैनिको के लिए गणवेश तथा शस्त्रादि एकत्रित हो जाने चाहिएँ।

धनसुखराज के द्वारा इसका प्रबन्ध कर वह अपने घर पर पहुँचा तो उसको पता चला कि महाप्रभु बादरायण उसके पिता से मिलने आए हुए हैं और दोनो मे गुप्त वार्तालाप चल रहा है। महाप्रभु का रथ गृह के बाहर खडा था और कुछ श्रावक रथ के समीप खडे थे।

पुष्यमित्र अपने आगार मे प्रवेश करने लगा तो एक हृष्ट-पुष्ट युवक उसके सामने आ, प्रणाम कर खडा हो गया। पुष्यमित्र उससे पूछने वाला था कि वह कौन है और किस प्रयोजन से आया है कि उसने स्वय अपना परिचय दे दिया—"मेरा नाम शखपाद है और आपकी सेवा के लिए उपस्थित हूँ।"

"ओह! तुम अरुन्धतिदेवी के भ्राता हो?"

"हाँ, आर्य!"

"क्या कार्य कर सकते हो?"

"अपने आगार मे चलिए। वही चल कर निवेदन करूँगा।"

पुष्यमित्र ऐसा अनुभव करने लगा था कि उसने आँधी उत्पन्न कर दी है, जो अब वेग से चलने लगी है और इस आँधी के बहाव मे वह भी बहता चला जा रहा है।

वह उस दिन महाराज बृहद्रथ के सम्मुख उपस्थित हो, अपनी योजना रखना चाहता था। अरुन्धति ने उसको मना कर दिया था और वह अब अनुभव करता था कि महाराज से न मिलकर उसने ठीक ही किया है।

अब यह अरुन्धति का भाई आया है और कुछ और ही कहना चाहता है।

वह स्वय आगार मे गया तो शखपाद ने भी भीतर प्रवेश किया और आगार को भीतर से बद कर कहने लगा, "मैं महाप्रभु बादरायण के साथ रहने लगा हूँ। महर्षिजी की आज्ञा है कि मैं इनके कार्यों की सूचना उनको भेजता रहूँ। आज महर्षिजी की आज्ञा मिली है कि मैं अपने समाचार अरुन्धति देवी अथवा आपको दिया करूँ।

"महाप्रभु तो मुझको अपने समीप रखना चाहते थे, परन्तु आपके पिताजी ने यह कह दिया कि वे उनसे पृथक् मे बात करेंगे और मैं बाहर खडा रहा।"

पुष्यमित्र महर्षि पतजलि को, अपनी योजना मे इतनी रुचि लेते देख, आश्चर्य करता था। इससे उसके उत्साह मे वृद्धि ही हुई थी। उसने शख-पाद से पूछा, "कुछ नवीन सूचना है ?"

"समाचार यह है कि महाप्रभु यवनाधिपति डेमिट्रियस से पत्र-व्यव-हार कर रहे हैं। महाप्रभु यत्न कर रहे हैं कि डेमिट्रियस बौद्ध धर्म स्वीकार कर ले तो देश भर के बौद्ध उसके राज्य के समर्थक हो जावेंगे। उनको कुछ ऐसा सदेह हो रहा है कि महाराज बृहद्रथ बौद्धो के विरोधी हो रहे हैं। जब से उनको यह सूचना मिली है कि महाराज के नाम पर एक नवीन सेना का निर्माण हो रहा है और महाराज इससे अनभिज्ञता प्रकट कर रहे हैं, वे महाराज की बातो पर विश्वास नही कर रहे।"

"तुम महाप्रभु की क्या सेवा कर रहे हो ?"

"मैं बौद्ध उपासक बना हुआ हूँ और उनको उनकी नीति मे परामर्श देता हूँ। आप मुझको उनका मत्री समझ सकते है।"

"अच्छी बात है।"

"एक व्यक्ति जिसका नाम सुमित्र है, आपके पास नित्य के समाचार लाया करेगा।"

"मैं यह जानना चाहता हूँ कि यहाँ की नवसेना का समाचार डेमि-ट्रियस को महाप्रभु ने दिया है अथवा वह अपने गुप्तचरो द्वारा जान गया है।"

"जहाँ तक मैं समझा हूँ डेमिट्रियम को यहाँ की नवीन सेना का कोई समाचार नही है। वह पत्र, जो आज राज्य परिषद् में उपस्थित किया गया था, झूठा है। वह महाराज को विवश कर उस सेना का विरोधी बनाने के लिए विहार में लिखाया गया है।"

"यह बात हमारे कार्य मे बहुत सहायता देगी, यदि महाप्रभु के लिखे पत्र हमें मिल जाएँ।"

"महाप्रभु अपने हाथ से नही लिखते। वे विहार में एक भिक्षु निर्मल से पत्र लिखवाते हैं।"

"इस पर भी यदि उनके पत्र हमारे पास आजाया करे तो हमे लाभ होगा। हम उन पत्रो की नकली प्रतिलिपि डेमिट्रियस के पास भेज दिया करेंगे।"

"मैं यत्न करूँगा।"

: ६

महाप्रभु विदा हुए तो उनके साथी श्रावक तथा शंखपाद भी उनके साथ चले गए। इस समय पुष्यमित्र को स्मरण हो आया कि अरुन्धति घर में दिखाई नही दे रही। अत: वह माँ के पास गया। उसका विचार था कि वहाँ मिल जायगी, परन्तु वह वहाँ पर भी नही थी। पुष्यमित्र ने माँ से पूछ लिया—

"माँ। अरुन्धति देवी कहाँ गयी है?"

"क्यो? क्या बात है?"

"उसका भाई शखपाद आज मुझे मिला था। उसके विषय में ही बात करनी थी।"

"आज मध्याह्नोत्तर नगर से दो सेट्ठी स्त्रियाँ आई थीं और वह उनके साथ गई है। सर्यास्त से पूर्व ही लौट आयगी।"

"ओह! तो उसके यहाँ अन्य लोग भी परिचित हैं?"

"बेटा! महर्षिजी का परिचय बहुत विस्तृत है। देश का कोई भी नगर ऐसा नही, जहाँ उनके एक-दो शिष्य न हो। अरुन्धति उनकी प्रिय

बताऊँगा ही नही । दूसरे मै उस व्यक्ति का नाम बता दूंगा, जिससे मुझको यह समाचार मिला है ।"

"तो सुनो ! महाप्रभु उस श्रावक को नही लाये । उनका कहना है कि श्रावक कपिलवस्तु चला गया है । मैंने तो उनसे निवेदन किया है कि उस श्रावक को तुरन्त बुला भेजे, जिससे महामात्य चन्द्रभानु के विषय मे जाँच हो सके । इस पर उन्होने कहा है कि वे उस श्रावक के पीछे एक अन्य श्रावक को भेज कर बुला देगे ।"

"मुझको यह पता चला है कि कोई पत्र डेमिट्रियस ने नही भेजा । जो पत्र महाप्रभु ने उपस्थित किया था, वह झूठा है और यह कहानी भी झूठी है कि डेमिट्रियस को पता है कि यहाँ कोई नवीन सेना निर्माण की जा रही है ।"

"इस पर भी यह बात तो वह सिद्ध कर गया है कि वास्तव मे एक विशाल सेना का निर्माण हो रहा है और यह महाराज बृहद्रथ के नाम पर हो रही है ।"

"कैसे सिद्ध कर गया है ?"

"एक बात उसने यह बताई है कि लगभग एक सहस्र सेनानायक एक वर्ष से सेना-शिविर मे से अनुपस्थित रहे है और वे गांव-गाँव मे जाकर सैनिक-शिक्षा दे रहे हैं ।"

"परन्तु यह भी तो किसी को विवश करने के लिए एक महान् झूठ हो सकता है ?"

"इससे किसको विवश करने का विचार हो सकता है ?"

"महाराज को ।"

"परन्तु वह तो यह कहता है कि महाराज स्वय इस सेना का निर्माण कर रहे है । इस-सेना-निर्माण के तुरन्त पश्चात् महाराज हम-सब को, जो उनकी त्रुटियो को जानते है, बदी बना कर सूली पर चढा देगे और तदनन्तर निरकुश राज्य चलायेंगे ।"

"यह तो अति भयकर परिस्थिति है ।" पुष्यमित्र ने मुस्कराते हुए कहा ।

"तुम्हारा भी यही विचार है क्या कि महाराज इस सेना का निर्माण कर रहे हैं ?"

"नही पिता जी ! मुझको तो कुछ ऐसा समझ आ रहा है कि इस राज्य मे महाराज बृहद्रथ तथा बौद्ध-श्रावको और उपासको के अतिरिक्त भी कुछ लोग बसते हैं और वे महाराज तथा बौद्ध-श्रावकों पर अपना विश्वास खो बैठे हैं। वे अपने जीवन को सुरक्षित करने के लिए इस सेना की योजना बना रहे हैं।"

"क्या प्रमाण है इसका तुम्हारे पास ?"

"अनुमान प्रमाण है पिता जी ! महाराज बृहद्रथ के पास न तो धन है और न ही बुद्धि, जिससे वह नवीन सेना का निर्माण कर सके। बौद्ध-श्रावक तो सेनाओ मे विश्वास ही नही रखते। अतएव इन दोनों के अतिरिक्त जो राज्य मे रहते हैं, वे ही हो सकते हैं, जिन्होंने सेना की आवश्यकता अनुभव की होगी।"

"यह तो वे ठीक नही कर रहे।"

"पिता जी ! उनमे से कोई यहां हो, तब ही तो इस कार्य के ठीक अथवा गलत होने पर विचार किया जा सकता है।"

"तो क्या उनकी अनुपस्थिति मे उनके इस कुकर्म पर विचार नही किया जा सकता ?"

"यह न्याय के सिद्धान्तो के विपरीत है। जिस राज्य मे अपराधी की अनुपस्थिति मे उसके अपराध की विवेचना की जाती है, वह राज्य अन्या-याचरण का भागी होता है।"

"और यदि वह अपराधी पकडा न जा सके तो ?"

"तो उस राज्य को अयोग्य मान हटा देना चाहिए।"

पुत्र को इस प्रकार युक्ति करते देख अरुणदत्त विस्मय मे उसका मुख देखता रह गया। इससे पिता को सदेह होने लग गया कि इस नवीन सेना के निर्माण मे उसके पुत्र तथा महर्षि पतजलि का हाथ अवश्य है। उसने चिन्तायुक्त भाव मे पूछा, "बेटा मित्र ! इन अयोग्यो को हटाने का

अधिकार कौन रखता है ?"

"जो पयोग्य से अधिक बलशाली होगा।"

"तो तुम समझते हो कि मगध सम्राट् से अधिक बलशाली कोई यहाँ उत्पन्न हो गया है ?"

"अवश्य हो गया है, पिताजी! एक को तो मैं जानता हूँ। वह डेमिट्रियस है। डेमिट्रियस बृहद्रथ को राज्य-च्युत् करने का अधिकार रखता है और अपने ढग से कर भी रहा है।

"कठिनाई यह प्रतीत होती है कि डेमिट्रियस और बृहद्रथ के मध्य कोई अन्य आ उपस्थित हुआ है। वह कितना शक्तिशाली है, कहा नही जा सकता।"

"महाप्रभु बादरायण के कथन से तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह, महाराज बृहद्रथ को साथ लेकर भी, उस नवीन शक्ति के सम्मुख दुर्बल है। यही कारण है कि वह महाराज बृहद्रथ की डेमिट्रियस से संधि करा-कर, दोनो की शक्तियो को मिला देना चाहता है, जिससे वह शक्ति नष्ट की जा सके और पश्चात् डेमिट्रियस तथा बृहद्रथ परस्पर समझ ले।"

अरुणदत्त ने पुत्र के विचार जानने के लिये कह दिया—"योजना तो बहुत सुन्दर प्रतीत होती है।"

"हाँ, है तो सुन्दर, परन्तु नितान्त मूर्खतापूर्ण। प्रथम तो दोनो मे संधि असम्भव है। कारण यह कि बृहद्रथ की अपनी शक्ति शून्य के तुल्य है और कोई भी शक्तिशाली व्यक्ति किसी निर्बल को अपने समान अधि-कार देने को तैयार नही होगा।" पुष्यमित्र ने गम्भीर हो कहा। उसने अपने कथन को और स्पष्ट करने के लिए कह दिया, "कही डेमिट्रियस बृहद्रथ के साथ मिलकर इस नवीन सेना को कुचलने के लिए तैयार हुआ भी, तो वह पीछे बृहद्रथ को राज्यच्युत् करने के विचार से होगा। वह बृहद्रथ जैसे अयोग्य, दुर्बल, भीरु और मूर्ख को अपने समान मान, संधि नही करेगा।"

"तो कदाचित् डेमिट्रियस उस नवीन शक्ति से संधि कर राज्य का

बँटवारा कर ले।"

"हो सकता है। परन्तु पिताजी! बिना उस व्यक्ति को सामने बुलाए, उसके मन की बात जाने बिना कैसे कोई कुछ कह सकता है?"

एकाएक अरुणदत्त के मन में एक विचार आया। उसने कहा, "तो तुम समझते हो कि उस नवीन शक्ति से मिले बिना नीति निर्धारित नहीं की जा सकती?"

"किसकी नीति पिताजी?"

"मगध सम्राट् बृहद्रथ की।"

"उस नीतिहीन व्यक्ति की नीति कौन निर्धारित करेगा?"

"बेटा! इस समय इस राज्य का महामात्य मैं हूँ और यह मेरा कर्तव्य है कि मैं राज्य की नीति निश्चित करूँ।"

"मगध राज्य की नीति और मगध सम्राट् की नीति एक ही है पिता-जी! अथवा भिन्न भिन्न?"

"यह भी पूछने की बात है क्या?"

"हाँ पिता जी! आपकी सम्मति इस विषय में कभी मानी नहीं गई। इस पर भी आप राज्य के महामात्य हैं। महाराज बृहद्रथ कभी भी राज्य-परिषद् के उस अंग की बात नहीं मानते, जिसमें आप हैं, सेनापति हैं अथवा न्यायाधीश हैं। ऐसी अवस्था में, महाराज बृहद्रथ की नीति का निश्चय तो महाप्रभु कर रहे हैं। अब यह आपके विचार करने की बात है कि आप राज्य की नीति अपने हाथ में लेंगे अथवा महाप्रभु के हाथ में देंगे?"

पंडित अरुणदत्त पुत्र की युक्ति सुन निरुत्तर होता जा रहा था। वह अनुभव कर रहा था कि जहाँ उसकी सुनी नहीं जाती, वहाँ व्यर्थ की महामात्य की पदवी को सुशोभित करने का अर्थ ही क्या है?

इस विषय में एक बार वह न्यायाधीश से बात कर चुका था। उसने न्यायाधीश से पूछा था कि ऐसी अवस्था में, जब उनकी कोई बात सुनी ही नहीं जाती, उनका राज्य-परिषद् में रहने से लाभ ही क्या है? इस

पर न्यायाधीश का कहना था कि जब तक देश मे कोई ऐसी शक्ति उत्पन्न नही हो जाती, जो इन शान्तिवादियो को परास्त कर सके, तब तक उनका मन्त्रिमण्डल मे रहना लाभदायक ही है। वे अशुद्ध नीति का कुछ तो विरोध करते ही रहते हैं।

न्यायाधीश के इस कथन को स्मरण कर अरुणदत्त यह विचार कर रहा था कि क्या अब कोई ऐसी शक्ति उत्पन्न हो गई है, जो इन शान्ति-वादियो से अधिक प्रबल है।

: १० .

पुण्यमित्र दिन-भर की भागदौड के पश्चात् विश्राम कर रहा था कि किसी ने आगार के बाहर बहुत धीमा-सा खटका किया। उसने सतर्क हो पूछा, "कौन है ?"

उसको कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि किसी ने पुनः खटका किया है। वह अपनी शय्या से उठा और द्वार खोल, देखने लगा। बाहर और भीतर भी अधेरा था। उस अधेरे मे उसे एक साया-सा खडा दिखाई दिया। वह साया द्वार खुलते ही भीतर आने लगा। पुण्यमित्र ने उसको रोकने के स्थान भीतर आ जाने दिया और वह स्वय द्वार के समीप ही खडा रहा। वह साया आगार के बीच जाकर खडा हो गया। अब पुण्यमित्र ने पूछा, "कौन हो तुम ?"

"श · श ।" उस साये ने चुप रहने का सकेत किया। इस पर पुण्यमित्र ने कहा, "ठहरो, दीपक जलाता हूँ।"

"नही।" यह अरुन्धति का स्वर था। "सुनिए, शीघ्र ही यहाँ से चले जाइये। राज्यप्रासाद के प्रतिहार तथा सुभट्ट राजाज्ञा लेकर आपको बदी बनाने के लिए आ रहे है।"

"क्यो ?"

"इस बात को बताने का समय नहीं। मैं अभी यहाँ से जाना नही चाहती। इस कारण यह सब-कुछ चोरी-चोरी कर रही हूँ। आप यहाँ से गगा पार कर विशालापुरी चले जाइयेगा। वहाँ निरजन मिश्र के गृह

पर ठहर कर सदेश की प्रतीक्षा करियेगा।"

पुष्यमित्र कुछ क्षण तक विचार करता रहा। पश्चात् बिना कुछ कहे वस्त्र पहिनने लगा। कुछ ही क्षणो मे वह अपने आगार से निकल घर से बाहर चला गया।

अरुन्धति तो पुष्यमित्र से पहले ही उसके आगार से चली गई थी। वह अपने आगार मे पहुँच, भीतर से द्वार बन्द कर अपनी शय्या पर लेट गई। उसको लेटे अभी एक घडी व्यतीत नही हुई थी कि घर के बाहर बहुत हल्ला हुआ। अरुणदत्त तथा घर के अन्य प्राणी उठकर बाहर आ गये और राज्यप्रासाद के सुभट्टो को देख विस्मय करने लगे। सुभट्टो के नायक ने पडित अरुणदत्त को राजाज्ञा दिखाई। नियम मे ऐसी आज्ञा पर महामात्य के हस्ताक्षर होने चाहिए थे, परन्तु इस विशेष परिस्थिति मे महाराज के हस्ताक्षर थे। अरुणदत्त ने महाराज के हस्ताक्षर पहिचाने तो नायक को कह दिया कि वह पुष्यमित्र को बन्दी बना सकता है।

नायक पाँच सुभट्टो के साथ पुष्यमित्र के आगार के बाहर जा खडा हुआ। उसने द्वार खटखटाने के लिए हाथ बढाया, परन्तु द्वार खुला देख वह विचार मे पड गया। इस समय सेवक एक दीपक ले आया और उसके प्रकाश मे उसने देखा कि आगार रिक्त पडा है।

इस पर नायक ने घर की तलाशी लेने की माँग की। अरुन्धति अपने आगार मे सो रही थी। घर के सब आगार देखे गये और अरुन्धति को जगा कर उसका आगार भी देखा गया।

जब घर-भर की तलाशी ले, नायक सुभट्टो के साथ निराश लौटने लगा तो अरुन्धति ने पूछ लिया, "भट्ट जी! किसको ढूंढ रहे हैं?"

"पडित पुष्यमित्र को।"

"ओह! तो आपने पहले क्यो नही बताया? वे तो सायकाल ही यहाँ से चले गये थे।"

नायक ने विस्मय मे अरुन्धति का मुख देखा और उसको निर्भीकता से बातें करते देख चुपचाप चला गया।

उनके जाने के पश्चात् अरुणदत्त ने अरुन्धति से पूछा, "बेटी ! पुष्य-मित्र कह कर नही गया ?"

"मुझको कह गये थे कि आपको सूचित कर दूँ । परन्तु आप सो रहे थे और मैंने आपको जगाना उचित नही समझा ।"

अरुणदत्त सायंकाल पुष्यमित्र से हुई वार्त्तालाप से और अब अरुन्धति के कथन से पुष्यमित्र का इस नवीन सेना से सम्बन्ध समझने लगा था। इस कारण उसने अरुन्धति को अपनी बैठक मे बुलाकर बैठाया और पूछा, "देखो बेटी ! मैं पुष्यमित्र का पिता हूँ और इस नाते यह जानने का अधिकार रखता हूँ कि यह क्या हो रहा है ?"

"पिताजी !" अरुन्धति ने उसकी आँखो मे देखते हुए कहा, "यह जो-कुछ हुआ है, वह तो राज्य के महामात्य अधिक जान सकते है और मैं समझती हूँ कि आपको सेनापति तथा न्यायाधीश को साथ लेकर राज्य-प्रासाद मे जाकर पता करना चाहिए कि यह क्या हुआ है ?

'मैं तो केवल यह बता सकती हूँ कि इस समय राज्यप्रासाद मे महाप्रभु बैठे है और पुष्यमित्र के बंदी बन, वहाँ लाये जाने की प्रतीक्षा कर रहे है।"

"देखो अरुन्धति ! राज्यप्रासाद मे मैं जाऊँगा ही, परन्तु मैं तुमसे जो पूछ रहा हूँ, मुझको उसका उत्तर दो। मैं अब पुष्यमित्र के विरुद्ध आरोपो का उत्तर देने जा रहा हूँ । इस कारण पूर्ण परिस्थिति से परिचय प्राप्त करना चाहता हूँ।"

"पूछिये ।"

"यह नव सेना-निर्माण मे पुष्यमित्र का क्या सम्बन्ध है ?"

"जो निर्माता का निर्माण-कार्य से हो सकता है ।"

अरुणदत्त इस बात की आशंका तो कर रहा था, परन्तु जब अरुन्धति ने इतने स्पष्ट ढंग से कहा तो वह अवाक् बैठा रह गया। इस पर अरुन्धति ने पुन कहा, "पुत्र ने कार्य आरम्भ करने से पूर्व अपने पिता का आशीर्वाद प्राप्त कर लिया था ।"

"ठीक है, परन्तु उसने मुझे कभी भी तो यह नही बताया कि वह

क्या करने जा रहा है ?"

"क्या कभी पिता ने पुत्र से पूछा था कि उसने आशीर्वाद किस विषय मे मांगा है ?"

"परन्तु तुम उसके विषय मे इतना कुछ कैसे जानती हो ? तुम्हारा उससे क्या सम्बन्ध है ?"

"मुझको महर्षिजी ने आर्य पुष्यमित्र की सरक्षिका नियुक्त किया है। इस कार्य के निमित्त साधन भी दिये हैं।"

"तो अब उसकी रक्षा करो।"

"वही तो कर रही हूँ। उसी सरक्षा के अनुरूप आपसे निवेदन कर रही हूँ कि आप राज्यप्रासाद मे जाकर महाराज तथा महाप्रभु से इस खोज का कारण पूछें। यदि वे आपसे अपने पुत्र को बंदी बनाने में सहायता माँगें, तो सहायता देने से इन्कार न करें।"

"परन्तु मैं तो जानता नही कि वह कहाँ है ?"

"इसके जानने की आवश्यकता भी नही। आपने तो केवल आश्वासन देना है कि उसके घर आते ही आप उसको लेकर महाराज की सेवा मे उपस्थित हो जायँगे।"

"परन्तु सेनापति तथा न्यायाधीश को साथ ले जाने की क्या आवश्यकता है ?"

"इसलिए कि वे भी राज्य-परिषद् के सदस्य है और यदि किसी प्रकार का निर्णय माँगा गया तो बहुमत आपके पक्ष मे होगा।"

अरुणदत्त बहुमत के अपने पक्ष मे होने की बात सुन अरुन्धति का मुख विस्मय मे देखता रह गया। पश्चात् वह वस्त्र परिवर्तन कर, अपने रथ पर सवार हो, सेनापति तथा न्यायाधीश को साथ ले राज्यप्रासाद मे जा पहुँचा। इन तीनों को वहाँ पहुँचकर, यह देख अति विस्मयहुआ कि पचास-साठ श्रावक राज्यप्रासाद के बाहर खडे हैं और महाप्रभु का रथ भी एक ओर खड़ा है।

इन्होंने महाराज के पास अपने आने की सूचना भेजी तो महाराज ने

इनको भीतर बुला लिया। महाप्रभु बादरायण, श्रावक सुनन्द और सेट्ठी नीलमणि कोषाध्यक्ष महाराज के पास पहले से ही उपस्थित थे। सेनापति इत्यादि के पहुँचने पर बृहद्रथ ने पूछ लिया, "सेनापति ने इस समय यहाँ आने का कष्ट कैसे किया है ?"

"ऐसा प्रतीत होता है महाराज !" सेनापति ने कहा, "कि राज्यकार्य मे हमारी सेवाओ की आवश्यकता नही रही। अतएव हम अपने-अपने पद से त्याग पत्र देने आये है।"

महाराज ने पूछ लिया, "आज क्या विशेष बात हो गई है, जो त्याग-पत्र देने की स्थिति उत्पन्न हो गई है ?"

"महाराज ने महामात्य के पुत्र को बदी बनाने की आज्ञा भेजी है। ऐसी आज्ञाएँ राज्य-परिषद् मे विचार किये बिना नही दी जाती।"

"यह इस कारण कि महामात्य के सुपुत्र राज्यद्रोह कर रहे है।"

"कौन कहता है ?" न्यायाधीश का प्रश्न था।

"यह सूचना महाप्रभु लाए हैं।"

"सूचना और प्रमाणित दो भिन्न-भिन्न बाते नही है क्या ? महाराज ! महाप्रभु को इस सूचना के लिए धन्यवाद दिया जा सकता है, परन्तु यह सूचना कितनी सत्य है, इसका ज्ञान तो न्यायाधीश द्वारा जाँच के पश्चात् ही किया जा सकता है।

"महाराज के राज्य मे सूचना मिलते ही सत्य माने जाने लगी है। इस कारण अब राज्य मे न्यायाधीश तथा न्यायकर्ताओ की आवश्यकता नही रही प्रतीत होती।"

इस पर महाराज बृहद्रथ कहने लगे, "यह महाप्रभु का कहना है कि अपराधी को भाग जाने का अवसर नही देना चाहिये। इस कारण उसको तुरन्त बदी बनाना उचित माना गया था। न्याय-अन्याय का पीछे विचार कर लिया जायगा।"

"तो ठीक है महाराज ! एक सूचना मैं आपको देता हूँ। महाप्रभु यह समझते हैं कि नवसेना का निर्माण श्रीमान् स्वय कर रहे है और राज्य-

परिषद् से इनको गुप्त रखा जा रहा है। यह इस कारण कि महाराज हम सब को बंदी बनाकर सूली पर चढ़ा देना चाहते हैं।

'महाराज ! मैं जानता हूँ कि यह सूचना न केवल असत्य है, प्रत्युत महाराज का विरोध करने के लिए घड़ी गई है। अतः महाराज का विरोध करने वाले को बंदी बना लेना चाहिए, अन्यथा वह पाटलीपुत्र से भाग भी सकता है।"

"यह आपको किसने कहा है ?"

"महाप्रभु ने स्वयं बताया है। इन्होंने उस धावक को, जो डेमिट्रियस का पत्र लाया था, कहीं छिपा रखा है। इस प्रकार अपने अपराध को छिपाने के लिए अन्याय और अयुक्तिसंगत व्यवहार अपना रहे हैं।"

इस पर सेनापति ने कहा, "महाराज ! यह बात स्पष्ट है कि महाप्रभु और डेमिट्रियस में पत्र-व्यवहार चल रहा है। डेमिट्रियस ने मगध साम्राज्य पर आक्रमण कर, इसके एक भाग को अपने अधीन कर लिया है। साम्राज्य के ऐसे शत्रु से पत्र-व्यवहार करना तो क्षमा नहीं किया जा सकता।"

इस पर महाप्रभु ने अपनी सफाई देने के लिए कहा, "बौद्ध इस देश में बहुसंख्या में हैं। वे युद्ध पसन्द नहीं करते। वे शान्ति चाहते हैं और शान्तिमय उपायों में विश्वास रखते हैं। यदि इस नीति का अवलम्बन नहीं किया गया तो वे न केवल राज्य से पृथक् हो जायँगे, प्रत्युत इन कार्यों में राज्य का विरोध भी करेंगे।"

न्यायाधीश ने कहा, "महाप्रभु के कथन को हम भ्रममूलक मानते हैं। प्रथम तो बौद्ध देश में बहुसंख्या में नहीं हैं। द्वितीय, प्रत्येक अवस्था में वे युद्ध का विरोध करेंगे, यह असत्य है। तृतीय, अल्प मत में बौद्ध किस प्रकार विरोध करेंगे, इसका न बताना भ्रम उत्पन्न करने के लिए है। मैं महाप्रभु से पूछना चाहता हूँ कि मान लो, महाराज युद्ध के लिए सेना को यवनों पर आक्रमण करने के लिए कहते हैं तो किस प्रकार इस आज्ञा का विरोध वे बौद्ध करेंगे ? क्या वे मार्ग तोड़ देंगे ? पुलों तथा नदियों के बाँध तोड़कर सेना का मार्ग अवरुद्ध कर देंगे अथवा लाठियाँ, खड्ग आदि

महाराज से ये अपने देश की सेना से ही युद्ध करने पर उतर आयेंगे।

"मैं समझता हूँ कि जो कुछ ये महाराज को न करने के लिये कह रहे हैं, वही कुछ ये स्वयं महाराज का विरोध करने के लिए करने पर तैयार हो जायंगे। शान्ति-शान्ति का पाठ रटने वाले ये अशान्तिमय व्यवहार के अपनाने में संकोच तक नहीं करेंगे।"

न्यायाधीश जब अपना कथन समाप्त कर चुका तो अरुणदत्त ने कहा, "महाराज! मैं यह प्रार्थना करने आया हूँ कि पुष्यमित्र के विरुद्ध आज्ञा पढ़ कर राज्य-परिषद् से सम्मति ले लें, जिससे इसके न्याययुक्त होने पर विचार हो जाय।"

महाप्रभु का विचार था कि सदा की भांति राज्य-परिषद् के तीन सदस्य एक ओर होंगे और तीन दूसरी ओर। पश्चात् अपना निर्णयात्मक मत देकर महाराज अपनी आज्ञा को उचित सिद्ध कर देंगे। इस कारण वह भी राज्य-परिषद् की सम्मति लेने के तैयार हो गया।

उसने कहा, "यदि महाराज को अपनी आज्ञा के औचित्य पर सदेह है, तो राज्य-परिषद् से परामर्श कर लें।"

महाराज भी इसके लिए तैयार हो गए। अब न्यायाधीश ने पूछा, "मेरा निवेदन है कि इस आज्ञा का आधार क्या है, स्पष्ट किया जाये।"

महाराज ने कहा, "महाप्रभु यह सूचना लाये है कि यह सेना पुष्यमित्र निर्माण कर रहा है?"

"इस सूचना की जांच होनी चाहिए।" सेनापति का कहना था, "इस प्रकार की सूचना मात्र पर राज्य के महामात्य के सुपुत्र को बंदी बनाने की आज्ञा अनर्थकारी हो जाएगी। यह सूचना इतनी फूहड़ है कि सुनते ही अमान्य की जा सकती है। मैं महाप्रभु से पूछता हूँ कि कितने सैनिक भरती किए गए है इस नवीन सेना मे?"

"लगभग दो लक्ष।" महाप्रभु ने उत्तर दिया।

"इनकी शिक्षा पर तथा इनको अस्त्र-शस्त्र देने पर कितना व्यय होना संभव है। वह सब धन पुष्यमित्र के पास है क्या?"

"सभव है यह धन राज्य के शत्रु से प्राप्त किया गया हो ।"

"कौन हो सकता है मगध राज्य का शत्रु ?"

"डेमिट्रियस ।"

"जिसके साथ महाप्रभु का पत्र-व्यवहार चल रहा है ।"

महाप्रभु ने इसका उत्तर नही दिया । इस पर महाराज ने राज्य-परि-षद् के सदस्यो की सम्मति मांगी । महाप्रभु और महाराज की आशा के विपरीत कोषाध्यक्ष नीलमणि ने इस आज्ञा के विरुद्ध अपनी सम्मति दी । परिणामस्वरूप चार सदस्य एक ओर हो गये और महाप्रभु श्रावक सुनन्द के साथ अकेले रह गये ।

महाप्रभु बादरायण यह समझते थे कि नीलमणि पुष्यमित्र के विरुद्ध सम्मति देगा, परन्तु नीलमणि ने स्पष्ट कह दिया, "पुष्यमित्र हमारे महा-मात्य का सुपुत्र है । उसके स्थान पर यदि कोई नीच-से-नीच प्रजा का बालक भी होता तो भी बिना पुष्ट प्रमाणो के बदी बनाना तथा उसको दड देना इस राज्य मे नही होना चाहिए ।"

यह बात तो पीछे पता चली कि जब सुभट्टो को पुष्यमित्र को बदी बनाने की आज्ञा दी गई थी तो महाप्रभु महाराज को समझा रहे थे कि पुष्यमित्र को तुरन्त मृत्युदड दे दिया जाय और महाराज इस बात के लिए लगभग तैयार हो गये थे ।

तृतीय परिच्छेद

: १ :

पाटलीपुत्र के नगर की प्राचीर के बाहर पद्मा विहार के पूजागृह में भगवान् तथागत् की कृष्ण पत्थर की मूर्ति के सम्मुख महाप्रभु बादरायण हाथों में पुष्प, पत्र लिये मूर्ति के चरणों में शीश झुकाए बैठे थे।

महाप्रभु अत्यन्त आर्द्र हृदय से भगवान् तथागत के चरणों में निवेदन कर रहे थे, "प्रभु! जब तुमने प्रकाश दिया है, तो उसका प्रमाण भी दो। तुमने कहा था पंचशील का मार्ग ही सुख और शान्ति का मार्ग है, तो अब इस मार्ग पर चलते हुए सुख और शान्ति की उपलब्धि क्यों नहीं? हे प्रभु! पथभ्रष्टों का मार्ग-दर्शन करो। मानवता में विचलित मन को प्रेरणा देकर स्थिर कर दो। तुम्हारे त्याग और तपस्या की ज्योति सब मानवों के मन में जगमगा उठे और सब मानव एक-दूसरे के प्रति बन्धु-भाव रखें, हिंसा का मार्ग त्याग कर सहिष्णुता के मार्ग का अवलम्बन करें।"

जब महाप्रभु मन के उद्गार इस प्रकार प्रकट कर रहे थे, भवन में दो सौ श्रावक और कई सहस्र उपासक चिन्तन कर रहे थे। यह बौद्ध-उपासना थी। इसके पश्चात् चौथाई घटी-भर बौद्ध मंत्र का जाप हुआ और महाप्रभु ने पंचशील की व्याख्या आरम्भ कर दी। उन्होंने जातकों में से एक कथा सुना दी—

"एक बार भगवान् तथागत् के परमप्रिय शिष्य सुनन्द वैशाली से तुषार शैलभू की ओर जा रहे थे। मार्ग में एक घना वन पड़ता था।

मार्ग वन मे से होकर जाता था। जब सुनन्द उस वन में प्रवेश करने लगे तो वन के तट पर रहने वाले गडरियो ने भिक्षु सुनन्द को बताया कि वन मे एक हिंसक सिंह रहता है। वह किसी भी मनुष्य को जीवित नहीं छोडता। उसको मनुष्य के माँस का स्वाद पड चुका है।

"भिक्षु सुनन्द एक बार तो-अपने जीवन के लिए चिन्ता करने लगे। उनको सदेह हो गया कि उनमे शील का सचार अभी पूर्ण है अथवा नही। इस कारण वे रुक गये। परन्तु अगले ही क्षण उनके मन मे विचार उत्पन्न हुआ कि उन्होने कभी किसी का बुरा चिन्तन नही किया। उन्होंने किसी को अपना शत्रु नही माना। उन्होने मन, वचन तथा कर्म से किसी की हिंसा नही की। जब वे ऐसे हैं, तो अब कोई उनका अकल्याण क्यो करेगा ? इस प्रकार शील से ओत-प्रोत सुनन्द वन की ओर चल पडे। गडरियो ने पुन उनको रोकने का प्रयत्न किया, परन्तु सुनन्द ने उनसे कहा, 'मेरा हित चिन्तन करने वालो! मैं आपका अत्यत आभारी हूँ। परन्तु जब मेरे मन मे कि किसी के लिए द्वेष नही तो भला मुझसे कौन द्वेष करेगा ?' इतना कह वे अपने पथ पर आगे बढ चले।

"इस मार्ग पर कठिनाई यह थी कि वन बहुत लम्बा-चौडा था। एक दिन मे यह पार नही किया जा सकता था। रात वन मे ही व्यतीत करनी पडती थी। सुनन्द का विचार था कि किसी वृक्ष पर चढ कर रात्रि व्यतीत कर लेंगे, परन्तु पुन उनके मन मे आया कि यह दुर्बलता है। एक दुर्बल मन तो पचशील मे अविश्वास का सूचक होता है। इस प्रकार वे अपने मन मे भगवान् तथागत् का चिन्तन करते हुए चलते गये।

"सायकाल वे वन मे, एक नदी के किनारे चबेना चबाकर, जल पी भूमि पर लेट गये। दिन भर की यात्रा के कारण वे बहुत थके हुए थे, और जब वे सोये तो उनको करवट लेने की सुध नही रही।

"गडरिये, जिन्होने सुनन्द को वन मे जाने से मना किया था, अत्यन्त दुखी थे। उनको पीछे पता चला कि सुनन्द भगवान के प्रिय शिष्य है और निर्वाण-पथ पर बहुत दूर तक पहुँचे हुए हैं। वे विचार करने लगे

कि उन्होंने उनको वन मे जाने देकर भूल की है। जब उनको अपनी भूल का ज्ञान हुआ तो वे अपने हाथों मे जलती हुई अग्नि-शिखाएँ लेकर वन मे सुनन्द की खोज पर चल पड़े। लगभग आधी रात्रि की खोज के पश्चात् वे उस नदी के तट पर पहुँचे, जहाँ सुनन्द विश्राम कर रहे थे।

"दूर से गडरियों ने सिह की चमकती आँखो को देखा तो भय से थर-थर काँपने लगे। इस समय उन को स्मरण हो आया कि अग्नि के सम्मुख वन के पशु ठहर नही सकते। इस कारण वे एक-दूसरे के समीप हो, अपनी अग्नि-शिखाओ को तीव्र कर, उस चमकने वाली आँखो की ओर बढे।

"गडरियो ने दूर से देखा कि एक मनुष्य का शव भूमि पर सपाट पड़ा है और सिह उस शव के समीप बैठा हुआ उनकी ओर देख रहा है। उन्होंने समझा कि सुनन्द की हत्या हो चुकी है और सिंह आखेट के माँस का रस-स्वादन कर रहा है। अत सिंह को शव के पास से भगाने के लिए उन्होने हल्ला करना आरम्भ कर दिया।

"उनके विस्मय का ठिकाना नही रहा, जब भिक्षु उनका नाद सुनकर उठ खड़े हुए। भिक्षु को जीवित देख और सिंह को शान्त हो समीप बैठा देख, वे आश्चर्यचकित रह गये।

"सुनन्द परिस्थिति को समझ गये। उनको भगवान के पचशील के सिद्धान्त पर अगाध श्रद्धा हो गई। उन्होंने सिंह की पीठ पर प्यार देकर कहा, 'भद्र! अब जाओ।" सिंह उठा और नदी तट पर चलता हुआ दूर वन मे विलीन हो गया।

"गडरिये सुनन्द को जीवित देख और सिंह के साथ कल्लोल करते देख एक स्वर मे बोल उठे, 'भिक्षु महाराज की जय हो! जय हो!!'

"सुनन्द ने देखा कि उनको तो व्यर्थ मे शोभा मिल रही है। इस कारण उन्होंने सबको एकत्रित कर कहा, 'भगवान् तथागत की जय हो। पचशील की जय हो!! बौद्ध धर्म की जय हो!!'

"पश्चात् वे उन गडरियो को लिये हुए, बुद्ध शरण गच्छामि, धम्म शरण गच्छामि, सघ शरण गच्छामि का गान करते हुए वन के मार्ग पर

चल पडे।"

यह कथा सुनाकर महाप्रभु ने कहा, "उपासको तथा श्रावको ! आज मगध राज्य मे हिंसा की भावना पुन उत्पन्न हो गई है। एक भूले हुए बन्धु ने इस देश पर आक्रमण कर दिया है और इस भूल का उत्तर भूल से दिया जा रहा है। यह ससार मे महा अनर्थ होने लगा है। इस अनर्थ को रोकने की हमारे पास शक्ति नही है। हम केवल यह कर सकते है कि अपने को इस हत्या-काड से पृथक् रखे।

"आज पाटलीपुत्र के दक्षिणी प्राचीर के बाहर विशाल मैदान मे एक महान् सैनिक शिविर लगा हुआ है। उस शिविर मे वीस सहस्र पुराने तथा दो लक्ष नवीन सैनिक एकत्रित हुए है।

"यह जानकर कि इतने अस्त्र-शस्त्रो से सुसज्जित सैनिक एकत्रित हुए है, मेरा हृदय दु ख से भर आया है। उसमे से रक्त चू रहा है। परन्तु मैं पचशील मे बँधा हुआ, किसी के विरुद्ध कुछ कर नही सकता। जिन सेट्ठियो ने इस सेना के निर्माण के लिए धन दिया है, सब-के-सब सहस्रो जन्म तक घोर नरक मे सतप्त रहेगे। भगवान उनको सन्मार्ग दिखाएँ। उनके मन मे पचशील का प्रकाश हो और वे इस कुमार्ग को त्याग कर भगवान की शरण मे आवें।"

इस उपदेश के पश्चात् पुन बौद्ध-मन्त्र का गायन हुआ और उपासना समाप्त हुई।

सहस्रो उपासक तथा श्रावक, जो आज की उपासना मे एकत्रित थे, नगर के बाहर सेना एकत्रित देख, अत्यन्त दु ख अनुभव कर रहे थे। उपासना के पश्चात् जब वे वहाँ से वापिस लौटे तब भी उनके हृदय भारी थे। महाप्रभु ने वास्तविक समस्या का कोई सुझाव उपस्थित नही किया था।

जब पूजा-भवन उपासको से रिक्त हो गया तो महाप्रभु ने श्रावको को कहा, "नगर मे जाओ और महाराज वृहद्रथ की जय-जयकार बुलाओ। आज सायकाल से पूर्व जनता के मन मे राजा तथा राज्य मे चल रहे सघर्ष का निर्णय होने वाला है। राजा की जय का अर्थ है बौद्ध धर्म की जय।

इस कारण जाओ और नगर मे एक बार सबके मुख पर भगवान तथागत और उपासक महाराज बृहद्रथ की जयजयकार के स्वर भर दो।"

: २ :

आज पूर्णिमा थी। पुष्यमित्र के आदेश पर नवीन सेना के दो लक्ष सैनिको मे से लगभग पौने दो लक्ष सैनिक बाहर शिविर मे एकत्रित हो गये थे। इस शिविर का प्रबन्ध पुरानी सेना की वह टुकडी, जो पाटलीपुत्र मे स्थित थी, कर रही थी। शिविर पर व्यय सेट्ठियो की वह समिति कर रही थी, जो पुष्यमित्र ने देश की रक्षार्थ बनाई थी।

जब सैनिक एकत्रित होने लगे तो सूचना महाराज के पास भी आ-पहुँची। राजभवन के प्रतिहारो के नायक ने महाराज के पास पहुँचकर सूचना दी, "महाराज! आज नगर के बाहर बहुत बडा सैनिक-शिविर लगा हुआ है और वहाँ सैनिक भारी सख्या मे एकत्रित हो रहे है। राज्य के चारो ओर से सैनिको के झुड-के-झुड, और भी आ रहे है।"

"किस लिए एकत्रित हो रहे हैं ये?"

"यह कहा जा रहा है कि महाराज अपने नवीन सैनिकों मे सैनिक प्रतियोगिता का आयोजन कर रहे है। इसी निमित्त सभी सैनिक पाटलीपुत्र के बाहर शिविर लगा रहे है।"

महाराज को समझ आया तो उनके पाँव-तले से भूमि खिसक गई। एक बात तो वे समझ गये कि उस दिन तक बौद्ध-श्रावको का व्यवहार अयुक्तिसगत रहा है। उनके हृदय पर यह बात अकित हो चुकी थी कि आक्रमण का विरोध करना उनका कर्तव्य था और इस कर्तव्यपालन मे बौद्ध बाधा बन रहे थे। आज लक्ष-लक्ष सैनिक एकत्रित देख एक बार तो उनकी धमनियो मे सुप्त क्षत्रिय रक्त जाग उठा।

महाराज बृहद्रथ ने इस विषय मे अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए सेनापति को बुला भेजा। जब सेनापति आया तो महाराज ने पूछा, "सेनापति! आपने इस नवीन सेना के विषय मे जानकारी प्राप्त करने के लिए पन्द्रह दिन की अवधि माँगी थी?"

"हाँ महाराज ! मैंने जाँच पूर्ण कर ली है। इसे मैं पूर्ण सूचना सेवा में उपस्थित करने के लिए आने वाला था।"

"परन्तु सेना तो आपकी सूचना से पहिले ही यहाँ पहुँच गई है।"

"मुझको महाराज ने उस सेना को यहाँ आने से रोकने के लिए आज्ञा नहीं दी थी। मुझको तो यह सेना, किसने और क्यों निर्माण की है, का पता करने के लिए आज्ञा दी थी। यह काम मैंने पूर्ण कर लिया है।"

"परन्तु सेनापति ! देश में दूसरी सेना देख तुमने इसको रोकने का यत्न क्यों नहीं किया ?"

"इसलिए महाराज ! कि यह सेना दूसरी नहीं है। यह भी मगध-राज्य की सेना है और आपके अधीन है। इसलिए पुरानी तथा नवीन सेना में कोई भेद नहीं है। जैसे शरीर का एक हाथ दूसरे को काट नहीं सकता, वैसे ही देश की सेना का एक भाग दूसरे को रोक नहीं सकता।"

"परन्तु यह हमारी आज्ञा से निर्माण नहीं हुई।"

"इसके निर्माणकर्ताओं ने महाराज की आज्ञा की आवश्यकता नहीं समझी। उनका विचार है कि वे महाराज की आवश्यकताओं को महाराज से अधिक समझते हैं।"

"महामूर्ख है वे। हम ऐसे व्यक्तियों को, जो अपने को हमसे अधिक योग्य और बुद्धिमान मानते हैं, देश तथा राज्य के लिए घातक समझते हैं। इनको इस धृष्टता का दण्ड मिलना चाहिए।"

"महाराज ! आप पुन धर्म-व्यवस्था को अपने हाथ में ले रहे हैं। आप इन लोगों के विरुद्ध आरोप लगाकर, इनको न्यायाधीन कर दीजिए। यह कार्य न्यायाधीश का है कि वह आपके आरोपों को ठीक अथवा गलत समझे।"

"परन्तु यह तो स्पष्ट है ही कि जो व्यक्ति राज्य की आवश्यकताओं को हमसे अधिक समझता है, वह हमको मूर्ख समझता है।"

"महाराज ! इससे यह तो सिद्ध नहीं होता। देखिए, मैं आपका सेनापति हूँ। आपकी सेना के विषय में मेरा ज्ञान आपसे अधिक है, परन्तु

मैं आपको मूर्ख नही मान सकता। इसी प्रकार न्यायाधीश धर्म के विषय मे आपसे अधिक ज्ञान रखते है, परन्तु वे आपको मूर्ख नही मानते।"

"परन्तु वह है कौन, जो मुझसे अधिक जानता है कि मुझको सेना-निर्माण की आवश्यकता है।"

"महाराज ! देश भर मे नागरिको की एक समिति बनी है। इस समिति की शाखाएं गाँव-गाँव नगर-नगर मे खुल चुकी है। यह सेना उस समिति की शाखाओ ने निर्माण की है। उस समिति ने ही इन सैनिको को पाटलि-पुत्र मे एकत्रित किया है और वह समिति कल एकम् के दिन इस सेना को महाराज की सेवा मे भेंट करना चाहती है।"

महाराज बृहद्रथ इस प्रकार की भेंट का अर्थ समझने मे लीन हो गया। वह अभी विचार कर ही रहा था कि सेनापति ने आगे कहा, "प्रजा महाराज की सेवा मे भेंट दिया ही करती है। नागरिको की इस समिति ने यह सेना भेंट मे देने के लिए निर्माण की है।"

बृहद्रथ समस्या का सुझाव इस प्रकार होता देख प्रसन्न था। इस कारण उसने पूछा, "तो ये लोग कब मिलने आयेंगे ?"

"जब महाराज को अवकाश हो। उनकी इच्छा है कि कल मध्या-ह्नोत्तर आप उनको दर्शन दें और पश्चात् सेना के शिविर मे पूर्ण सेना का निरीक्षण करने के लिए दिन के तीसरे प्रहर पधारें।"

"ठीक है। कल समिति के प्रमुख सदस्य यहाँ उपस्थित हो और पश्चात् हम, राज्य-परिषद् तथा उस समिति के सदस्यो सहित, सेना का निरीक्षण करेंगे। निरीक्षण के पश्चात् हम सेना को सबोधन भी करेंगे।"

इस वार्त्तालाप से सेनापति सन्तुष्ट हो, पुष्यमित्र को समाचार देने चला गया।

महाराज के भेंट स्वीकार करने को तैयार हो जाने ने सबको विस्मय मे डाल दिया। अरुन्धति योजना मे भारी हाथ ले रही थी। वह अब नागरिक समिति की सदस्या मानी जाती थी। वास्तव मे महर्षि पतजलि और उनके शिष्य-वर्ग सैनिको की शिक्षा तथा उनमे बौद्धिक विकास के

कार्यक्रम मे बहुत भाग ले रहे थे।

इस समाचार से एक बार तो अरुन्धति म्लान हो गई। पश्चात् विचार करने लगी कि महर्षि की योजना तो तब कार्यान्वित होनी थी, जब महाराज भेंट स्वीकार करने मे इन्कार कर दें। महाराज स्वयं ही पुष्यमित्र की योजना के अनुसार कार्य करने को तैयार है तो फिर महर्षि की योजना नही चलेगी। यह विचार कर उसने भी इस सूचना पर अपनी प्रसन्नता प्रकट कर दी।

उस रात पुष्यमित्र स्वयं सेना का निरीक्षण कर रहा था। महर्षि के शिष्य पुष्यमित्र को लेकर पूर्ण शिविर मे घूम गये। जहाँ-जहाँ भी पुष्यमित्र गया, महर्षि के शिष्यो ने यह घोषणा की—"राज पुरोहित पण्डित अग्नि-दत्त के सुपुत्र पडित पुष्यमित्र के कहने पर ही यह सेना निर्माण की गई है। पडित पुष्यमित्र का यह कथन है कि नागरिक समिति ने यह सेना डेमिट्रियस को देश से निकालने के लिए निर्माण की है।

"विदेशियो के आक्रमण ने भारत के मुख पर कालख पुत गई है। इस कालख को धोने के लिए इस सेना का निर्माण हुआ है और यह निश्चय है कि शीघ्रातिशीघ्र यवनो पर आक्रमण कर, उनको देश से बाहर निकाल दिया जायगा।"

इस प्रकार पूर्ण शिविर मे पुष्यमित्र को घुमाया गया और सैनिकों को उसकी आज्ञा का पालन करने का आदेश दिया जाता रहा।

जब मध्य रात्रि के समय पुष्यमित्र विश्राम करने अपने घर पहुँचा तो अरुन्धति उसके आगार मे चली आई और पूछने लगी, "आर्य ने महा-राज की इच्छा के विषय मे सुना है क्या ?"

"हाँ, सेनापति तथा पिता जी मिलकर कल के समारोह का कार्यक्रम बना रहे हैं।"

"ठीक है, उनको बनाने दीजिये। मैं तो यह जानना चाहती हूँ कि आपके कार्यक्रम मे कुछ अन्तर पडा है क्या ?"

"अवश्य पडेगा। नागरिको की समिति के सदस्य यह चाहेगे कि

मैं उनका नेतृत्व करूँ।"

"आर्य से मेरा निवेदन है कि ऐसा न किया जाय।"

"क्यों ?"

"यह कार्य तो बच्चों का है। जिनकी बुद्धि अभी बच्चों की भाँति अविकसित है, वे महाराज के दर्शन कर कृतकृत्य होंगे। आर्य तो इस प्रकार की बुद्धि नहीं रखते। मेरा विचार है कि आपका कार्य सैनिक-शिविर में है।"

पुष्यमित्र इसमें कोई युक्ति नहीं समझ सका। इस कारण पूछने लगा, "देवी का अभिप्राय क्या है ? मैंने नागरिकों से लक्ष-लक्ष स्वर्ण एकत्रित कर सेना पर व्यय किये हैं और इस समय उनका नेतृत्व करने से पीछे हट जाना एक प्रकार का द्रोह हो जायगा।"

अरुन्धति ने कह दिया, "मैं इसमें कोई युक्ति नहीं देना चाहती। इस पर भी मेरी आर्य से प्रार्थना है कि वे राज्य-प्रासाद में नागरिकों की समिति के साथ न जायें। मैं इतना ही कह सकती हूँ कि अभी तक तो आर्य को मेरी सम्मति मानकर हानि नहीं उठानी पड़ी। इस बार भी हानि नहीं होगी।"

पुष्यमित्र को ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उसके राज्य-प्रासाद में जाने में अरुन्धति किसी प्रकार के अनिष्ट की संभावना मान रही है।

अरुन्धति अपने आगार में लौट गई तो पुष्यमित्र सोने की तैयारी करने लगा। अभी वह सोया नहीं था कि किसी ने धीरे से द्वार खट-खटाया। खटखटाने के शब्द से पुष्यमित्र समझ गया कि शखपाद है। अतएव पुष्यमित्र ने आगार में अन्धकार कर द्वार खोल दिया। शखपाद भीतर आया तो भीतर से द्वार बंद कर कहने लगा, "हम अभी-अभी महाराज से भेंट कर लौटे हैं। महाप्रभु रथ पर मुझको मेरे घर पर छोड़-कर विहार को लौट गये हैं और मैं अवसर पा, इस ओर नवीन समाचार देने चला आया हूँ। कल कदाचित् मैं नहीं आ सकूँगा।"

"हाँ, क्या समाचार है शखपाद ?"

"नागरिको की समिति जब महाराज को सेना भेंट मे देने जायगी, तो सब सदस्य बदी बना लिए जायँगे। यदि सेनापति, न्यायाधीश तथा महामात्य ने इसमे आपत्ति उठाई तो उनको भी बदी बना लिया जायगा।

"इसके लिए सब प्रबन्ध पूर्ण हो चुका है। राज्य-प्रासाद मे दो सौ सुभट्ट महाराज की आज्ञा का पालन करने के लिए तैयार खडे रहेगे।"

पुष्यमित्र इस सूचना पर अवाक् बैठा रह गया। शखपाद अन्धेरे मे ही आगार का द्वार खोल बाहर निकल गया। पुष्यमित्र अरुन्धति की सूझ-बूझ पर चकित था।

रात-भर वह करवटे लेता रहा और विचार करता रहा। उसको बार-बार महर्षि के कथन का स्मरण आ रहा था कि सेना को राज्य-भक्त बनाना है, राजभक्त नही।"

पुष्यमित्र इसका अर्थ यह समझ रहा था कि राजा के विरुद्ध विप्लव खडा किया जाना चाहिए।

: ३ :

पुष्यमित्र ने अपने पिता तथा सेनापति को शखपाद से प्राप्त सूचना नही बताई। न ही उसने यह बताया कि वह नागरिको की समिति का नेतृत्व क्यो नही कर रहा।

वह स्नानादि कर पूजा से निवृत्त हो, सैनिक-शिविर मे जा पहुँचा। उसे सेना मे भारी हलचल प्रतीत हुई। वह शिविर मे स्थान-स्थान पर घूम रहा था और सैनिक उसको देख महाराज बृहद्रथ के स्थान उसकी जय-जयकार कर उठते थे।

एक सैनिक, जब वह सैनिक-शिविर मे पहुँचा, तो उसका पथ-प्रदर्शक बन, उसके साथ-साथ हो गया। लगभग पचास सैनिक उसके आगे-पीछे चलने लगे थे। इस प्रकार वह समझ रहा था कि उसकी सुरक्षा का विशेष प्रबन्ध किया जा रहा है।

पूर्ण सेना मे घूम आने पर उसको विश्राम के लिए एक खेमे मे ले जाया गया। वहाँ पहुँच, उसके पथ-प्रदर्शक ने कहा, "भगवन्! जलपान

का प्रबन्ध है। आज्ञा हो तो मँगवाया जाये।"

पुष्यमित्र प्रातःकाल ही घर से चला आया था। प्रातः उसने जलपान नहीं लिया था और अब उसकी आवश्यकता अनुभव कर रहा था। इस पर भी उसने अपने पथ-प्रदर्शक का परिचय प्राप्त करना आवश्यक समझा। उसने पूछा, "वीर! तुम कौन हो?"

"भगवन्! मेरा नाम कान्तमणि है। मैं ब्राह्मण-परिवार में उत्पन्न, महर्षि पतंजलि के आश्रम में शिक्षा पा कर इस नवीन सेना में भरती हो गया था। अब मैं यहाँ सेना-नायक हूँ।

"हमने पूर्ण सेना को बीस भागों में विभक्त कर दिया है। प्रत्येक भाग का एक-एक उप-सेनापति है। एक भाग में दस-दस विभाग हैं, जिन पर एक-एक सेना-नायक है। प्रत्येक विभाग में दस-दस टुकड़ियाँ हैं और प्रत्येक टुकडी एक-एक उपनायक के अधीन है।

"एक-एक टुकडी में दस-दस मण्डलियाँ हैं, जिन पर मण्डलेश्वर हैं। इस प्रकार यह संगठन हमने कल ही पूर्ण किया है। हमारी नवीन सेना के सेनापति आप हैं। जब तक यह कार्य-भार आप किसी अन्य को नहीं देते, यह सारी सेना आपके अधीन रहेगी। सेना ने मुझे आपका अंगरक्षक नियुक्त किया है।

"अब आप जैसा आदेश देंगे, सेना उसका पालन करेगी।"

"मेरी इच्छा है," पुष्यमित्र ने कहा, "मैं सब उप-सेनापतियों से मिलना चाहता हूँ।"

कान्तमणि ने ताली बजाई तो एक सैनिक भीतर आ गया। उसने उप-सेनापतियों को एकत्रित होने का आदेश भेज दिया।

जब सब आ गए तो जलपान के लिए आज्ञा हो गई। आहार लेते हुए पुष्यमित्र ने सेना को एकत्रित करने का उद्देश्य पुनः स्पष्ट करने के लिए कहा, "यह तो आपको विदित ही है कि इस सेना के निर्माण में हमारा क्या उद्देश्य है।

"भारत पर विधर्मियों तथा विदेशियों ने आक्रमण कर देश का एक

बहुत बड़ा भूभाग अपने अधिकार मे कर लिया है। हमने यह निश्चय किया है कि उन विदेशियो को देश से बाहर निकाल, वह भूभाग पुन. अपने अधिकार मे लेकर, इसको महाराज बृहद्रथ के राज्य मे मिलायेंगे।

"परन्तु हमे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि महाराज बृहद्रथ यवनो से युद्ध करने मे रुचि नही रखते। महाप्रभु बादरायण उनके परामर्शदाता हैं और वे चाहते हैं कि डेमिट्रियस से सन्धि कर ली जाय अर्थात् उस भूभाग पर उसका अधिकार स्वीकार कर लिया जाय।

"ऐसी अवस्था मे हमारी यह नवीन सेना, बिना महाराज के भी, उन विदेशियो को निकाल बाहर करेगी और यदि महाराज ने इसमे बाधा डाली तो महाराज को हटाकर उनके स्थान पर किसी अन्य को महाराज घोषित कर देगी। किसी भी अवस्था मे हमारा, देश को स्वतन्त्र करने का प्रयास, सफल होकर रहेगा। यह यात्रा अब रुक नही सकती और तब तक नही रुकेगी, जब तक यवन सिन्धु के पार नही कर दिये जाते। कोई भी व्यक्ति अथवा प्रलोभन अब हमको अपने मार्ग से विचलित नही कर सकता।"

इसके पश्चात् कान्तमणि ने सब उप-सेनापतियो का पुष्यमित्र से परिचय कराया। सब उपसेनापतियो ने पुष्यमित्र का, अन्तिम समय तक साथ देने के लिए, वचन दिया।

मध्याह्न के समय जब पुष्यमित्र अपने घर पर पहुँचा तो उसको पता चला कि उसके पिता, सेनापति, कोषाध्यक्ष तथा न्यायाधीश नागरिक समिति के सदस्यो के साथ महाराज से भेंट करने जा चुके है।

सब लोग अति प्रसन्न मुद्रा मे राज्य-प्रासाद को गये थे और आशा कर रहे थे कि आज से नया अध्याय आरम्भ होने जा रहा है। कदाचित् अब शीघ्र ही महाराज यवनो के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देंगे।

जब महामात्य इत्यादि राज्य-प्रासाद मे पहुँचे तो उनको महाराज के सम्मुख उपस्थित कर दिया गया। सेनापति ने देखा कि महाप्रभु बादरायण तथा श्रावक सुनन्द पहले से ही उपस्थित हैं। महाराज एक उच्च आसन

पर विराजमान थे और उनके पीछे बीस सुभट्ट खड्ग धारण किये खड़े थे।

उस आगार के बाहर, जहाँ महाराज से उनकी भेंट होनी थी, लगभग दो सौ सुभट्ट खड्ग धारण किये खड़े थे। सेनापति इनको देख कर यही समझा था कि महाराज की सवारी, जो राज्य-प्रासाद से चलकर सैनिक-शिविर तक जाने वाली है, का प्रबन्ध किया गया है।

आज महाराज राज्य-परिषद् के सदस्यो के आने से पहले ही वहाँ विराजमान थे। अत' जब सब लोग आगार मे प्रविष्ट हुए तो प्रणाम कर खड़े हो गये। जब तक महाराज का आदेश न हो, बैठने का प्रश्न ही नही उठता था। सेनापति को यह बात अखरी।

महाराज ने बिना किसी को बैठने का सकेत किये पूछना आरम्भ कर दिया। उन्होने कहा, "मैं सब का परिचय चाहता हूँ।"

इस पर सेनापति ने खड़े-खड़े ही सेट्ठियो का परिचय कराना आरम्भ कर दिया। परिचय देकर उसने कहा, "महाराज! जब राज्य ने प्रजा के संरक्षण से अपना हाथ खेंच लिया तो प्रजागण के मन मे स्वरक्षा की भावना जागृत हो उठी। उस भावना के अनुरूप पहले पाटलिपुत्र और पश्चात् राज्य-भर के धनी-मानी सेट्ठियो ने एक समिति निर्माण की। उस समिति ने अपने सामने एक उद्देश्य निश्चय किया कि आपके इस राज्य को इतना सुदृढ कर दिया जाय, जिससे उनके धन, सम्पदा तथा स्त्री-वर्ग की रक्षा की जा सके।

"इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये इन्होने धन एकत्रित किया और पश्चात् देश के युवको को सैनिक-शिक्षा देने का कार्यक्रम बनाया। देश मे दो लक्ष से अधिक युवको ने अपने धर्म तथा जाति की रक्षा के लिए अपनी सेवाएँ अवैतनिक देनी स्वीकार की। समिति के कोश मे से केवल शस्त्रास्त्रो तथा गणवेश के लिए धन व्यय किया गया है तथा आज के उत्सव-कार्य पर व्यय किया जा रहा है।

"अब समिति के सदस्य महाराज की सेवा मे उपस्थित हो, देश तथा धर्म के उद्धार के लिए, यह सेना महाराज की सेवा मे भेंट स्वरूप देते है।

सैनिकों का यह विश्वास है कि [illegible] । किन्तु [illegible] नहीं रहेगा और इस समिति का यह विश्वास है कि इस युद्ध पर जो कुछ भी व्यय होगा, [illegible] ।'

इतना कह [illegible] चुप हो गया । वहाँ पर [illegible] के सभी सदस्य तथा समिति के सदस्य खड़े थे और [illegible] नहीं किया गया था । [illegible] । सेनापति भी तो खड़ा था, परन्तु [illegible] हुआ था ।

सेनापति के चुप होने पर, श्रेष्ठियों में से एक ने, एक बड़े थाल में, चाँदी के थाल पर रखी भेंट महाराज के सम्मुख रख दी । सब आशा करते थे कि महाराज उठकर यह भेंट स्वीकार करेंगे, परन्तु महाराज ने हाथ नहीं बढ़ाये ।

बृहद्रथ दुविधा में फँसा हुआ था । वह समझता था कि यह भयंकर है जब एक भी [illegible] बिना युद्ध [illegible] जा सकता है । जहाँ तक हिंसा का प्रश्न था, सब सैनिक स्वभाव से हिंसा में [illegible] हुए थे । अतएव उनसे की जाने वाली हिंसा का [illegible] नहीं होगा । इस कारण उसका मन कह रहा था कि इस भेंट को स्वीकार कर ले । परन्तु उसका बादरायण से वार्तालाप हुआ था और उनमें परस्पर यह निश्चय हो चुका था कि सेना युद्ध के लिए स्वीकार नहीं की जायगी । भेंट में सेना स्वीकार करने पर इसका विघटन कर दिया जायगा ।

इसी दुविधा में फँसा हुआ बृहद्रथ चुप बैठा था । इस पर महाप्रभु बादरायण कहने लगे, "महाराज अपनी प्रजा के मन में अपने प्रति इतनी श्रद्धा तथा भक्ति देखकर बहुत प्रसन्न हुए हैं । वे ऐसी प्रजा को पाकर अपने को कृत-कृत्य मानते हैं ।

"महाराज आपकी इस भेंट को सहर्ष स्वीकार करते हैं और यह घोषणा करते है कि इस नागरिक समिति के सब सदस्यों को पद्मभूषण की उपाधि से विभूषित किया जायगा ।

"एक बात महाराज अभी से स्पष्ट कर देना चाहते है कि समर की आज्ञा देनी अथवा न देनी उनकी अपनी इच्छा पर निर्भर है। इस भेंट को स्वीकार कर वे इसका क्या प्रयोग करेंगे, यह महाराज सेना-शिविर मे, सैनिको के समक्ष प्रकट करेंगे।"

इस पर वह सेट्ठी, जिसने स्वर्ण थाल मे भेंट-पत्र महाराज के चरणो मे रखा था, झुककर हाथ जोड कहने लगा, "महाराज की जय हो ! एक बात मैं अपनी समिति की ओर से निवेदन करना चाहता हूँ कि यह भेंट एक विशेष कार्य-निमित्त की गई है। उस भेंट मे दो लक्ष मगध राज्य के युवको ने अपना जीवन निछावर करना स्वीकार किया है। एक सौ लक्ष स्वर्ण-मुद्रा इन पर व्यय की जा चुकी हैं और इससे भी अधिक समर पर व्यय करने के लिए एकत्रित की गई हैं। इतना कुछ हम प्रजागण एक कार्य-विशेष के लिए महाराज के अर्पण कर रहे है।

"यह कार्य यवनो को देश से निकाल, अपनी प्रजा के धन, जन तथा स्त्री-वर्ग की रक्षा करना है।"

अब महाराज वृहद्रथ कहने लगे, "इसका अर्थ यह हुआ कि इस भेंट के साथ यह शर्त लगाई जा रही है कि अमुक कार्य के लिये ही यह सेना हमारे अधीन की जायगी।"

"हाँ महाराज ! यह हम स्वेच्छा से, परन्तु कार्य-विशेष के लिए, दे रहे हैं। यह कर के रूप मे नही है। यह भेंट है।"

"हम अपने अधीनस्थो की इस प्रकार की आज्ञा से अपना अपमान समझते है।"

इस पर सेनापति, जो वृहद्रथ की इस उद्दण्डता पर क्रोध से उतावला हो रहा था, कहने लगा, "इस अवस्था मे मेरा महाराज से निवेदन है कि वे इस भेंट को स्वीकार न करें।"

"परन्तु सेनापति ! एक ही राज्य मे दो सेना नही रह सकती। जिन्होने यह दूसरी सेना निर्माण की है, देशद्रोह किया है। हम उनको दण्ड देने वाले है।"

"महाराज ! देश मे सेना एक है, दो नही । ये सेनाएं परस्पर विरोधी नही है । इस प्रकार यह सेना का परिवर्द्धन-मात्र ही है ।"

"हम ऐसा नही समझते ।"

"तो आपको समझना होगा ।"

"तुम हमको समझाओगे ? मैं आज्ञा देता हूं कि तुम सब को बन्दी बना लिया जाय ।"

इस समय वे सुभट्ट, जो उस आगार मे खडे थे, अपने खड्ग नग्न कर सभी सदस्यो को, चारो ओर से, घेर कर खडे हो गये । आगार के बाहर से लगभग एक सौ सुभट्ट बन्दी बनाने के लिए भीतर आ गये । सब सदस्यो को रस्सी से बाँधा जाने लगा ।

इस समय महाप्रभु ने नीलमणि कोषाध्यक्ष से कहा, "आप तो इस षड्यन्त्र मे सम्मिलित नही । आप एक ओर हो जायँ ।"

"नही महाप्रभु ! मेरा स्थान यही है । मैं अपने भाई-बान्धवो के साथ ही रहना चाहता हूँ ।"

इस प्रकार सबको रस्सो से बाँध कर राज्य-प्रासाद के एक आगार मे बन्द कर दिया गया ।

इतना कुछ हो चुकने पर, महाराज ने महाप्रभु से पूछा कि अब क्या करना चाहिए । महाप्रभु ने कहा, "महाराज ! हम को भोजन कर तीसरे प्रहर सेना-शिविर मे जाना चाहिए और वहाँ जाकर सेना-विघटन की आज्ञा दे देनी चाहिए ।"

"क्या यह आज्ञा यहाँ से नही भेजी जा सकती ।"

"आज्ञा तो भेजी जा सकती है, परन्तु उसके पालन होने की सम्भावना कम है ।"

"तो हम चलेंगे ।"

४

यह सूचना कि राजपुरोहित इत्यादि सभी लोग बन्दी बना लिये गए हैं, पुष्यमित्र के पास महाराज से पहले जा पहुँची । पुष्यमित्र भोजन कर

शिविर मे पहुँचा ही था कि शखपाद का एक सेवक यह सूचना लेकर आ गया। पुष्यमित्र समझ गया कि कार्य आरम्भ करने का समय आ पहुँचा है। उसने उसी समय एक उप-सेनापति को बुला कर आदेश दिया कि अपने साथ एक सहस्र सैनिक ले जाकर राज्य-प्रासाद पर आक्रमण कर वन्दियो को छुडा लिया जावे। उनके इस कार्य मे कोई भी बाधा खडी करे, तो उसको मृत्यु के घाट उतार दिया जाय।

पुष्यमित्र ने एक अन्य उप-सैनापति के अधीन दस सहस्र सैनिक नगर मे शान्ति स्थापित रखने के लिए भेज दिए।

पुष्यमित्र का विचार था कि महाराज वदियो को छुडाए जाने का विरोध करेंगे और वे, कदाचित् वही, मृत्यु के घाट उतार दिए जावेगे। परन्तु ऐसा हुआ नही।

महाराज वृहद्रथ, महाप्रभु तथा लगभग एक सौ सुभट्टो के साथ सेना-शिविर की ओर प्रस्थान कर चुके थे। सैनिक, जिस मार्ग से राज्य-प्रासाद की ओर गये थे, वह सीधा मार्ग था और महाराज नगर मे घूम-घुमाव कर, आ रहे थे, इस कारण मार्ग मे भी भेंट नही हो सकी। जिस समय पुष्यमित्र के भेजे सैनिक राज्य-प्रासाद पर पहुँचे, महाराज सैनिक-शिविर में आ पहुँचे थे।

पुष्यमित्र महाराज को आया देख, उनके स्वागत के लिए आगे वढा और नमस्कार कर महाराज को साथ ले मच पर चढ गया। इस समय पूर्ण सेना, नवीन तथा पुरानी, मच के सम्मुख पक्तिवद्ध खडी थी। यह निश्चय हुआ था कि पुष्यमित्र का अगरक्षक कान्तमणि, महाराज के पधारने पर महाराज का जयघोष करेगा, परन्तु कान्तमणि ने महाराज के मच पर चढते ही, पुष्यमित्र की जयघोष कर दी।

इस जयघोप के होते ही सैनिको की दो टुकडियाँ मच को चारो ओर से घेर कर खडी हो गईं और उन सुभट्टो को, जो महाराज के साथ आये थे, धकेल कर पीछे हटा दिया गया।

पुष्यमित्र के जयघोष बुलाने का सेना को इतना अभ्यास हो चुका था

कि किसी को भी यह अस्वाभाविक प्रतीत नही हुआ। परन्तु महाराज बृहद्रथ के लिए यह एक नवीन बात थी। उन्होंने घूमकर महाप्रभु से, जो उनके पीछे एक आसन पर बैठे थे, पूछ लिया "यह किसकी जय-जयकार बुलाई जा रही है ?"

इसका उत्तर शखपाद ने, जो महाप्रभु के साथ-साथ आरम्भ से ही रहा था, दिया, "इस सेना के सेनापति की।"

"कौन है वह ?"

पुष्यमित्र ने गर्दन सीधी कर कहा, "यह पद सेना ने मुझको प्रदान किया है।"

"हम इस सेना का विघटन करने आये हैं।"

"तो कर दीजिए महाराज ! यह सेना आपने एकत्रित नही की। अतएव इस विषय मे यह आपकी आज्ञा नही मानेगी।"

"क्या कहा ? हम आज्ञा देते हैं कि इस विद्रोही को पकड लो।"

परन्तु सुभट्ट, जो महाराज के साथ आये थे, दूर हटाये जा चुके थे। महाराज के साथ केवल महाप्रभु बादरायण, भिक्षु सुनन्द तथा शखपाद था। इनके विरोध मे पचास सैनिक खड्ग नग्न किये पुष्यमित्र की प्रत्येक प्रकार से रक्षा करने के लिए तैयार खडे थे। अत किसी को साहस नही हुआ कि पुष्यमित्र की ओर पग बढाये।

इस समय पुष्यमित्र ने सैनिको को सबोधन कर कहना आरम्भ कर दिया। उसने कहा, "वीर सैनिको ! आज मध्याह्न पूर्व नागरिक सुरक्षा समिति के सदस्य तथा महामात्य, सेनापति विद्रुम आदि राज्य सभा के सदस्य मौर्य वशीय महाराज बृहद्रथ के पास पहुँचे थे और यह सेना भेंट-स्वरूप उनको समर्पित करना चाहते थे। वे लोग चाहते थे कि महाराज इस सेना की सहायता से देश-रक्षा का कार्य सम्पन्न कर सकें। परन्तु महाराज ने यह कार्य करना न केवल अस्वीकार किया, प्रत्युत हमारे उन नेताओ को बदी बना लिया और अब यहाँ सेना का विघटन करने उपस्थित हुए हैं।

"इस सेना ने मुझको अपना सेनापति नियुक्त किया है। जब महाराज ने उस भेंट का अस्वीकार कर दिया है, तो उनका उस सेना पर कोई अधिकार नहीं रहा। अतएव उनकी यह आज्ञा कि सेना विघटित की जावे, कुछ अर्थ नहीं रखती।

"यह सेना एक कार्य-विशेष के लिए एकत्रित हुई है। अतएव उस कार्य को सम्पन्न करने के विषय में महाराज बृहद्रथ से मैं पूछता हूँ कि उनको इसमें क्या आपत्ति है?"

"हम उस सेना का विघटन चाहते हैं। इसी में हम देश का कल्याण समझते हैं।"

"तो मैं सेना का कार्य सम्पन्न करने के लिए आज्ञा देता हूँ कि महाराज तथा उनके साथ आये सभी व्यक्ति बंदी बना लिए जायें।"

मंच के नीचे, सुभट्टों में और नवीन सैनिकों में एक साधारण-सा संघर्ष हुआ, जो कुछ ही क्षणों में समाप्त हो गया। अधिकांश सुभट्ट मार डाले गये, शेष बंदी बना लिये गये।

महाराज ने जब देखा कि कोई भी सहायक वहाँ नहीं है, तो वहाँ से भाग खड़े हुए, परन्तु पुष्यमित्र के अंगरक्षक कान्तमणि ने उन्हें पकड़ लिया। इस पर दोनों ओर से खड्ग निकल आये। महाराज ने तो कभी खड्ग चलाया तक नहीं था, इस कारण एक ही वार में उनका सिर धड़ से पृथक् हो पुष्यमित्र के चरणों में गिर पड़ा।

इसी समय कान्तमणि ने पुष्यमित्र का जयघोष कर दिया। यह जयघोष बार-बार किया गया, जिससे बृहद्रथ की हत्या का किसी पर प्रभाव न पड़े। पूर्ण सेना मंच पर हो रहे नाटक को देख रही थी। इस नाटक का अर्थ समझाने के लिए पुष्यमित्र ने कहना आरम्भ किया, "आज मौर्य-वंश का पाटलीपुत्र पर राज्य समाप्त होता है। मगध की प्रजा अब जागृत हो उठी है और देश को विदेशियों से मुक्त करने का कार्य आरम्भ करती है। हम शीघ्र ही सेना को समर के लिए ले चलेंगे और हमको विश्वास है कि मगध के सैनिक मगध के राज्य की सीमा को सिन्धु नदी तक ले

जाकर सांस लेंगे ।

"अब प्रभात हो चुका है । रात्रि का अन्धकार समाप्त हुआ । भारत की उज्ज्वल जगमगाती ज्योति पुन ससार मे जगमग कर उठेगी और इसको देख दुष्ट पापियो की आँखें चुंधिया जायेंगी ।"

जब पुष्यमित्र सैनिको को सबोधन कर रहा था, महाप्रभु वादरायण, यह देख कि किसी ने उसको पकडा नही, मच से उतर सेना-क्षेत्र से बाहर की ओर चल पडा । उसके साथ भिक्षु सुनन्द भी था । जब दोनो सैनिक-क्षेत्र से बाहर निकले तो पाँच सैनिक उनके साथ-साथ हो लिये । इस पर महाप्रभु ने पूछा, "हमारे साथ किस लिये आ रहे हो ?"

'आपको सुरक्षा के साथ विहार मे पहुँचाने के लिये हम आपके साथ चल रहे है । यह इन भगवे वस्त्रो के मान-स्वरूप है ।"

इस समय पुष्यमित्र ने अपना वक्तव्य समाप्त करने के लिये कहा, "हम को शीघ्र ही नवीन मगध-सम्राट् का चुनाव करना है । अभी तो अस्थायी प्रबन्ध किया जायगा । जब तक देश को आततायियो से रिक्त नही किया जाता, तब तक सेना राज्य को अपने हाथ मे रखेगी ।

"सेना राज्य का किस प्रकार सचालन करती है, यह आपको कल तक सूचित कर दिया जायगा ।"

५

सेनापति विद्रुम, पुष्यमित्र, बीसो उप-सेनापति, चार राज्य-परिषद् के सदस्य और दस नागरिक सुरक्षा समिति के सदस्य राजपुरोहित अरुणदत्त के घर पर एकत्रित हो, विचार करने लगे कि बृहद्रथ की मृत्यु के पश्चात् राज्य का कार्य कैसे चलाया जाय । अभी वार्त्तालाप चल ही रहा था कि महर्षि पतजलि वहाँ आ पहुँचे ।

महर्षि को इस समय वहाँ पहुँचते देख, पुष्यमित्र तथा पडित अरुणदत्त को यह समझने मे विलम्ब नही लगा कि पूर्ण घटना-चक्र को चलाने वाले महर्षि ही हैं ।

अरुन्धति महर्षि को लिये हुए सभा मे पहुँची तो सब लोग उनका

सत्कार करने के लिए उठ खडे हुए। वीस उप-सेनापतियो मे से पन्द्रह तो उनके शिष्य ही थे। नागरिक समिति मे अधिकाश सदस्य उनके सक्रिय सहयोग से परिचित थे।

महर्षि जी ने बैठते हुए कहा, "मुझको आने मे कुछ विलम्ब हो गया है। परन्तु जो कुछ हुआ है, भगवदेच्छा से हुआ है। मनुष्य तो उस इच्छा के सम्मुख आंधी मे तिनके के समान ही है।

"मैं समझता हूँ कि एक व्यर्थ के मुकुटधारी, अपने को सम्राट् कहने वाले भीरु, मूर्ख के भार से पृथ्वी के मुक्त होने पर शोच की आवश्यकता नही।

"मगध राज्य की सीमा पर शत्रु एक विशाल सेना लिये खडा है। हमको यह बात समझकर राज्य के भीतर का और पश्चात् बाहर का प्रबन्ध करना है। इस कारण कुछ अधिक वाद-विवाद किये बिना हमको अस्थायी रूप मे मगध का शासक नियुक्त कर लेना चाहिये। पश्चात् राज्य के भीतर शान्ति-व्यवस्था कर कौशाम्बी पर आक्रमण कर देना चाहिए।"

इस प्रकार कार्य की रूपरेखा बाँध महर्षि ने मगध का अस्थायी शासक पुण्यमित्र को नियुक्त करने का प्रस्ताव रख दिया। उन्होने कहा कि अभी शासक को सम्राट् की पदवी नही दी जायगी। मेरी इच्छा है कि जब तक देश की एक अगुष्ठ-भर भूमि भी विधर्मियो के अधीन है, तब तक राज्याभिषेक का उत्सव नही मनाना चाहिये।"

इस प्रस्ताव के स्वीकार होते ही मन्त्रिमण्डल की नियुक्ति की गई। पण्डित अरुणदत्त महामात्य, विद्रुम सेनापति, नीलमणि कोषाध्यक्ष, महाकान्त न्यायाधीश, धनसुखराज व्यापार मन्त्री और सोमभद्र धर्माधीश के साथ मन्त्री-मण्डल पूर्ण कर लिया गया।

इसके अतिरिक्त एक राज्य-सभा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र प्रतिनिधियो से निर्माण की गई। राज्य-सभा को देशहित मे योजनाओ पर विचार करने का अधिकार दे दिया गया।

मध्य रात्रि तक यह सगठन-योजना पर विचार-विनिमय चलता रहा। पश्चात् सब विश्रामार्थ अपने-अपने निवास स्थानो को चले गये। महर्षि

पतजलि का महामात्य अरुणदत्त के गृह पर ही ठहरने का प्रबन्ध कर दिया गया।

महर्षि सोने के लिए आगार मे गये तो अरुन्धति भी उनके आगार मे जा पहुँची। महर्षि ने उसे सम्मुख देख पूछा, "अरुन्धति! जिस कार्य के लिए तुम यहाँ आई थी, वह कहाँ तक पहुँचा है?"

"भगवन्! उसकी सफलता तो आप स्वय देख चुके हैं। मगध मे नया प्रभात हुआ है। यहाँ एक नवीन राज्य-परिवार की नीव पड़ गई है और आपकी कृपा से यह कार्य बहुत ही कम रक्तपात के साथ सम्पन्न हुआ है।

"मौर्य-शिरोमणि चन्द्रगुप्त को नन्दो की हत्या करनी पड़ी थी और सहस्रो राज्य के भक्तो का उस यज्ञ मे होम करना पड़ा था।

"जब अशोक राज्यगद्दी पर बैठा था, तो अपने पूर्ण परिवार को मृत्यु के घाट उतारकर ही ऐसा कर सका था।

"आज तो भारतवर्ष मे क्रान्ति हुई है न्यूनातिन्यून रक्तपात से। सबसे बड़ी बात यह है कि क्रान्ति करने वाला अपने लिए कुछ नही चाहता। वह देश तथा जाति के लिए यह सब-कुछ कर रहा है। आपने उसको शासक बनाया है और वह इस समय से ही राज्य कार्य के चक्के मे पिसने लगा है।"

"परन्तु यह सब कुछ हमे विदित नही क्या? मैं तो अपनी पुत्री अरुन्धति के अपने कार्य के विषय मे जानकारी प्राप्त करना चाहता हूँ।"

"ओह! तो महर्षिजी इस तुच्छ जीव के मनोद्‌गारो के विषय मे जानना चाहते हैं? भगवन्! मेरे हृदय के सकल्प तो पहिले से भी अधिक दृढ हो चुके है। मैंने अपना सर्वस्व अपने देवता के चरणो मे अर्पित कर दिया है। इस पर भी देवता तो पत्थर के बने ही प्रतीत होते हैं।"

"तुमने इस विषय मे किसी से बात की है अथवा नही?"

"माताजी से की थी। परन्तु उन्होने तो इस विषय मे मुझे कभी प्रोत्साहन नही दिया।"

"परन्तु तुम्हारे देवता ने तुम्हारे प्रति कभी अरुचि प्रकट तो नही की?"

"भगवन् ! यह अरुचि तो मन का विषय है और इतने बड़े साम्राज्य के शासक अपने मन की बात बताएँगे थोड़े ही। मैंने तो निवेदन किया है न कि वे निर्मम पत्थर की मूर्ति के समान ही सदा बने रहते हैं।"

"अच्छी बात है। हम अपनी पुत्री की इस विषय में सहायता के उपाय पर विचार करेंगे। अब जाओ, सो रहो।"

अगले दिन अरुन्धति स्नानादि से निवृत्त हो पूजा पर बैठने लगी थी कि पुष्यमित्र ने पूजा के आगार के बाहर आकर पूछा, "देवी अरुन्धति से एक आवश्यक कार्य के लिये परामर्श लेना है। किस समय अवकाश होगा देवी को?"

"यदि तुरन्त आवश्यकता न हो तो मैं दो घड़ी-भर में सेवा में उपस्थित हो सकूँगी।"

"ठीक है। अल्पाहार से पूर्व देवी के दर्शन करना चाहूँगा।"

अरुन्धति पूजा-उपासना से अवकाश पा पुष्यमित्र के आगार में जा पहुँची। पुष्यमित्र अपने पिता से बात कर रहा था। वह कह रहा था, "मगध के महामात्य को सबसे पहिले राज्य के शासक के योग्य भवन का प्रबन्ध करना होगा। कार्य इतना बढ़ जायगा कि इस छोटे से गृह में कठिनाई और असुविधा होगी।"

अरुणदत्त का कहना था, "मैं राज्य-भवन को जा रहा हूँ। वहाँ जाकर बृहद्रथ की रानियों के विषय में कुछ निश्चय करना चाहता हूँ। यदि वे जीवन-भर विधवा के रूप में रहना चाहें तो उनके लिये निर्वाह का प्रबन्ध करना होगा। इतना तो होगा ही कि उनको राज्यभवन छोड़ना होगा। राज्य-प्रासाद मगध के शासक के लिये ही उचित है। उस राज्य-प्रासाद में एक सौ बीस आगार हैं। उनमें से दस आगारों में तो भवन-रक्षक रहते हैं। लगभग पचास आगार बौद्ध-उपासना तथा भिक्षुओं के लिए निश्चित हैं। उनको खाली करवा कर, वहाँ शासक का कार्यालय बना दिया जायगा। बीस आगार राज्य के शासक के लिए हैं। कुछ अन्य आगार हैं, जो मन्त्रीगण तथा महामात्य के प्रयोग में लाये जायंगे।"

है। इस समय अरुन्धति ने पुन. कहा, "मैं किसी की भी सेवा करना स्वीकार नहीं करूँगी।"

इतना कह वह उठ खडी हुई। वह कुछ कहना चाहती थी और इसके लिए अपने मन को नियन्त्रण मे रखना चाहती थी। पुष्यमित्र ने उसके मुख पर देखा तो उसको कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि अरुन्धति की आँखें डबडबा रही हैं। अरुन्धति यह प्रयत्न कर रही थी कि अपने आँसुओ को रोक कर मन के भाव उचित शब्दो मे प्रकट कर दे, परन्तु अपने हृदय की आर्द्रता पुष्यमित्र पर प्रकट होती देख, वह चुपचाप उस आगार से निकल अपने आगार मे चली गई।

पुष्यमित्र कुछ भी समझ नही सका। वह मन मे विचार कर रहा था कि यदि सेवा-कार्य नही करना तो न सही, परन्तु उस रोने का क्या अर्थ है? पश्चात् यह विचार कर कि स्त्री हृदय के रहस्यो को वह नही जानता, वह उठ, अल्पाहार के लिए भोजनालय मे चला गया।

वहाँ महर्षि तथा उसके पिताजी पहले से ही उपस्थित थे। जब पुष्यमित्र भी वहाँ जाकर बैठा तो माँ ने तीनो के लिए अल्पाहार लगा दिया।

प्राय अरुन्धति भी अल्पाहार के समय इनका साथ दिया करती थी, परन्तु आज वह दिखाई नही दी। इस कारण पुष्यमित्र ने माँ से पूछा, "माँ! देवी अरुन्धति कहाँ है?"

"वह अपने आगार मे द्वार भीतर से बद कर बैठी है। मैंने बुलाया तो उसने कह दिया कि उसको खाने मे रुचि नही है।"

पुष्यमित्र ने कहा, "माँ! मैंने उसको गुप्तचर विभाग की मुख्य अधिष्ठात्री बनाने का प्रस्ताव रखा था। इस पर वह रुष्ट होकर चली गई है। कदाचित् अभी भी रुष्ट है।"

महर्षि पतजलि पुष्यमित्र के इस कथन पर हँस पडे। इससे सब उनका मुख देखने लगे। उन्होने हँसकर कहा, "तुमने उसको क्या वेतन देने के लिए कहा था?"

"पाँच सौ स्वर्ण प्रतिमास। परन्तु यह तो बढाया भी जा सकता है।"

महर्षि अब और भी अधिक हँसने लगे। पुष्यमित्र इसका अर्थ नहीं समझा। उसने आदरयुक्त स्वर में कहा, "भगवन्! अभी तक जो सेवा उसने हमारी योजना में की है, वह अमूल्य है। उस समय हमारे पास किसी को भी वेतन देने के लिए धन नहीं था। सब लोग अवैतनिक कार्य कर रहे थे। अब कार्य राज्य करायेगा और सब को वेतन दिया जायगा।"

"पुष्यमित्र! राज्य हो अथवा राजा, कुछ सेवाएँ ऐसी होती हैं, जिनका मूल्याकन अति कठिन है। इस लडकी की सेवाएँ भी इसी प्रकार किसी प्रकार के भी मूल्य से ऊपर हैं। यही कारण है कि जब तुमने उनका मूल्याकन किया तो वह रो पडी।"

"तो भगवन्! आप ही बता दीजिए कि उसकी सेवाओ का मूल्याकन किस प्रकार किया जाय?"

"मैं कैसे बता सकता हूँ? मैं समझता हूँ कि जब किसी वस्तु का मूल्याकन न किया जा सके तो उसे अमूल्य कहकर, वह वस्तु नि शुल्क लेने का यत्न किया जाना चाहिये।"

"अर्थात् उसको यह कार्य अवैतनिक करने के लिए कहूँ?"

"देखो पुष्यमित्र! जब तुम अवैतनिक शब्द का प्रयोग करते हो तो उसका अर्थ होता है कि कार्य तो वेतन के योग्य है, परन्तु या तो राज्य वेतन दे नहीं सकता, अथवा लेने वाले को लेने की आवश्यकता नहीं, इसी कारण वह अवैतनिक कार्य करता है। इस प्रकार तो वह नहीं मानेगी। वह अति भावुक लडकी है। उसकी भावना को सन्तोष दोगे तो वह यह क्या, कोई नीच-से-नीच काम भी कहोगे तो करने को तैयार हो जायगी।"

: ६ :

यह पुष्यमित्र के लिये एक और पहेली थी। वह अब यह जानना चाहता था कि उसकी भावना क्या है और उसको किस प्रकार सन्तोष दिया जा सकता है।

अल्पाहार समाप्त हुआ और पुष्यमित्र बैठक मे चला गया। यहीं उसने अपना कार्यालय बना लिया था। एक-एक मन्त्री के कार्य पर उस मन्त्री

मे विचार-विनिमय हो रहा था। पूर्ण देश के कार्य की व्यवस्था बिगड़ी हुई थी और सब कार्यों को नये सिरे से सगठित करना था। अभी देश के व्यवसाय के विषय में बात हुई थी तो पश्चात् सेना के विषय मे विचार होने लगा। सेनापति गया तो गृह प्रबन्ध का विषय आ उपस्थित हुआ। इस प्रकार कार्य करते-करते मध्याह्नोत्तर हो गया। पुष्यमित्र को भूख का भी ध्यान नही रहा। वह भूल गया था कि भोजन के लिए उसकी प्रतीक्षा की जा रही है।

धर्माध्यक्ष बौद्ध-विहारो के विषय मे परामर्श कर गया ही था कि बैठक के द्वार पर अरुन्धति आ खडी हुई। उसने द्वार पर से ही पुकारा, "आर्य! भोजन का समय हो गया है।"

पुष्यमित्र को हँसी सूझी। उसने अन्यमनस्क भाव से कह दिया, "खाने के लिए रुचि नही है।"

अरुन्धति अपने ही शब्द दुहराये जाते सुन गभीर हो बोली, "आर्य! माँ खिलाएँगी तो भूख लग आयगी।"

"तो देवी की माँ को भी बुलाना पडेगा।"

"देवी की रुचि तो लौट आई है।"

"सत्य? तब तो मैं भी खाऊँगा।"

दोनो हँसते हुए भोजनालय मे जा पहुँचे। वहाँ जाकर उनको पता चला कि पिताजी ने सदेश भेजा है कि वे भोजन पर नही आयेंगे। पुष्यमित्र ने माँ से पूछ लिया, "तो क्या उनको भी अरुचि हो गई है?"

"कुछ ऐसा ही प्रतीत हो रहा है।" माँ ने कहा।

"नही, यह बात नही माताजी!" अरुन्धति ने कहा, "मौर्य बृहद्रथ का अन्त्येष्टि सस्कार कर तीनो रानियाँ श्मशान-भूमि से अभी-अभी लौटी हैं और मगध शासक की आज्ञा है कि राज्यभवन शीघ्रातिशीघ्र रिक्त हो जाना चाहिये। अत पिताजी इस प्रबन्ध के लिए वहाँ ठहरे हुए है।"

"ओह! तो प्रात देवी मेरे कारण भोजन मे अरुचि अनुभव कर रही थी और अब पिता भी मेरे कारण यह अनुभव कर रहे है।"

"देवी ! ऐसा प्रतीत होता है कि तुमने मेरी प्रातः वाली प्रार्थना स्वीकार कर ली है ।"

"जी नहीं ! मैंने कदापि स्वीकार नहीं की ।"

भोजन चल ही रहा था कि पण्डित अरुणादत्त आ पहुँचे । उन्होंने उनको भोजन लेते देख कहा, "आज इतनी देरी तक भोजन हो रहा है ?"

अरुन्धति ने मुस्कराते हुए कहा, "पिता-पुत्र दोनों कार्य में भोजन करना भूल गये थे । वास्तव में कार्य करने का अभ्यास न होने से ही ऐसा होता है । एक बार अभ्यास हो जाने पर सब कार्य नियमपूर्वक और समय पर होने लगेगा ।"

अरुणदत्त हँसता हुआ मुख-हाथ धोने स्नानागार मे चला गया। पुष्यमित्र ने पूछ लिया, "ऐसा प्रतीत होता है कि देवी अरुन्धति को राज्य-कार्य का अभ्यास है। तभी तो कार्य सुचारु रूप से करती हुई भी भोजन नही भूलती।"

"मुझको तो कुछ भी कार्य करने के लिए नही है। इसी कारण समय पर भूख लगती है और समय पर ही खाने के लिए आ पहुँचती हूँ।"

अरुणदत्त आया तो बात समाप्त हो गई। उसने आते ही कहा, "बृहद्रथ की तीनो रानियाँ पद्मा-विहार मे चली गई है। उनका विचार श्राविका बन जाने का है। राज्यभवन कल तक रिक्त करने की आज्ञा दे आया हूँ और उसमे आवश्यक परिवर्तन करने के लिए बता आया हूँ। आशा है कि भवन एक सप्ताह मे शासक के रहने योग्य हो जायगा।"

"और मैं कहाँ रहूँगी?" अरुन्धति ने पूछ लिया।

उत्तर भगवती ने दिया, "तुम तो मेरी अभ्यागत हो। जहाँ मै रहूँगी, वहाँ ही तुमको रहना होगा।"

"मुझको भय लग रहा है कि मेरी स्थिति भूली जा रही है।"

"कौन भूल रहा है तुमको?"

"आज प्रात ही आर्य पुष्यमित्र कह रहे थे कि मुझको राज्य की सेवा स्वीकार कर लेनी चाहिये। मेरा वेतन भी बता रहे थे। मै समझी थी कि मेरा बोझा सहने की शक्ति नही रही।"

"नही-नही अरुन्धति! ऐसी कोई बात नही थी। वह तो तुम्हारी इच्छा पर ही निर्भर है।"

भोजनोपरान्त पुष्यमित्र पुन बैठक मे जा पहुँचा। वहाँ सेनापति तथा न्यायाधीश बैठे उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। पुष्यमित्र विलम्ब के लिए उनसे क्षमा माँगने लगा।

सेनापति ने कहा, "यह देखिये, यह भिक्षुओ का गुरु क्या कर रहा है?" इतना कह उसने पुष्यमित्र के सम्मुख एक पत्र रख दिया।

पत्र मे लिखा था, "यवनाधिपति डेमिट्रियस निकोलाई की सेवा मे

सादर प्रणाम ।

"इस देश मे आज सायकाल विप्लव घटित हो गया है । महाराज बृहद्रथ की हत्या हो गई है और एक अल्पायु युवक स्वय शासक बन बैठा है ।

"इस समय मैं आपसे पुन निवेदन करना चाहता हूँ कि देश मे एक बहुत भारी सख्या मे बौद्ध रहते है । ये सब एक सगठन मे बंधे हुए एक ही विचार के पोषक हैं । इस सगठन को बौद्ध-सघ कहा जाता है । प्रति-दिन प्रात काल और साय ये बौद्ध-भिक्षु तथा उपासक 'सघ शरण गच्छामि' मत्र का जाप करते है ।

"अतएव बौद्ध-सघ जिसकी सहायता करना चाहे, वह मगध का सम्राट बन जायगा । मैं बौद्ध-सघ का गुरु हूँ । बताइये, आप बौद्ध-सघ की सहायता करेंगे अथवा नही ? सहायता के प्रतिकार मे बौद्ध-सघ से आप क्या चाहेगे, अपनी इच्छा से अवगत करें ।"

पुष्यमित्र यह पत्र पढकर अवाक् रह गया । इस पर न्यायाधीश ने कहा, "यह पत्र महाप्रभु के हाथ का लिखा हुआ नही है । न ही नीचे हस्ताक्षर उसके अपने है । अतएव न्याय की दृष्टि मे उसको बदी बनाकर दण्ड नही दिया जा सकता ।"

"मैं जानता हूँ कि यह पत्र किसके हाथ का लिखा हुआ है । उस विहार मे एक भिक्षु निर्मल के नाम से है । वह ही महाप्रभु के स्थान पर हस्ताक्षर करता है ।"

"तब तो मेरी सम्मति है कि महामात्य महाप्रभु को यहाँ बुला भेजें और मैं सैनिक भेज भिक्षु निर्मल को बुलवा लेता हूँ । निर्मल को हम बदी बना लेंगे तो सब बात का पता चल जायगा ।"

"नही, मेरी सम्मति यह है कि जब महाप्रभु महामात्य के पास आयें तो आप निर्मल को बुलाकर महाप्रभु के नाम एक पत्र किसी उचित व्यक्ति के नाम लिखवाइये और महाप्रभु के हस्ताक्षर करवा लीजिये । पीछे दोनो हस्ताक्षर परस्पर मिला कर देख लेगें ।"

"परन्तु श्रीमान् ! एक भिक्षु तो वहाँ था और उसके पास से वह पत्र भी प्राप्त हुआ था। वह आदेश लाने वाली लड़की देवी अरुन्धति थी।"

"ओह ! मैंने देवी को अपने गुप्तचर-विभाग के अध्यक्ष-पद के लिए नियुक्त करना चाहा था, परन्तु उसने यह कह कि वह किसी की सेवा स्वीकार नहीं कर सकती, अस्वीकार कर दिया था।"

"ओह ! तो उनको बिना सेवा स्वीकार किये, यह कार्य करने के लिए कहा जाय।"

"परन्तु वह मानेगी क्या ?"

"आप यत्न तो करिये। मुझे विश्वास है कि जब आप उससे आत्मीयता प्रकट कर सहयोग माँगेंगे, तो वह इन्कार नहीं करेगी।"

लगाया गया। इस पर पुष्यमित्र ने माँ की ओर प्रश्न-भरी दृष्टि से देखा। माँ ने कहा, "तुम लोग खाओ, वह मेरे साथ खायेगी।"

"यह आज क्या हुआ है ?" पुष्यमित्र का प्रश्न था।

अरुणदत्त खिलखिलाकर हँस पडा। उसने कहा, "मैं इस बात की चिरकाल से प्रतीक्षा कर रहा था।"

"पिताजी ! किस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे आप ?"

"तुम्हारे मगधाधिपति होने की।"

"सत्य ? परन्तु मुझको तो इस पदवी के पाने की अभी भी न तो आशा है और न अभिलाषा।"

"अभिलाषा की बात तो मैं नही जानता, परन्तु आशा ही नही, अब तो विश्वास हो गया है कि हमारा शुग परिवार भी भारत के सम्राटो की सूची मे लिखा जायगा और यह सब तुम्हारे प्रयास से ही हुआ है।"

"पिताजी ! एक ब्राह्मण परिवार के लिए यह पदवी क्या शोभनीय है ?"

"ब्राह्मण-पद निस्सन्देह सम्राट्-पद से ऊँचा है, परन्तु जब घर मे किसी घटिया वस्तु का अभाव हो जाय तो बढिया वस्तु का प्रयोग उसके स्थान पर किया जा सकता है। देश मे शौर्यवान क्षत्रियो का अभाव हो गया था। अत एक ब्राह्मण को क्षत्रिय-वर्ण का कार्य करना पडा है।

"मित्र ! तुमने एक वर्ष मे ही अपने क्षत्रिय मानस पुत्र इतनी सख्या मे निर्माण किये हैं कि देश मे जीवन तथा शौर्य का सागर ठाठे मारने लगा है। अब इस सागर के सामने दुष्ट और दुराचारी टिक नही सकते। सब नष्ट-भ्रष्ट होंगे।"

"पिताजी ! वात्सल्यता के प्रभाव मे आप इस दुस्तर कार्य को सरल समझ रहे हैं। वास्तव मे यदि यह कार्य जीवन-भर मे भी समाप्त हो जाय तो भी मैं अपने-आपको धन्य मानूंगा।"

"कार्य को पूर्ण करने के लिए एक जीवन लगेगा अथवा कई, विचारणीय नही है। मैं तो यह कह रहा हूँ कि तुम्हारा मगध का सम्राट् बनना

इस कार्यसिद्धि मे एक सोपान है।"

"मेरे लिए कार्यसिद्धि ही जीवन का लक्ष्य है। मैं स्वप्न देखता हूँ कि पूर्ण देश में, काश्मीर से कन्याकुमारी तक तथा द्वारिका से कामरूप तक देश की पूर्ण प्रजा और राजे-महाराजे एक सूत्र मे बंधे हुए, एक धर्म को मानने वाले, ससार मे एक दृढ चट्टान की भांति खडे दिखाई दें। मैं देखना चाहता हूँ कि आसुरी शक्तियाँ उस पर, सागर की लहरो के समान टकरा कर छितर जायँ। ऐसा साम्राज्य यहाँ पर् बने, जो सहस्रो वर्ष तक चले और जिसकी छत्रछाया मे देश के साधु लोग निर्भय होकर जीवन व्यतीत करे।"

"एवमस्तु !" पिता ने आशीर्वाद के भाव मे कहा, "परन्तु पुष्यमित्र, इतने दुस्तर कार्य को चलाने के लिए कोई जीवन-सगिनी भी तो चाहिये और ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारी माताजी ने तुम्हारे लिये एक निर्वाचित कर ली है।"

पुष्यमित्र को अरुन्धति का उनके साथ भोजन पर न बैठने का अर्थ समझ आया तो हाथ से उठाया ग्रास हाथ मे ही पकडा रह गया। उसका मुख खुला था, परन्तु वह माँ की ओर देखने लगा था। अरुन्धति सामने बैठी, भूमि की ओर देख रही थी।

जब पुष्यमित्र ने अपने चचल मन पर सन्तुलन पाया तो माँ से पूछा, "माँ ! यह सत्य है क्या ?"

"हाँ बेटा ! अरुन्धति प्रत्येक प्रकार से मगध-सम्राज्ञी बनने के योग्य है। वह वृहद्रथ की रानियों की भाँति अपने अयोग्य सम्बन्धियो को राज्य पर न लाद, सम्राट् के राज्यभार को बाँटकर अपने कन्धो पर उठाने की योग्यता रखती है। बेटा ! मानव त्रुटियो को छोडकर अरुन्धति बहुत ही अच्छी लडकी है और मैंने इसको इस घर की स्वामिन् का पद दे दिया है।"

"माँ ! जो मन मे आये करो, परन्तु मेरा कार्य अभी आरम्भ ही हुआ है। मैं जब तक इसको पूर्ण नही कर लेता, तब तक न तो सम्राट् बनूंगा और न ही किसी को सम्राज्ञी बनाऊँगा।"

"ठीक है।" अरण्यदत्त ने कह दिया, "हमको अपने गुप्तचर-विभाग के लिए अधिष्ठात्री की आवश्यकता है और हम इस पद पर अरुन्धति की नियुक्ति करते हैं।"

"परन्तु पिताजी! वह तो इसको अस्वीकार कर चुकी है।"

"परन्तु गुप्तचर-विभाग तो महामात्य के अधीन है। विना उसकी सहमति के उसकी नियुक्ति हो कैसे सकती थी?"

पुष्यमित्र यह सुन विस्मय मे अरुन्धति का मुख देखता रह गया। वह अभी भी आंखे मूंदे हुए बैठी थी।

पुष्यमित्र अब निश्चिन्त हो भोजन करने लगा। एकाएक उसके मन मे एक वात आई। उसने पूछा, "पिताजी! गुप्तचर-विभाग की अधिष्ठात्री के लिए वेतन कितना निश्चित हुआ है?"

"वेतन जी भर कर दिया है। इस पर भी मै समझता हूँ कि इतना हम दे सकेंगे। मैं इस कार्य के प्रतिकार मे इसको जीवन-भर के लिए अपना एकलौता पुत्र सौंप रहा हूँ।"

इस पर भगवती हंस पडी।

: ८ :

विगडे राज्य को सुदृढ आधारो पर खडा करना एक अति कठिन समस्या थी। विशेष रूप मे जव प्रजा का एक भाग उस राज्य के सुदृढ होने को ही गलत समझे। परन्तु पुष्यमित्र लौह-पुरुष था। उसकी पूर्ण राजनीति दृढ आधारो पर वनी थी। वह उन आधारभूत सिद्धान्तो को पकड कर दृढता से कार्यसिद्धि मे लग गया।

ज्यों ही अरुन्धति ने गुप्तचर-विभाग को अपने अधिकार मे लिया और इसमे महर्षि पतञ्जलि ने अपने आश्रम के सव योग्य शिष्यो की सेवा दे दी, तो प्रजा के विरोधी अशो का धीरे-धीरे उन्मूलन होने लगा।

पहले ही दिन अरुन्धति ने अपने गुप्तचरो का एक जाल पद्मा-विहार, जिसमे महाप्रभु वादरायण छिपा हुआ था, विछा दिया। सैनिको ने तो विहार मे आने-जाने वालो पर निरीक्षण रखना आरम्भ कर दिया, परन्तु

"दुष्ट और असुर शब्दो के प्रयोग से ब्राह्मण मिथ्या भ्रम उत्पन्न करते रहते हैं। कौन श्रेष्ठ है, कौन दुष्ट, कहना कठिन है। भगवान तथागत का कथन है कि इसका निर्णय तुम मत करो। उसको प्रकृति अर्थात् भगवान की आत्मा के लिए छोड दो। वह उनको सन्मार्ग दिखाएगा।

"इस पर भी उपासको को इससे समाधान नही हो रहा। एक उपासक ने यह आशका प्रकट की थी कि जब दुष्ट की दुष्टता का निर्णय हम नही कर सकते तो यह हम कैसे कह सकते हैं कि यह ब्राह्मण-राज्य दुष्टो का राज्य है। हमको सबके साथ सहिष्णुता तथा सदाचारिता का व्यवहार अपनाना है। अत हमको वर्तमान राज्य के साथ भी ऐसा ही व्यवहार करना चाहिये। उसके भले-बुरे का निर्णय भगवान तथागत की आत्मा के लिए छोड दे। वे ही इनके दोषो को दूर करेंगे।"

इस पर एक अन्य उपासक ने कहा कि जिसने हमारी बहू-बेटियो से बलात्कार किया है, जिसने हमारा धन-सम्पद् लूटा है, उसकी दुष्टता को तो क्षमा कर, उससे मैत्रीपूर्ण व्यवहार करना आरम्भ कर दें और जो हमको धन-सम्पदा, सुख-सुविधा तथा मानयुक्त जीवन चलाने का अवसर दे रहा है, उसका हम विरोध करे और उसके विनाश के लिए षड्यन्त्र करे ?

"इस प्रकार विहार मे श्रावको का प्रभाव कम होता जा रहा है और उपासको की सख्या मे भारी कमी हुई है।"

इस समाचार को सुन पुण्यमित्र ने कहा, "यह कार्य हमारे शिक्षा-विभाग का है। महर्षिजी ने इस कार्य को अपने हाथ मे ले लिया है और उनके शिष्य-मडल का सन्यासी-वर्ग नगर-नगर तथा ग्राम-ग्राम घूमकर भगवद्गीता का उपदेश दे रहा है। उससे दी गई युक्तियो का बौद्धो के पास कोई उत्तर नही।

"अब स्थिति ऐसी आ गई है कि हम यह घोषणा कर दे कि राज्य की ओर से किसी भी सम्प्रदाय का विरोध अथवा सहायता नही होगी। इस राज्य मे प्रत्येक व्यक्ति को स्वतत्रता है कि वह अपने सम्प्रदाय की वृद्धि और उसमे सुधार का यत्न करे। राज्य इसमे आपत्ति नही उठायेगा।

साथ ही जो भी व्यक्ति जन-साधारण की शिक्षा पर जितना व्यय करेगा, उतने धन पर राज्य उससे कर नही लेगा।"

जब मन्त्रिमडल ने इस घोषणा की स्वीकृति दी तो इसके राज्य-भर मे प्रसार का प्रबन्ध भी कर दिया गया।

अब पुष्यमित्र ने सेनापति से पूछ लिया, "समर की तैयारी मे क्या त्रुटि रह गई है?"

"श्रीमान्! जहाँ तक सेना का सम्बन्ध है, हमने इसको अपने राज्य के तीन स्थानो पर एकत्रित कर लिया है। ये तीनो स्थान कौशाम्बी से तीन दिन की पैदल यात्रा की दूरी पर हैं। अर्थात् यहाँ से आज्ञा पाते ही चौथे-दिन हम कौशाम्बी पर अधिकार कर, इसको यवनो से रिक्त कर देंगे।"

इस पर महामात्य ने बताया, "जहाँ तक देश की आन्तरिक स्थिति का सम्बन्ध है, श्रावको का विरोध निस्तेज हो रहा है। पड़ौसी राज्यो मे आन्ध्र विदर्भ, साकेत तथा मल्ल से सन्धि की बातचीत हो रही है। इनमे केवल साकेत विपरीत दिखाई देता है। यह समाचार मिला है कि वह डेमिट्रियस से सन्धि करने का यत्न कर रहा है।"

पुष्यमित्र ने पूछा, "क्या यह ठीक नही कि साकेत तथा डेमिट्रियस की सन्धि होने से पूर्व ही आक्रमण कर दिया जावे?"

महामात्य का कहना था, "जब तक एक पराजय विदेशियो को नहीं दी जाती, तब तक देशीय राज्यो से सुदृढ सधि सभव नही। अभी तक कोई भी देशीय राज्य हमारे इस दावे को कि हममे यवनो को परास्त करने की सामर्थ्य है, स्वीकार नही करता। वे समझते हैं कि हमारा राज्य नवीन है और हमारा राज्याधिकारी ब्राह्मण है। इस कारण हम लोग बातें बहुत बनाते हैं, परन्तु युद्ध मे प्रवीणता नही रख सकते। अतएव हमारा सहयोग करना तो दूर, ये राज्य हमारे साथ मैत्री करने मे भी सकोच कर रहे हैं।

"डेमिट्रियस ने हमको अपना शत्रु घोषित कर दिया है और अन्य भारतीय राज्य डेमिट्रियस के शत्रु से तब तक सधि नही करेंगे, जब तक उनको इस बात का विश्वास नही हो जाता कि हम डेमिट्रियस से प्रबल हैं। इस

कारण यह अत्यावश्यक है कि हम एक बार तो डेमिट्रियस से मोर्चा गाड, उसको कौशाम्बी से बाहर निकाल दे।"

सेनापति का कहना था, "श्रीमान् को यह बता देना चाहता हूँ कि साकेत एक समय मगध राज्य के अन्तर्गत था। गृहवर्मन् के काल मे इसने स्वतंत्रता घोषित की थी। उस समय इसके स्वतत्र होने मे कारण यह था कि इस राज्य को मगध साम्राज्य मे बौद्धो का हस्तक्षेप पसन्द नही था। बौद्ध साकेत मे अपने विहार बनाने लगे थे और साकेत की जनता यह पसन्द नही करती थी। अत उस राज्य ने बौद्ध श्रावको से बचने का सहज उपाय यह समझा कि मगध से पृथक् हो जाए।

"परन्तु अब परिस्थिति भिन्न है। साकेत को यह विश्वास ही नही आता कि मगध कभी बौद्ध के प्रभाव से स्वतत्र हो सकता है। साथ ही वह समझता है कि विदेशियो को हम कभी भी देश से बाहर निकाल नही सकेंगे। अतएव वह पहले डेमिट्रियस से सधि कर हमारा विरोध करना चाहता है। हमको परास्त कर वह उससे निपटने का विचार करेगा।

"अभी तक डेमिट्रियस से सन्धि मे मतभेद इस बात पर है कि मगध का बँटवारा साकेत और डेमिट्रियस मे कैसे हो?"

इस पर यह निश्चय हो गया कि कौशाम्बी को शीघ्रातिशीघ्र यवनो से रिक्त करवाना चाहिये।

: ६ :

इस पर भी आक्रमण की आज्ञा जाने से पूर्व ही स्थिति बदल गई। मन्त्रिमडल की बैठक समाप्त हुई और मन्त्रीगण अपने-अपने घरो को चले गये थे। युद्ध की आज्ञा अगले दिन दी जाने वाली थी।

पुष्यमित्र, महामात्य और सेनापति राज्यभवन मे रहते थे। जहाँ अरुण-दत्त और सेनापति के कक्ष सब प्रकार के सुख-प्रसाधनो से युक्त थे, पुष्यमित्र का आगार बिल्कुल साधारण-सा था। इसमे उसने अपने सोने के लिए एक लकडी का पलग मात्र रखा हुआ था।

अरुन्धति भी राज्यप्रासाद मे भगवती के साथ रहती थी और सादगी

मे उनका कक्ष पुष्यमित्र के समान ही था।

पुष्यमित्र अपने आगार मे विश्राम करने पहुँचा और वस्त्र परिवर्तन कर सोने की तैयारी करने लगा। इसी समय प्रतिहार ने आकर सूचना दी कि देवी अरुन्धति किसी आवश्यक कार्य से उससे अभी मिलना चाहती है।

पुष्यमित्र ने एक क्षण विचार किया तत्पश्चात् प्रतिहार से कहा, "उसको बैठक मे बिठाओ। मैं अभी आता हूँ।"

पुष्यमित्र पुन वस्त्र पहन, बाहर बैठक मे आ गया। वहाँ अरुन्धति हाथ मे एक पत्र लिये खडी थी। पुष्यमित्र ने उसको बैठने के लिए कह, स्वय बैठते हुए पूछा, "क्या बात है देवी ! इस समय आने का कष्ट किस कारण किया है ?"

"मुझको ऐसा पता चला है कि मन्त्रिमडल ने यह निश्चय किया है कि कल सेना को कौशाम्बी पर आक्रमण की आज्ञा दे दी जाय। उस आज्ञा से पूर्व अभी-अभी कौशाम्बी से आये इस पत्र को श्रीमान् पढ लें तो ठीक रहेगा।"

पुष्यमित्र ने पत्र लिया और पढा। इसमे लिखा था, "मैं अभी-अभी यवनाधिपति के भवन से आ रहा हूँ। वहाँ एक घटना घटी है। उस घटना को महत्त्वपूर्ण समझ, यह पत्र एक पत्र-वाहक के हाथ भेज रहा हूँ।

"साकेत और यवनराज्य मे सन्धि-चर्चा समाप्त हो गई है। यह समाप्ति घोर वाद-विवाद के पश्चात् हुई है। साकेत राज्य के प्रतिनिधि, मगध के चन्द्रभानु के अन्त का स्मरण कर, यहाँ से भाग गये हैं।

"परन्तु यवनाधिपति निर्णय करने मे बहुत सतर्क रहता है। उसने तुरन्त साकेत पर आक्रमण की आज्ञा दे दी है।

"साकेत पहुँचने के लिए मगध राज्य मे से होकर जाना पडता है। अत आप को सेना के वहाँ से जाने का ज्ञान हो जाना चाहिये। यह सूचना इस कारण भेजी जा रही है कि सेना के मगध राज्य मे प्रवेश करने से पूर्व राज्य को अपनी नीति पर विचार करने का अवसर मिल जाय। सेना के प्रस्थान करने की सूचना यथासमय भेज दूंगा।"

पुष्यमित्र गभीर विचार मे पड गया। अरुन्धति शान्त उसके सम्मुख बैठी थी। जब पुष्यमित्र कुछ नही बोला तो अरुन्धति ने पूछा, "तो मुझको जाने की आज्ञा है ?"

"नही, मैं देवी से दो बाते जानना चाहता हूँ। एक तो यह कि देवी के गुप्तचर मन्त्रिमडल की कार्यवाई की सूचना जानने का यत्न करते रहते है क्या ? और दूसरा यह कि कौशाम्बी से साकेत के मार्ग पर भी गुप्तचर नियुक्त है क्या ?"

"दोनो प्रश्नो का उत्तर 'हाँ' मे है।"

"यह क्यो ? मंत्रिमडल को सुरक्षा से विचार-विनिमय करने क्यो नही दिया जाता ?"

"इस कारण कि मन्त्रिमडल अपने निर्णयो को स्वय गुप्तचर-विभाग को नही भेजता ?"

"यह तो असम्भव है। मन्त्रिमडल अपने बहुत से निर्णय गुप्त रखना चाहता है।"

"तो वह एक बात कर सकता है। गुप्तचर-विभाग के अधिष्ठाता को मन्त्रिमडल के निर्णय सुनने का अधिकार दिया जाय।"

"यह भी असम्भव है। मन्त्रिमडल सब विभागो से ऊपर है।"

"इसमे सदेह नही श्रीमान्! परन्तु गुप्तचर-विभाग सब विभागो का सहायक है। अत इसकी सहायता से मन्त्रिमडल को वञ्चित नही रहना चाहिए।"

"इस समस्या पर विचार किया जायगा। परन्तु अब देवी मन्त्रिमडल को क्या करने की सम्मति देती है ?"

"देवी मंत्रिमडल की सदस्या नही है। इस कारण सम्मति देने से धृष्टता हो जायगी।"

'देश का शासक सम्मति माँगे तो भी ?"

"शासक अपने लिये सम्मति माँग सकता है, मन्त्रिमडल के लिये नही। यदि शासक उचित समझे तो उस सम्मति को मन्त्रिमडल के समक्ष उप-

स्थित कर सकता है ।"

पुष्यमित्र हँस पडा । हँस कर उसने कहा, "देवी ! बहुत बाल की खाल निकालती हो ।"

"तभी तो ढेरो समाचारो मे से आवश्यक तथा अनावश्यक समाचारो का निर्णय कर सकती हूँ ।"

"अच्छा बताओ । इस नवीन परिस्थिति मे क्या होना चाहिये ?"

"मगध द्वारा आक्रमण का समाचार अभी किसी को विदित नही होना चाहिये । यवनाधिपति मगध की ओर से निश्चिन्तता अनुभव करे, जिससें वह साकेत पर आक्रमण करने मे सकोच न करे ।

"जब यवन-सेना मगध के क्षेत्र से निकले, उसका विरोध-न किया जाय । अर्थात् सुगमता से साकेत तक पहुँचने का विश्वास उसको हो । परन्तु ज्यो ही उसकी सेना मगध-राज्य पार कर साकेत मे प्रवेश करे, उसकी वापसी का मार्ग हमारे सैनिको से बद कर दिया जाय और उसी समय कौशाम्बी पर आक्रमण कर दिया जाय ।

"सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि हम अपनी योजना को कितना गुप्त रख सकते हैं और इसको कितनी सतर्कता से चला सकते हैं ।"

अरुन्धति गई तो पुष्यमित्र ने सेनापति को बुला भेजा और उससे परामर्श कर उसी समय, उचित स्थानो पर सदेश भेजने का प्रबन्ध कर दिया ।

चतुर्थ परिच्छेद

१ ·

भारत की हरी-भरी भूमि सोना उगलती थी। सिन्धु नदी से पूर्व के खेतो मे उपजा हुआ गेहूँ, बाजरा, मकई आदि अन्न विदेशो से स्वर्ण लाता था और देश के कृषको की स्त्रियां स्वर्ण तथा रजत के भूषणो से लदी रहती थी। कभी कोई विदेशी व्यापारी भारत के गाँवो मे से गुजरता, तो नि शुल्क भोजन तथा आतिथ्य पाकर देश की समृद्धता पर चकित रह जाता था। खेतो मे काम करने वाली स्त्रियो की झाँझरो तथा हथकगनों की झकार, कसी और हल चलने के स्वर मे मिल परदेशी के मुख मे लार टपकाने लगती थी। नगरो की उच्च अट्टालिकाएँ, गगनभेदी मन्दिरो के कलश तथा विशाल राजपथ इत्यादि की तुलना कापिश तथा परुपपुर के छोटे-छोटे गृहो तथा मार्गों से करने पर विदेशियो के मन मे ईर्ष्या उत्पन्न होने लगती थी।

यह ईर्ष्या भारत पर विदेशी आक्रमणो का बीज बन जाती थी। भारत-भ्रमण के पश्चात् यात्री जब अपने देश के राजा के समक्ष उपस्थित हो, यहाँ की धन-सम्पदा तथा प्राकृत एव मनुष्य-निर्मित सौन्दर्य का वर्णन करते, तो राजाओ के मन अपने देश से उचाट हो जाते और वे भारत मे आकर रहने की लालसा करने लगते।

इस लोभ तथा लालसा का मर्दन करने के लिये देश के क्षत्रिय लम्बी सुदृढ भुजाओ मे चमचमाते खड्ग लिये तैयार रहते थे। जब-जब भी सुख तथा आराम के वशीभूत, स्वार्थ तथा अज्ञानता के मोह मे फँस कर अथवा मिथ्या

गान्धार मे कर प्राप्त करने की रीति नही थी। राजा को कर प्राय. वस्तुओ के रूप मे मिलता था। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी भूमि की उपज का अथवा अपने परिश्रम से प्राप्त धन का दशांश राजा को देना पडता था। इस आय से बहुत ही कठिनाई से राज्य-परिवार का व्यय तथा राज्य की सेना का व्यय पूर्ण होता था।

जब परामर्शदाता दस सहस्र स्वर्ण का प्रबन्ध नही बता सके तो राजा निराश हो गया। इस समय अपोलो नाम के एक व्यक्ति ने खडे होकर कहा, "महाराज ! स्वर्ण तो बहुत है। ढेर-के-ढेर सिन्धु नदी के उस पार पडे है। केवल चलकर उठा लाने की बात है।"

"कहां है ?" ऐन्सरीज का प्रश्न था।

"महाराज ! मैं अभी-अभी भारत-भूमि का भ्रमण कर आ रहा हूँ। उस देश मे मुझे एक भी स्त्री ऐसी दिखाई नही दी, जिसके शरीर पर सेर-आध सेर स्वर्ण न हो और वे स्त्रियाँ अरक्षित तथा स्वच्छद अपने सौन्दर्य तथा धन का प्रदर्शन कर ऐसे भ्रमण करती हैं, मानो पूर्ण देश एक विशाल रणवास हो।"

"ओह ! तो उस देश मे पुरुष नही बसते क्या ? मै ने तो सुना था कि उस देश के एक सम्राट् पाटलिपुत्र मे रहते है और उनकी सेना जिस ओर जाती है, टिड्डी दल की भाँति सब कुछ साफ कर जाती है।"

"महाराज ! यह बात पुरानी हो गई। आज तो उस देश मे एक नवीन प्रकार की सेना घूमती है। पीत वस्त्र धारण किए, सिर मुडा, पाँव से नग्न, हाथो मे कमडल लिये सौ-सौ दो-दो सौ की मडलियो मे ये लोग ग्राम-ग्राम मे ऐसे भ्रमण करते हैं, मानो कुँवारी कन्याएँ हो, जिनको ससार के प्रलोभन का ज्ञान तक नही।"

"क्या बात कर रहे हो ? अपोलो ! हमको मूर्ख बना रहे हो क्या ?"

अपोलो खिलखिलाकर हँस पडा। हँस कर उसने कहा, "आपका अभिप्राय उस योद्धा से है न, जिसने महारथी अलक्षेन्द्र के सेनापति सेल्यूकस को पराजित किया था और उसकी युवा कन्या से विवाह किया था ?"

"तो वहाँ कोई और भी चन्द्रगुप्त है क्या ?"

"महाराज ! उसको मरे हुए आज तीन सौ वर्ष हो चुके है । उसका पौत्र एक अति क्रूर सम्राट् था, परन्तु उसके अत्याचारो की उसके मन पर ऐसी प्रतिक्रिया हुई कि वह अति दयावान हो गया और अस्त्र-शस्त्रधारी सेना के स्थान उसने पीतवसनधारियो की सेना निर्माण करनी आरम्भ कर दी । ये पीतवसनधारी नपुसको की भाँति शत्रु अथवा मित्र, जिससे भी मिलते हैं, उसके कल्याण का ही चिन्तन करते है । इनका कोई शत्रु नही ।"

"वहाँ अब कौन राज्य करता है ।"

"उस चन्द्रगुप्त के पौत्र का पौत्र सम्प्रति नाम का एक दुर्बल और भीरु राजा राजगद्दी पर बैठा है । वह उन पीतवसनधारियो की सेना द्वारा प्रजा मे उत्पन्न सद्भावना के आधार पर, उससे कर प्राप्त कर, अपना कार्य चलाता है ।"

"मैं विश्वास नही कर सकता । सहस्रो कोस लम्बा और चौडा राज्य केवल सद्भावना पर चले, यह असम्भव है ।"

"महाराज ! परीक्षा कर देख लीजिये । अपने साथ केवल एक सौ सैनिक लेकर एक दिन सिन्धु पार करने का साहस कीजिये और फिर दस सहस्र क्या, लक्ष-लक्ष स्वर्ण एकत्रित कर लीजिये ।"

"कदाचित् जो कुछ तुमने बताया है, वह किसी पोस्ती के पीनक मे कही कथा है । इस पर भी मुझको दस सहस्र स्वर्ण मुद्रा चाहिएँ । मैं उस लडकी के वियोग मे पागल हुआ जाता हूँ ।"

ऐन्सरीज ने चुने हुए एक सौ सैनिक लिए और एक दिन चुपचाप सिन्धु पार कर गया । केवल दो गाँव उसने लूटे और मनो स्वर्ण तथा रजत और सैकडो युवतियो को रस्सो से बाँध कर अपने देश मे ले आया ।

वह समझता था कि यह राजाओ का समर नही, प्रत्युत दस्युओ का छापा है और इसका प्रतिकार लेने के लिए भारत जैसे सम्पन्न देश के सैनिक उसके देश पर प्रत्याक्रमण करेंगे । इस पर भी उस सुन्दरी पर मुग्ध, वह अपने कार्य की जघन्यता को भूल गया और उससे विवाह के लिए

उसके पिता के पास जा पहुँचा।

विवाह हुआ और इस नवीन विवाह से एक सुन्दर बलशाली सन्तान भी उत्पन्न हो गई, परन्तु भारत से लूटा धन तथा जन वापिस लेने कोई नही आया।

ऐन्सरीज ने तीन वर्ष तक प्रतिकार की प्रतीक्षा की और जब कुछ नही हुआ तो अपोलो के कथन का विश्वास कर, वह इस समृद्ध तथा सुन्दर देश पर अधिकार बनाने की योजना बनाने लगा।

वह सीमा प्रदेशो पर छोटे-मोटे डाके डाल सेना तैयार करने के लिए स्वर्ण एकत्रित करने लगा और थोड़े ही काल मे एक सेना लेकर तक्ष-शिला, शाकल, लवपुर पर एक ओर और श्रीनगर की सुन्दर वादी पर दूसरी ओर अधिकार जमा बैठा।

ऐन्सरीज कुछ आवश्यकता से अधिक समझदार था। इस कारण वह धीरे-धीरे अपने राज्य की वृद्धि कर रहा था। जब तक उसका अधिकार लवपुर पर हुआ, उसका देहान्त हो गया। इस समय सम्प्रति का पुत्र बृह-वर्मन् मगध की राज्यगद्दी पर आरूढ़ हो चुका था।

ऐन्सरीज का पुत्र डेमिट्रियस गांधार का राजा बना और अपने पिता द्वारा आरम्भ किया हुआ कार्य पूरा करने लगा। उसने एक अत्यन्त बल-शाली सेना निर्माण की और एक दिन स्थानेश्वर पर अधिकार कर लिया। इसके पाँच वर्ष पश्चात् इन्द्रप्रस्थ और हस्तिनापुर और फिर दस वर्ष पश्चात् कौशाम्बी पर उसका राज्य स्थापित हो गया।

: २ :

कौशाम्बी में एक विशाल हत्याकाड के पश्चात् भी एक भारी सख्या मे भारतीय बच गये थे। गांधार से तो केवल सैनिक ही आये थे। सैनिक शासन तो कर सकते थे, परन्तु एक उन्नत समाज के व्यापार तथा व्यव-साय को समझ नही सकते थे।

जब कौशाम्बी के आयुक्तक सोमप्रभ की हत्या की गई और उसके पश्चात् नगर-भर मे लूटमार मच गई तो कौशाम्बी के व्यापारी वहाँ से

भागने लगे। परिणाम यह हुआ कि कुछ ही दिनों में कौशाम्बी के जन-बाज़ार रिक्त हो गये और डेमिट्रियस के सैनिक भूखे मरने लगे। तब डेमि-ट्रियस को समझ आया कि भारत पर शासन चलाने में कुछ भिन्न बात है। उसने अपने सैनिकों को समझाया कि इस प्रकार एक स्थान देश में कार्य नहीं चल सकेगा। नागरिकों से समझौता कर सहानुभूति व्यवहार अपनाना होगा अन्यथा सब भूखे मर जायेंगे।

परिणाम यह हुआ कि नगर-भर में घोषणा कर दी गई कि योनाधि-पति नगर में शान्ति चाहता है, गोमश्रम की हत्या तो इस कारण की गई थी कि उसने सन्धि की शर्तों का पालन करने से इन्कार कर दिया था और फिर नगर के बहुत से लोग उसकी सहायता के लिये यवनाधिपति के विरोध में खड़े हो गए थे। अतः उसको दण्ड देना अनिवार्य हो गया था।

अब प्रजा को विश्वास दिलाया जाता है कि यवनाधिपति उनके धन-जन की रक्षा का भार अपने ऊपर लेता है और उनको अपना व्यवसाय पूर्ववत् आरम्भ कर देना चाहिये।

कदाचित् इस घोषणा का विशेष परिणाम न निकलता यदि अन्न-अनाज तथा वस्त्रादि के लिये व्यापारियों को दुगना, तिगुना मूल्य न दिया जाता। कुछ व्यापारियों ने साहस कर अपनी दुकानें खोलीं और माला-माल होने लगे।

इस प्रकार डेमिट्रियस की सेना के चारों ओर लोभी तथा लालची व्यापारी एकत्रित होने लगे और वे अन्य भारतीयों के सम्मुख विजेताओं की भलमनसाहत, सरल हृदयता, दया तथा सहिष्णुता के गुण गाने लगे।

जब मगध का महामात्य चन्द्रभानु डेमिट्रियस से सन्धि करने आया, तब तक कौशाम्बी पुनः एक सजीव नगरी दिखाई देने लगी थी। डेमिट्रियस की सेना के दो लक्ष सैनिकों में से पचास सहस्र के लगभग कौशाम्बी में ही बस चुके थे तथा उन्होंने वहीं अपने विवाह रचा लिये थे। शेष सैनिक अपने शिविरों में रहते थे। वे अपनी स्त्रियों को साथ नहीं लाये थे, इस कारण कौशाम्बी में वेश्या-वृत्ति प्रचलित हो गई थी।

जब चन्द्रभानु कौशाम्बी पहुँचा तो उसने अपना नाम-धाम तथा आने का प्रयोजन लिखकर डेमिट्रियस के पास भेज दिया। डेमिट्रियस ने इस पर अपने परामर्शदाताओ से, जिनमे कुछ भारतीय भी सम्मिलित कर लिये गये थे, जो उसके गुणानुवाद प्रजा में गाते थे, सम्मति माँगी। वास्तव मे डेमिट्रियस मगध-सम्राट् के विषय में इतनी हीन सम्मति रखता था कि वह उसके दूत से बात करना समय व्यर्थ गँवाना मानता था, परन्तु परामर्शदाताओ ने निवेदन कर दिया, "महाराज ! मिल कर बातचीत करने मे कुछ भी हानि नही होगी। लाभ ही हो सकता है। मगध के महामात्य से उनके राज्य की स्थिति का ज्ञान हो सकता है। उसकी बात माननी अथवा न माननी आपके अपने अधिकार मे है ही।"

इस पर डेमिट्रियस ने चन्द्रभानु से भेंट स्वीकार कर ली।

जब महामात्य कौशाम्बी मे आया तो उसके साथ अगरक्षको के स्थान, पचास पीतवसन-धारी भिक्षु देख नगर के लोग, तथा डेमिट्रियस के सैनिक हँसने लगे। चन्द्रभानु उनकी हँसी का कारण जानता था, परन्तु वह वहाँ एक प्रयोजन विशेष से आया था और उस प्रयोजन मे वह इस रूप को पसन्द करता था।

भिक्षुओ के आने की सूचना डेमिट्रियस के पास पहुँची तो वह भी हँसा, परन्तु उसके परामर्शदाताओ ने उससे कहा कि इन भिक्षुओ का मान करना चाहिये।

डेमिट्रियस ने पूछा, "क्यो ?"

"इसलिए महाराज ! कि वे इस भारत देश मे आपके सबसे बड़े हितैषी हैं।"

"कैसे ?"

"वे सदैव युद्ध के विरोधी होते है। जब भी कही युद्ध की सभावना होती है, वे पराजय स्वीकार करके भी युद्ध से बचना चाहते है। ऐसे लोग सदेव शत्रु का हितचिन्तन करते हैं।"

डेमिट्रियस को यह मीमासा समझ नही आई। इस पर उसके परा-

गया है।"

"शत्रु तो समाप्त हो गये ?"

"इस धर्म को मानने वाले के लिये संसार में कोई शत्रु नहीं रह जाता।"

"अर्थात् सब मित्र हैं।"

"हाँ श्रीमान् !"

"तब तो मैं इस धर्म को स्वीकार करता हूँ।"

"अब आप संसार में सब प्राणियों को मित्र समझिये।"

"समझ लिया।"

"मित्र के साथ द्वेष नहीं किया जाता।"

"नहीं करूँगा।"

"इस पर कोई आपको अपना शत्रु नहीं समझेगा।"

"अर्थात् कोई भी मुझको अपना शत्रु नहीं मानेगा।"

"नहीं श्रीमान्।"

"यह तो विचित्र है। आप जाकर अपने सम्राट् से कह दें कि मैं उनके धर्म को मानने से उनका मित्र हो गया हूँ। अतः मेरा सब कुछ उनका है और उनका सब कुछ मेरा है।"

"हाँ श्रीमान् ! आप धर्म के तत्त्व को भली-भाँति समझे हैं।"

"परन्तु हमको यह देख दुःख होता है कि हमारे मित्र मगध-सम्राट् बृहद्रथ को राज्य-कार्य का भार निभाने में कष्ट हो रहा है। हम इसमें अपने मित्र की सहायता करना चाहते हैं।"

"इसी विषय पर विचार करने के लिये महाराज ने मुझको आपकी सेवा मे भेजा है।"

"इसमे विचार करने की क्या बात है ? अब हम परस्पर मित्र हैं। वे मेरी सम्मति मानें और शेष मगध-साम्राज्य मेरे अधिकार मे दे दें। इससे उनको कष्ट कम हो जायगा और हम यह राज्य उनके नाम पर चलायेंगे।"

"परन्तु श्रीमान् तो भारतीयो के आचार-विचार मे परिचित नही।

इनसे श्रीमान् को अधिक कठिनाई होगी ।"

"इसकी चिन्ता मगध-सम्राट् को नही करनी चाहिये । हम राज्य करने का अभ्यास रखते है । मगध-सम्राट को अब गृहस्थ छोड वैराग्य ले लेना चाहिये ।"

"नही श्रीमान् ! मगध-सम्राट् धर्म के विषय मे आपसे अधिक ज्ञान रखते हैं । इस कारण धर्मयुक्त राज्य वे अधिक योग्यता से कर सकते हैं ।"

"हमारा इसमे उनसे मतभेद है । इस मतभेद का निर्णय पचशील के सिद्धान्त के अनुसार करना चाहिए ।"

"क्या अभिप्राय है आपका इससे ?"

"अभिप्राय स्पष्ट है । आपके सम्राट् धर्म जानते है अथवा नही, मुझे इसका ज्ञान नही । वे राजनीति कदापि नही समझते । वे राज्य करने के अयोग्य है । उनका भला इसी मे है कि वे मुझको भारत का सम्राट् मान लें ।"

"देखिये महाराज ! यह आपका भ्रम है कि वे राजनीति नही समझते । हाँ, वे शिष्टाचार आपसे अधिक जानते है । शिष्टाचार पंचशील मे से एक शील है ।"

"तो आप मुझको अशिष्ट समझते हैं ?"

"नही श्रीमान् ! मैंने यह नही कहा । मेरा निवेदन केवल इतना है कि अब तक जितने प्रदेश पर आपने अधिकार किया है, वह आपको भेंट मे दे दिया गया है । परन्तु मगध-सम्राट् चाहते है कि आप इससे एक पग भी आगे न बढे, अन्यथा युद्ध अवश्यम्भावी है ।"

"हम युद्ध से नही डरते । हमारे हाथो मे भी खड्ग है और वह मगध-सम्राट् की खड्ग से अधिक लम्बी है ।"

"तो श्रीमान् का अभिप्राय यह हैं कि जिस प्रयोजन के लिए मैं आया था, वह असफल रहा है ।"

"निस्सन्देह ! परन्तु हम आपको असफल लौटने नही देंगे ।"

"कैसे ?"

"आप हमारे बदी है। आप यहाँ से वापस नही जा सकते।"

"श्रीमान्! मैं राजदूत हूँ। राजदूत बदी नही बनाया जा सकता।"

"हम राजदूत को गुप्तचर-मात्र समझते हैं। यहाँ की जानकारी हम शत्रु के देश मे नही जाने देंगे।"

"श्रीमान्! मेरा निवेदन है कि इतना अभिमान उचित नही। मैं आपको मगध-सम्राट् की चेतावनी देना चाहता था। इस पर भी कार्य करने मे आप स्वतत्र हैं। यह निश्चित है कि अपने कर्मो का फल सब को मिलता है।"

"वह हम देख लेंगे। अभी तो आपको आपके कर्मो का फल हम देना चाहते है।" इतना कह डेमिट्रियस ने सकेत किया तो उसके अगरक्षक ने एक ही वार मे महामात्य का सिर धड से पृथक् कर दिया। पश्चात् पायागार मे, जहाँ महामात्य भिक्षुओ के साथ ठहरा हुआ था, सैनिक भेज दिये गए, जिससे उन भिक्षुओ को भी बदी बना लिया जाये। अगले दिन सब को सूली पर चढा दिया गया।

यह तो घटना-मात्र थी कि एक भिक्षु उस समय पायागार मे नही था, जब सैनिक उनको बदी बनाने के लिए गये थे। वह भ्रमणार्थ नगर मे गया हुआ था। जब उसको सूचना मिली कि सभी भिक्षु बदी बना लिये गये हैं तो उसने अपने पीत वस्त्र उतार कर फेंक दिये और छिप कर कौशाम्बी से भाग निकला।

डेमिट्रियस को आशा थी कि चन्द्रभानु की हत्या के समाचार को सुन कर पाटलिपुत्र की सेना कौशाम्बी पर आक्रमण कर देगी और पश्चात् उसको पाटलिपुत्र पर अधिकार करने का अवसर मिल जायगा। परन्तु लगातार प्रतीक्षा करने के पश्चात् भी जब कुछ प्रतिकार नही हुआ तो उसने सोचा कि मगध मे युद्ध की सामर्थ्य नही है।"

इस पर भी वह स्वय आक्रमण करने से डरता था। उसके दाहिनी ओर मल्ल देश, विदर्भ तथा आन्ध्रदेश थे। उत्तर मे अवध, तुषार शैलभू इत्यादि सुदृढ राज्य थे। ये सब मगध से स्वतत्र हो, अपने अस्तित्व को बनाये हुए थे। उसको भय था कि यदि उसने पाटलिपुत्र पर आक्रमण

किया तो उत्तर और दक्षिण के ये राज्य आगे बढ, उसका मार्ग काट देंगे और उसका गान्धार से सम्बन्ध टूट जायगा।

इस कारण उसने पहले इन राज्यो से सन्धि करनी चाही। उसने अपने दूत इन राज्यो मे भेजे। कोई भी राज्य डेमिट्रियस से युद्ध नही चाहता था, परन्तु वे सन्धि कर मगध पर आक्रमण करना भी नही चाहते थे। इस पर भी सबने आश्वासन दिया कि वे तटस्थ रहेगे, परन्तु डेमिट्रियस को भी यह आश्वासन देना पडा कि वह उन पर आक्रमण नही करेगा।

अवध, जिसकी राजधानी साकेत थी, की स्थिति कुछ भिन्न थी। अवध एक सुदृढ राज्य था और अनुभव करता था कि मगध राज्य के विघटित होने पर उसकी लूटमार मे वह भी भागीदार है। अत. जब डेमिट्रियस के दूत सन्धि-वार्त्ता के लिए वहाँ पहुँचे, तो अवध-नरेश ने स्पष्ट कह दिया, "यदि मगध पर आक्रमण हुआ और डेमिट्रियस की विजय हुई तो मिथिला पर साकेत का राज्य होगा।"

डेमिट्रियस इस बात को मानने के लिए तब तैयार था, यदि अवध की सेनाएं भी मगध पर आक्रमण मे साथ दे।

इस प्रकार परस्पर बातचीत चलते एक वर्ष का काल व्यतीत हो गया। अभी अवध के साथ सन्धि पूर्ण नही हुई थी कि डेमिट्रियस को सूचना मिली कि मगध मे क्रान्ति घट गई है और महाराज बृहद्रथ की हत्या हो गई है तथा उसके स्थान पर एक ब्राह्मण युवक शासक बन गया है। राज्य के अधिकाश नागरिक ब्राह्मण के साथ हैं। केवल बौद्ध-भिक्षु, जिनको राज्य की ओर से सहायता मिलनी बद हो गई है, इस ब्राह्मण का विरोध कर रहे है।

अभी साकेत से बातचीत चल रही थी कि बौद्ध महाप्रभु बादरायण से मौखिक वार्त्तालाप आरम्भ हो गया। बृहद्रथ के जीवन-काल मे भी महाप्रभु से पत्र-व्यवहार हुआ था, परन्तु अब उसको सन्देश मिला था कि पत्र-व्यवहार पर राज्य की दृष्टि पड सकती है, इस कारण दूतो के द्वारा मौखिक वार्त्तालाप चला। ये सन्देश, श्रावको के वस्त्र पहिने हुए, दूत ही ले

जा सकते थे, क्योंकि पुष्यमित्र के पत्र से डेमिट्रियस के गुप्तचरों का प्रवेश मगध में रुक गया था।

बौद्ध महाप्रभु से वार्त्तालाप अभी चल रहा था कि साकेत में सन्धि की वार्त्ता भंग हो गई। इससे डेमिट्रियस ने यह समझा कि मगध तथा साकेत में सन्धि की चर्चा आरम्भ हो गई है। इससे पूर्व कि उनमें कोई सन्धि हो, डेमिट्रियस ने साकेत पर आक्रमण करने की आज्ञा दे दी।

कौशाम्बी से साकेत में जाने के लिए पचास कोस के लगभग यात्रा मगध राज्य में से करनी होती थी। डेमिट्रियस का विचार था कि साकेत पर आक्रमण की सूचना पाटलिपुत्र पहुँचने से पूर्व ही वह साकेत पर अधिकार कर लेगा, इसके पश्चात् वह मगध की सेनाओं से निपट सकेगा।

वह जानता था कि इस समर की सफलता सेना की गति पर निर्भर करती है।

४

अरुन्धति की सम्मति से पुष्यमित्र ने सेना के तीनों दलों को तैयार रहने का आदेश भेज दिया। दो दलों को सूचना पाते ही कौशाम्बी पर आक्रमण करना था तथा तीसरे दल को यवनों की सेना के साकेत में प्रवेश कर लेने पर, पीछे से उन पर आक्रमण करना था।

अगले दिन पुष्यमित्र पूजा-पाठ आदि से निवृत्त हुआ ही था कि अरुन्धति उनसे भेंट करने आ पहुँची। पुष्यमित्र ने उसको देखा तो पूछ लिया, "अब क्या सूचना मिली है देवी!"

"मैं समझती हूँ कि मुझको कुछ दिन के लिए अपने विभाग का कार्यालय लक्ष्मणपुर में ले जाना चाहिये।"

"वहाँ क्या है?"

"वहाँ से कौशाम्बी, साकेत और सेना के शिविर समीप पड़ते हैं।"

"परन्तु इस प्रकार भाग-दौड़ से देवी को बहुत कष्ट होगा।"

"यहाँ का कार्य मैं अपने गुरुभाई सुमित्र को सौंप रही हूँ। वह आपको पूर्ण सूचनाएँ देता रहेगा।"

"देवी ! सुमित्र को लक्ष्मणपुर का कार्य नही सौंप सकती क्या ?"

"मैं समझती हूँ कि मेरा वहाँ जाना ही उचित है। कुछ गुप्तचर तो रात्रि ही वहाँ के लिए प्रस्थान कर चुके हैं। अब मेरे लिए भी रथ तैयार है। कुछ अन्य लोग मध्याह्न तक यहाँ से प्रस्थान करेंगे। मेरे साथ पाँच अश्वारोही जा रहे हैं, जिससे यदि मार्ग मे कोई सूचना भेजनी आवश्यक हुई, तो भेजी जा सके।"

"अच्छी बात है। मै देवी के साथ पचास सुभट्ट रक्षार्थ भेज रहा हूँ।"

इस पर अरुन्धति खिलखिलाकर हँस पडी। हँसकर उसने कहा, "जो मार्ग मै एक दिन मे तय करना चाहती हूँ, उसमे पाँच दिन लग जायँगे। बताइये, पचास सवार मेरे साथ होंगे तो उनके भोजन, निवास आदि का प्रबन्ध भी करना होगा। उनके अश्वो को विश्राम का समय देना होगा। इससे पाँच-छ दिन मे कम समय मे लक्ष्मणपुर पहुँचना असम्भव है।

"देखिये श्रीमान्! मैंने अपने रथ के अश्वो को प्रत्येक पाँच कोस के अन्तर पर बदलने का प्रबन्ध कर लिया है। यदि पचास अश्वारोही मेरे साथ गये तो सबके अश्वो को बदलने का प्रबन्ध नही हो सकेगा और यात्रा मे विलम्ब होगा।"

पुष्यमित्र इस पर अवाक् अरुन्धति का मुख देखता रह गया। वह विचार करने लगा था कि अरुन्धति कितनी चतुर, दूरदर्शी स्त्री है! इस दूरदर्शिता का उसकी योजनाओ की सफलता मे कितना भारी हाथ है!

अब पुन अरुन्धति ने कहा, "जो सेना कौशाम्बी पर आक्रमण करने वाली है, आपका उसके साथ रहना आवश्यक है। मुझे विश्वास है कि डेमिट्रियस आक्रमण की सूचना पाते ही कौशाम्बी से भाग खडा होगा और दिन निकलते-निकलते हमारा अधिकार कौशाम्बी पर हो जायगा। इस कारण आशा है कि अब वही भेंट होगी।"

इतना कह, नमस्कार कर अरुन्धति आगार से बाहर निकल गई। पुष्यमित्र अवाक् उसको जाते देखता रह गया। वह कुछ कहना चाहता था, परन्तु उसके मुख से शब्द नही निकले। वह विचार कर रहा था

कि योजना उसकी है, परन्तु उसको चलाने वाले कहाँ-कहाँ है ।

पूजागृह से निकल कर, वह अल्पाहार के लिये भोजनालय मे जा पहुँचा। वहाँ भगवती तथा उसके पिता अरुणदत्त, पहले से ही उपस्थित थे। पुष्यमित्र को आया देख अरुणदत्त ने पूछा, "रात के सब निर्णय बदल दिये हैं क्या ?"

"सब तो नही। युद्ध तो हो ही रहा है। केवल युद्ध का स्थल बदल दिया है।"

"अरुन्धति कहाँ गई है ?"

"लक्ष्मणपुर ! वहाँ से वह कौशाम्बी जाने का विचार रखती है।"

"पहले ही।"

"नही, उसकी गणना है कि परसो वह लक्ष्मणपुर पहुँचेगी। तीन दिन वहाँ ठहर कर दो दिन मे कौशाम्बी जा पहुँचेगी। उसको विश्वास है कि तब तक हमारी सेना कौशाम्बी पर अधिकार कर चुकी होगी।"

"इसका अर्थ यह हुआ कि तुम आज ही समर के लिये रवाना हो जाओगे।"

"मैं इस सूचना की प्रतीक्षा कर रहा हूँ कि यवन-सेना, मगध पार कर अवध राज्य मे कब प्रवेश करती है।"

"अर्थात् आज सूर्योदय के समय यवन-सेना अवध मे प्रवेश कर चुकी होगी।"

"हाँ पिता जी ! अवध राज्य की सीमा से प्रात का चला हुआ दूत शाम तक यहाँ पहुँच जाना चाहिये और मैं उसी समय यहाँ से चल दूँगा। कल मध्याह्न के समय सेना शिविर मे पहुँच जाऊँगा। उस समय तक सेना कौशाम्बी के लिए प्रस्थान की तैयारी कर चुकी होगी। चौथे दिन सायं-काल हम कौशाम्बी के द्वार पर पहुँच जायंगे और रात को ही आक्रमण करने का विचार है।

"आक्रमण दो ओर से होगा। एक पूर्व की ओर से तथा दूसरा दक्षिण की ओर से। यदि हमारी गणना मे भूल नही हुई है, तो उस समय कौशाम्बी

में केवल दस सहस्र यवन सेना शेष होगी। सम्भव यही है कि डेमिट्रियस रात्रि के अँधेरे का लाभ उठाकर पश्चिम की ओर से भाग खड़ा हो।"

पिता-पुत्र अल्पाहार ले रहे थे और भगवती कुछ चिन्तित प्रतीत होती थी। पिता ने यह देखा तो पूछ लिया, "भगवती! मुख मलिन क्यो हो रहा है?"

"मलिन तो नही। केवल यह विचार कर रही थी कि समर का कार्य-क्रम ऐसा नपा-तुला है कि किंचित् मात्र विघ्न से कही सारा खेल न बिगड जाय।"

"ऐसा नही होगा माँ!" पुष्यमित्र ने कहा, "प्रत्येक प्रकार की सम्भावना पर विचार कर लिया गया है और प्रत्येक प्रकार की सम्भावित बाधा को दूर करने का उपाय भी कर लिया गया है।"

सायकाल नही होने पाया। मध्याह्नोत्तर ही अवध-सीमा से समाचार आ गया कि यवन-सेना अवध-राज्य मे प्रविष्ट हो चुकी है। साकेत के नागरिक सर्वथा असावधान थे और आक्रमण की सूचना पर गाँव के गाँव रिक्त होने आरम्भ हो गये है।

समाचार लाने वाले ने बताया, "हमको यह सूचना थी कि यवन-सेना का मार्ग नही रोकना है। जब उनका अन्तिम सैनिक सीमा पार कर गया तो मैं अश्व पर सवार हो इस ओर चल पड़ा। प्रात काल का चला हुआ अब पहुँचा हूँ।"

यह प्रबन्ध अवध-सीमा के पास के सैनिक-शिविर मे ही था कि जब दूत पाटलिपुत्र के लिये सूचना लेकर रवाना हो तो इसका समाचार अन्य दोनो शिविरो को भी भेज दिया जाय। जिस समय अवध-सीमा पर, यवन-सेना पर पीछे से आक्रमण करने की योजना बन रही थी, उसी समय अन्य दोनो शिविरो में कौशाम्बी पर आक्रमण की तैयारी हो रही थी।

पुष्यमित्र सूचना पाते ही रवाना हो गया। पूर्व की ओर आक्रमण करने वाली सेना का नेतृत्व उसे करना था। सेनापति पिछली रात ही पश्चिम से आक्रमण करने वाली सेना का नेतृत्व करने के लिये जा चुका था।

: ५ :

डेमिट्रियस ने जब साकेत के राजदूतों को कौशाम्बी से बिना सूचना दिये भागते देखा तो यह समझा कि अवध और मगध में संधि हो गई है। वह नहीं चाहता था कि साकेत तथा मगध की सेना एकत्रित होकर उन पर आक्रमण की योजना बनायें। इस कारण उसने उसी समय साकेत पर आक्रमण की आज्ञा दे दी। पचास सहस्र सैनिक उसी समय मगध-राज्य में प्रवेश कर साकेत की ओर बढ़ चले। उसके शेष सैनिक इन्द्रप्रस्थ में शिविर लगाये बैठे थे। उनको बुलाने में समय व्यर्थ जाता, इस कारण उसने कौशाम्बी में जितने सैनिक थे, उनको भी जाने की आज्ञा दे दी। केवल दस सहस्र सैनिक कौशाम्बी में नागरिकों पर नियंत्रण रखने के लिए शेष बचे थे।

डेमिट्रियस उत्सुकता से साकेत-विजय के समाचार की प्रतीक्षा कर रहा था कि चौथे दिन सायंकाल उसको सूचना मिली कि नगर के पूर्वी और दक्षिणी द्वार पर दो विशाल सेनाएँ आ लगी हुई हैं।

"कहाँ की सेनाएँ हैं ?" उसने समाचार लाने वाले से पूछा।

"मगध की प्रतीत होती हैं।"

"इतनी जल्दी वहाँ से आ गई ?" डेमिट्रियस कुछ समझ नहीं सका। उसने उसी समय नगर-द्वार बंद करने का आदेश दे दिया और एक भारतीय परामर्शदाता के हाथ में श्वेत पताका देकर भेज दिया कि वह जाकर समाचार लाये कि वे कौन हैं और क्या चाहते हैं ?

भारतीय परामर्शदाता का नाम कैवल्य था। कैवल्य जब हाथ में श्वेत पताका लिये द्वार से बाहर निकला तो मागधी सैनिकों ने उसको बंदी बनाकर पुष्यमित्र के सम्मुख उपस्थित कर दिया। उसने अपने आने का आशय बताते हुए कहा, "यवनाधिपति श्रीमान् निकोलाई डेमिट्रियस यह जानना चाहते हैं कि यह सेना कहाँ की है और क्या चाहती है ?"

"तुम कौन हो ?" पुष्यमित्र का प्रश्न था।

"मैं कन्नौज का रहने वाला एक ब्राह्मण हूँ तथा यवनाधिपति की

सेवा मे एक परामर्शदाता हूँ। मेरा नाम कैवल्य है।"

"कब से यवनाधिपति की सेवा मे हो?"

"डेढ वर्ष से अधिक हो चुका है।"

"तब तो तुम यहाँ थे, जब मगध-महामात्य चन्द्रभानु डेमिट्रियस के पास पहुँचे थे।"

"जी हाँ।"

"महामात्य चन्द्रभानु कहाँ है?"

"वे स्वर्ग सिधार गये है।"

"अपनी इच्छा से?"

"नही श्रीमान्! महाराज डेमिट्रियस से वार्तालाप करते हुए उन्होने महाराज को कुछ अनुचित शब्द कहे, जिसके परिणामस्वरूप महाराज को क्रोध चढ आया और उनको प्राणदड की आज्ञा हो गई।"

"तुम जानते हो कि दूत को प्राणदड नही दिया जाता।"

"यह भारतवर्ष की रीति है।"

"तो क्या गान्धार की नही है।"

"ऐसा ही प्रतीत होता है।"

"तो ठीक है, हम आज गान्धार की नीति का उत्तर उन्ही की नीति से देगे। हम उनके दूत से वैसा ही व्यवहार करेंगे, जैसा हमारे राजदूत से किया गया था।

कैवल्य इस बात को सुन घबरा उठा। उसके माथे पर पसीने की बूंदें चमकने लगी। उसने हाथ जोडते हुए कहा, "श्रीमान्! मैं तो डेमिट्रियस का महामात्य नही, एक तुच्छ सेवक मात्र हूँ। अत मुझसे वैसा व्यवहार करना, जैसा मगध के महामात्य से किया गया था, अन्याय हो जायगा।"

"यह न्याय-अन्याय का निर्णय भगवान् के पास जाकर करना। हाँ, तुम्हारे साथ कुछ रियायत की जा सकती है। यदि तुम हमारे प्रश्नो का उत्तर सत्य-सत्य दोगे तो हम तुम्हे प्राणदड नही देगे।"

"महाराज! आज्ञा करे।"

"अच्छा तो बताओ, कौशाम्बी मे इस समय कितने सैनिक है ?"

"दस सहस्र।"

"उनके पास शस्त्रास्त्र कैसे है ?"

"धनुष-बाण, खड्ग, भाले तथा आग लगाने का सामान है।"

"नगर मे प्रवेश के लिए कौन-सा मार्ग ठीक रहेगा ?"

"यहाँ से दक्षिण की ओर प्राचीर मे एक नाला है। नाला बहुत गदा है, परन्तु विशेष रक्षित नही।"

"अच्छी बात है। यदि यह उत्तर सत्य हुआ तो तुम्हे एक माननीय बदी के रूप मे रखा जायगा और जब तुम्हारे स्वामी को, उसके कुकर्मों का दड मिल जायगा, तो तुम्हे छोड दिया जायगा, अन्यथा तुम उस वृक्ष के साथ फाँसी पर लटका दिये जाओगे।"

डेमिट्रियस विचार कर रहा था कि दूत घूम-घाम कर सेना का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर वापस आयगा, परन्तु रात्रि समीप थी और वह नही आया। इस पर वह समझ गया कि उसको बदी बना लिया गया है और कदाचित् उसका वही अन्त हुआ होगा, जो उसने महामात्य चन्द्रभानु का किया था। प्रत्यक्ष सेना देखकर तो वह अनुमान लगा रहा था कि इस युद्ध मे उसकी विजय अनिश्चित है।

अब उसने अपना कार्यक्रम बनाना आरम्भ किया। वह चाहता था कि एक सप्ताह तक मागधी सेना को रोके रखा जाय, तब तक हस्तिनापुर और इन्द्रप्रस्थ से सेना लेकर वह मागधी सेना पर पीछे से आक्रमण कर देगा। अतएव अपनी योजना, अपने उपसेनापति को समझाकर, वह नगर के उत्तरी द्वार से चुपचाप निकल इन्द्रप्रस्थ की ओर प्रस्थान कर गया।

परन्तु किसी प्रकार से यह समाचार नगर भर मे फैल गया कि डेमिट्रियस भाग गया है। इसके साथ ही रात्रि के गहन अन्धकार मे पाँच सौ मागधी नाले मे से नगर के अन्दर प्रविष्ट हो गये। वे अकस्मात आये थे, इस कारण साधारण से युद्ध से ही उन्होने दक्षिणी द्वार तक का मार्ग

साफ कर लिया। द्वार पर घमासान युद्ध के पश्चात् वे द्वार खोलने मे समर्थ हो गये।

बस फिर क्या था? सूर्योदय होते-होते पूर्ण नगर पर मागधियो का अधिकार हो गया। सेना ने दिन भर आराम किया और अगले दिन प्रातः-काल ही इन्द्रप्रस्थ की ओर प्रस्थान कर दिया।

डेमिट्रियस हस्तिनापुर पहुँच इन्द्रप्रस्थीय सेना को वहाँ आ, हस्तिना-पुर की सेना के साथ मिलकर कौशाम्बी पर आक्रमण करने का आदेश भेज ही रहा था कि कौशाम्बी से भागकर आये सैनिको ने सूचना दी कि कौशाम्बी मागधियो के अधीन हो चुका है। इस पर डेमिट्रियस हस्तिनापुर की सेना के साथ इन्द्रप्रस्थ पहुँच कर वहाँ सयुक्त मोर्चा लगाने के लिए चल पडा।

परन्तु उसके विस्मय का ठिकाना नही रहा, जब इन्द्रप्रस्थ के बाहर पहुँचकर उसको यह पता चला कि मागधी सेना पहले ही इन्द्रप्रस्थ पर अधिकार कर चुकी है। अब उसके लिये स्थानेश्वर को लौट जाने के अति-रिक्त कोई चारा नही रहा था। यहाँ अब उसके मार्ग मे एक अन्य कठिनाई आ उपस्थित हुई। मार्ग मे जितने गांव पडते थे, वहाँ यह सूचना पहुँच चुकी थी कि गान्धारो को भारी पराजय मिली है और अब डेमिट्रियस अपनी सेना के साथ भाग रहा है। उन्होने सगठित होकर भागते हुए गान्धार सैनिको पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। गान्धार-सेना पहले ही हतोत्साह हो चुकी थी, अब इस विपत्ति से घबरा उठी। भागती हुई जब वह स्थानेश्वर पहुँची तो नगर का द्वार उनको बन्द मिला। स्थानेश्वर के नागरिको ने, जिनको यवनो की पराजय का समाचार मिल चुका था, नगर के द्वार बन्द कर लिये थे और उनको भीतर प्रवेश नही करने दिया।

विवश डेमिट्रियस ने थकी हुई सेना को नगर के बाहर विश्राम करने की आज्ञा दे दी। इस पर भी रात्रि के समय आसपास के देहातो के लोगो ने उन पर छापे डालने आरम्भ कर दिये।

आधी रात के समय उनमे यह समाचार फैल गया कि मागधी सेना

उनका पीछा करते हुए चली आ रही है और सवेरे तक उनके पास पहुँच जायगी। इस पर तो बचे-खुचे सैनिक उसी समय भाग खड़े हुए। इनमें से अधिकांश देहातियों के हाथ में पड़ कर मार डाले गये।

इससे डेमिट्रियस इतना हताश हुआ कि वह अपने शेष बचे तीन-चार सौ साथियों को साथ ले पुष्पपुर के मार्ग पर चल पड़ा।

६

इस समय तक साकेत पर आक्रमण करने वाले पचास सहस्र यवन-सैनिक पूर्णतया विनाश को प्राप्त हो चुके थे। वे दो सेनाओं के बीच पिस गये थे। एक ओर तो अवध सेना उनके विरोध में खड़ी थी और दूसरी ओर पीछे से मगध-सेना ने उन पर आक्रमण कर दिया था।

जब यवन-सेना के आक्रमण की सूचना अयोध्या पहुँची तो सब भयभीत थे। वहाँ के नरेश प्रद्युम्न कुमार ने अपनी पूर्ण सेना अयोध्या के बाहर, यवन-सेना के विरोध में खड़ी कर दी। यद्यपि अवध-सेना में सब वीर क्षत्रिय थे, इस पर भी यवनों का आतंक सब पर छाया हुआ था। सब समझ रहे थे कि उनका अन्त समय आ पहुँचा है, इस पर भी अपने नरेश प्रद्युम्न कुमार को सबसे आगे, हाथ में खड्ग लिए युद्ध करने को तैयार देख, सब उत्साह से भर लड़-मरने को तैयार हो रहे थे।

अभी यवन-सेना एक कोस के अन्तर पर ही थी कि उनको समाचार मिला कि यवन-सेना पर पीछे से मागधी-सेना ने आक्रमण कर दिया है। इसको सुअवसर जान प्रद्युम्न कुमार ने आगे से उन पर आक्रमण करने का आदेश दे दिया। परिणाम यह हुआ कि सूर्यास्त तक दो सेनाओं के भीतर पिस कर पूर्ण यवन-सेना विनाश को प्राप्त हो गई।

यवन-सेना के नष्ट होने पर मागधी-सेना और अवध-सेना एक-दूसरे के सामने आ गई। इस पर मगध के सेनापति ने श्वेत-पताका देकर एक दूत प्रद्युम्न कुमार के पास भेजा। दूत ने जाकर निवेदन किया, "श्रीमान् अवध-नरेश की सेवा में मागधी सेनापति का निवेदन है कि मगध तथा अवध परस्पर मित्र राज्य है। हमे केवल यवन-सेना को नष्ट करने का आदेश

है। अतएव हम अवध-सेना से युद्ध करना नही चाहते।

"हम चाहते है कि एक रात हमारी सेना यहाँ विश्राम करे। कल प्रात काल ही हमारी सेना वापस मगध राज्य को लौट जायगी।"

अवध-नरेश मगध-सेना का बहुत ही आभार मानता था। उसी के कारण अयोध्या की रक्षा हो सकी थी अन्यथा उनकी विजय अनिश्चित ही थी। उसने सेनापति को निमन्त्रण देकर उससे मिलने की इच्छा प्रकट की। दोनो मिले और परस्पर मैत्री-भाव प्रकट कर विदा हुए। मगध-सेना के पडाव का पूर्ण प्रबन्ध अवध-सेना ने अपने ऊपर ले लिया। इस पर भी अगले दिन प्रात. ही मगध सेना लक्ष्मणपुर को लौट गई।

पुष्यमित्र ने एक सहस्र सैनिक कौशाम्बी मे छोड, शेष सैनिको के साथ अगले दिन ही इन्द्रप्रस्थ पर अधिकार करने के लिए प्रस्थान कर दिया था। परिणाम यह हुआ था कि अभी डेमिट्रियस हस्तिनापुर मे अपनी सेना एकत्रित ही कर रहा था कि इन्द्रप्रस्थ पर मागधी सेना का अधिकार हो गया।

जब डेमिट्रियस अपने बचे हुए तीन चार-सौ सैनिको के साथ सिन्धु पार कर अपनी जान बचाने का यत्न कर रहा था, पुष्यमित्र ने कौशाम्बी मे मन्त्रिमडल की बैठक बुला ली।

अरुन्धति को जब पता चला कि साकेत भेजी हुई यवन-सेना पूर्ण विनाश को प्राप्त हुई है तो वह भी लक्ष्मणपुर से कौशाम्बी जा पहुँची। उसको यह जानकर विस्मय हुआ कि पुष्यमित्र उसकी गणना से भी शीघ्र युद्ध समाप्त करने के लिए कौशाम्बी से इन्द्रप्रस्थ के लिए प्रस्थान कर चुका है।

एक दिन कौशाम्बी मे विश्राम कर वह भी इन्द्रप्रस्थ की ओर चल पडी, परन्तु मार्ग मे ही पुष्यमित्र वहाँ से लौटता हुआ मिल गया।

पुष्यमित्र ने इन्द्रप्रस्थ पर अधिकार करने के पश्चात् सेना के दो विभाग कर दिये थे। एक विभाग को डेमिट्रियस का पीछा करते हुए स्थानेश्वर तथा वहाँ से सिन्धु नदी तक अधिकार करने के लिये भेज दिया था तथा दूसरे को उसने काश्मीर पर अधिकार करने का आदेश दे दिया

था। स्वयं वह मन्त्रिमडल की बैठक के लिये कौशाम्बी लौट रहा था।

मार्ग मे अरुन्धति से भेंट हो गई और अरुन्धति भी पुष्यमित्र के साथ वापस लौट पडी। लौटते हुए इस बात पर विचार होने लगा कि पूर्ण मगध राज्य का प्रबन्ध किस प्रकार किया जाय। अरुन्धति का कहना था कि इस समर-विजय मे जिन-जिन का हाथ है, उनको पुरस्कार मिलना चाहिये।

पुष्यमित्र ने कहा, "यह तो होना ही चाहिये। मेरे विचार मे सर्व-प्रथम पुरस्कार पर तो देवी अरुन्धति का ही अधिकार है।"

"यह कैसे ? ऐसा प्रतीत होता है कि मगध-शासक अपने कार्य मे ऐसे व्यस्त रहे हैं कि उनको इस बात का ज्ञान ही नही रहा कि उनका कार्य-कर कौन रहा है ?"

"इसकी जांच के लिये हमने गुप्तचर विभाग का अधिकारी एक अति योग्य व्यक्ति नियुक्त किया है। वह जिन-जिन को पुरस्कार का भागी समझे, उनकी सूची मन्त्रिमडल मे उपस्थित कर दे। मन्त्रिमडल पुरस्कार का निश्चय कर देगा।"

"यही तो मेरा निवेदन है कि जिस विभाग का यह कार्य है, उससे पूछे विना श्रीमान् अपने ही घरवालो को पुरस्कार देने का आयोजन कर रहे है।"

"ओह ! ठीक तो है।"

"हाँ, घर के प्राणियो के अतिरिक्त ऐसे सहस्रो प्राणी है, जिनको इस समर से किसी प्रकार का राजनीतिक लाभ नही प्राप्त होने वाला। उनका विचार भी तो करना ही होगा।"

"तो क्या इस देश मे ऐसे लोग भी है, जिनको कोई राजनीतिक लाभ नही प्राप्त होने वाला ?"

"हाँ हैं। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि ऐसे अनेक व्यक्ति हैं जिन्हे राज्य में कोई पदवी अथवा अधिकार प्राप्त नही करना। सहस्रो ने दिन-रात अथक और अद्भुत परिश्रम किया। जिससे यह आयोजन

सफल हो सके। सोने-चाँदी के टुकड़े अथवा झूठी मान-प्रतिष्ठा देने से उनको सन्तोष नहीं होगा।"

कौशाम्बी में पहुँच पहला कार्य जो सम्पन्न हुआ, वह अरुन्धति को अभिमठन में लेना था। इसके पश्चात् एक घोषणा की गई, जिसमें उन सब व्यक्तियों के प्रति, जिन्होंने वैतनिक अथवा अवैतनिक रूप से इस समर-कार्य में सहयोग दिया था, आभार प्रदर्शित किया गया। कठिनाई वहाँ उपस्थित हुई, जब चुपचाप कार्य करने वालों की सूची तैयार की जाने लगी, जिससे उनको पुरस्कार दिया जा सके।

जाँच करने पर पता चला कि महर्षि पतंजलि के आश्रम के प्रत्येक व्यक्ति—युवा अथवा वृद्ध—ने किसी-न-किसी भाँति आन्दोलन को सफल बनाने का यत्न किया था। प्रायः युवक सेना मे भरती हो गये थे। वृद्धजन गाँव-गाँव मे फैल गये थे और लोगो के मन मे बौद्ध भिक्षुओ द्वारा फैलाई भ्रान्तियो का निवारण करने लग गये थे। बौद्ध भिक्षु नवीन सेना का विरोध करते थे तथा महाराज बृहद्रथ की जय-जयकार बुलाते थे, जिससे नवीन सेना महाराज बृहद्रथ के विरुद्ध न हो सके। उनका यह भी प्रयत्न रहा था कि प्रजा के मन मे यवनो और गान्धारो के प्रति मित्रता की भावना बनी रहे। यह महर्षि के आश्रम के वृद्धजनो के ही प्रयास का परिणाम था कि महाराज बृहद्रथ की हत्या होने पर भी प्रजा ने शोक नही मनाया था और हर प्रकार से पुष्यमित्र की नवीन सेना का स्वागत किया था।

महर्षि जी को उनकी सेवाओ का पुरस्कार देना तो उनका अपमान करना था, परन्तु आश्रमवासियो की बात दूसरी थी। किस प्रकार उनको पुरस्कृत किया जाये, इसका निश्चय महर्षि जी पर ही छोड दिया गया और पंडित अरुणदत्त महामात्य को कहा गया कि वे महर्षि जी से इस विषय मे परामर्श करें।

: ७ :

महर्षि पतंजलि का कहना था कि देश से विदेशियो को निकाल देने

मात्र से ही देश तथा धर्म की समस्या सुलझ नही सकती। इसके लिए कुछ अन्य बातो पर भी ध्यान देना आवश्यक है। उनका कहना था कि देश तो भारत-खड है। इसकी सीमाएँ सिन्धु नदी से लेकर ब्रह्मपुत्र तक एक ओर तथा काश्मीर और तुषार शैलभू से लेकर कन्या कुमारी तक दूसरी ओर है।

"इतने बडे देश मे एक ही राज्य हो, ऐसा नही हो सकता। इस दिशा मे यत्न करने से वैमनस्य फैलने की ही सभावना है। इस पर भी भारत-खड की एकता तो रहनी ही चाहिये। यह इस कारण कि भारतवासी एक राष्ट्र है। एक राष्ट्र की राजनीतिक अखडता हम उसी ढग से रख सकते है, जैसे प्राचीन काल मे हमारे इस भारत-खड मे रखी जाती थी।

"यहाँ पर एक चक्रवर्ती राज्य स्थापित होना चाहिये। इसके लिये मेरी सम्मति यह है कि भारत के सब मुख्य-मुख्य राजाओ की एक सभा देश के किसी केन्द्रीय स्थान पर बुलाई जाय और सब मिलकर स्वेच्छा से एक को यहाँ का चक्रवर्ती राजा चुन लें। वह राजा और उसका राज्य देश की सुरक्षा का प्रबन्ध करे। अन्य राजा लोग इसमे उसकी सहायता करे।"

महर्षि अपनी सम्मति मन्त्रिमडल द्वारा नियुक्त एक समिति के सम्मुख रख रहे थे। इस समिति मे अरुन्धति तथा पडित अरुणदत्त थे। जब महर्षि ने अपनी योजना रखी तो अरुणदत्त ने पूछ लिया, "भगवन्! चक्रवर्ती राज्य तथा साम्राज्य मे क्या अन्तर है?"

"साम्राज्य मे भिन्न-भिन्न स्वतत्र राज्यो के लिये स्थान नही होता। चक्रवर्ती राज्य मे सब राज्य स्वतत्र होते है। देश की रक्षा के अवसर पर सब राज्य चक्रवर्ती राज्य की पताका के नीचे एकत्रित हो जाते है। इसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न राज्यो के झगडे भी चक्रवर्ती राजा न्याय और सहिष्णुता से निपटाता है।

"जहाँ साम्राज्य देश के भिन्न-भिन्न राज्यो के ऊपर एक शासक राज्य का प्रतीक है, वहाँ चक्रवर्ती राज्यान्तर्गत तो, समान राष्ट्र वाले राज्य ही समान भाव मे आ सकते हैं।"

अरुन्धति का प्रश्न था, "परन्तु भगवन् ! इस सबका क्या अर्थ होगा, यदि सब राज्य परस्पर एकमत न हो सकें कि कौन राजा चक्रवर्ती हो ?"

"यह मैं जानता हूँ। कभी भी कोई राजा स्वेच्छा से किसी दूसरे को अपने से बडा मानने को तैयार नही होता। इस पर भी यदि अधिक सख्या मे राज्य यह स्वीकार कर लें तो अन्य राज्यो को, जो चक्रवर्ती राज्य के अन्तर्गत आने को तैयार न हो, इसके लिये विवश किया जा सकता है।

"सभा मे यह बात तो होगी ही कि पहले सब को एकमत होने का अवसर मिलेगा।"

"तो भगवन् ! इस सभा का आयोजन किया जाना चाहिये।"

"हाँ, परन्तु उससे पूर्व पहले मगध के शासक का राज्याभिषेक होना चाहिये। इससे शासक राजा की पदवी पा जायेगा। तदनन्तर और यदि हो सके तो राज्यभिषेक के समय पर ही, इस सभा का आयोजन कर दिया जाय।

"यह स्वाभाविक है कि कुछ राजा लोग मगध के चक्रवर्ती होने का विरोध करेंगे, परन्तु यह भी निश्चित है कि जिस कुशलता से मगध ने यवनो को परास्त कर, उन्हे सिन्धु के पार किया है, उससे कई राजा प्रभावित हुए होगे और वे हमारे इस आयोजन मे हमारा समर्थन करेंगे। अतः राज्याभिषेक पर निमत्रण भेजने के लिये सूची बनाते समय अधिकाश ऐसे राजाओ को सम्मिलित करना चाहिये, जो हमारे पक्ष के हो।

"पश्चात् अश्वमेध यज्ञ किया जाये और-जो राजा मगध-सम्राट् को चक्रवर्ती न माने, उनको इसके लिये विवश कर दिया जाय।"

महामात्य और अरुन्धति महर्षि से विचार-विनिमय कर लौट आये। इस समय तक मगध सेना की टुकडियाँ न केवल मुख्य-मुख्य नगरो मे नियुक्त हो चुकी थी, प्रत्युत भारत की सीमा, सिन्धु नदी के तट पर दुर्ग बनाने लगी थी।

मत्रिमडल ने उस पूर्ण क्षेत्र को, जो यवनो से रिक्त कराया था, मगध-राज्य मे सम्मिलित कर, पूर्ण राज्य को आठ विभागो मे बाँट दिया था और

प्रत्येक विभाग का एक-एक आयुक्तक नियुक्त कर दिया था। इन आयुक्तकों को अपने-अपने विभाग में सेना-निर्माण करने की स्वीकृति दे दी गई थी। इन सब आयुक्तकों के ऊपर महामात्य तथा सेनापति की नियुक्ति कर दी गई थी।

जब पुष्यमित्र का पिता तथा अश्वपति महर्षि से बातचीत कर वापिस लौटे तो पुष्यमित्र ने एक के पश्चात् एक मन्त्रिमण्डल की बैठकें आयोजित करनी आरम्भ कर दीं। इनमें राज्याभिषेक तथा उस सभा का, जिसका महर्षि जी ने प्रस्ताव रखा था, कार्यक्रम आदि बनने लगा। इनमें तो सब लोग सहमत थे कि ऐसी सभा का आयोजन होना चाहिए और भारतवर्ष में चक्रवर्ती महाराज की प्रथा पुनः चले, परन्तु इसकी सफलता पर सबको सन्देह था। इस पर भी इस विषय में प्रयत्न करने का निश्चय हो गया।

सब से पूर्व प्रजा-परिषद् में पुष्यमित्र के राज्याभिषेक का प्रश्न उपस्थित करने का आयोजन करने का निश्चय हुआ और प्रजा-परिषद् की अध्यक्षता के लिये महर्षि जी से प्रार्थना कर दी गई।

प्रजा-परिषद् में जहाँ प्रत्येक नगर और गाँव के प्रतिनिधि बुलाये गये, वहाँ प्रत्येक व्यवसाय और उद्योग के प्रतिनिधि भी आमन्त्रित किये गये। मन्त्रिमण्डल का यह विचार था कि इस प्रजा-परिषद् में अभी चक्रवर्ती राज्य का प्रश्न उपस्थित न किया जाय। सबसे पूर्व पुष्यमित्र के राज्याभिषेक का निर्णय हो।

प्रजा-परिषद् में महर्षि जी ने पुष्यमित्र के कार्य-कलापों का विस्तार से वर्णन कर तथा उसकी देश सम्बन्धी योजनाओं पर प्रकाश डाल, उसका नाम मगध के राजा के रूप में प्रस्तुत कर दिया। पुष्यमित्र के पक्ष में इतना प्रबल मत था कि उसका नाम निर्विरोध स्वीकार हो गया।

इसके पश्चात् राज्याभिषेक की तिथि निश्चित की गई और प्रजा परिषद् विसर्जित कर दी गई।

परन्तु महर्षि राज्याभिषेक से पूर्व एक अन्य कार्य सम्पन्न करना चाहते थे। इस कारण प्रजा-परिषद् के विसर्जन के पश्चात् उन्होंने पंडित अरुण-

दत्त से भेंट की और कहा, "पंडित अरुणदत्त ! पुष्यमित्र को बुलाओ। हम उनके राज्याभिषेक से पूर्व एक अन्य बात का निश्चय करना आवश्यक समझते हैं।"

अरुणदत्त महर्षि जी के इस आदेश से समझ गया कि यह पुष्यमित्र के विवाह की ही बात है, जिसका वे निश्चय करना चाहते हैं। उसने पुष्यमित्र को बुला भेजा। पुष्यमित्र के आने पर महर्षि ने कहा, "मगध के शासक को मगध की राजगद्दी पर बैठाने का निर्णय प्रजा परिषद् ने कर लिया है, परन्तु पत्नी के बिना कोई भी यज्ञ पूर्ण नहीं होता। अतएव हम चाहते हैं कि मगध शासक के विवाह का निर्णय भी हो जाना चाहिये।"

"भगवन् ! माँ ने मेरे लिए एक कन्या का चुनाव कर लिया है। मैं उस चुनाव को स्वीकार कर चुका हूँ। अतएव विवाह के विषय में माता जी से ही निश्चय होना चाहिये।"

भगवती और अरुन्धति को बुलाया गया। जब अरुन्धति आई तो महर्षि ने पुष्यमित्र तथा उसको आशीर्वाद दे दिया।

: ८ :

अब पाटलिपुत्र में उत्सवों की भरमार हो गई। सबसे पूर्व विजयोत्सव ही मनाया गया था। यह उत्सव पूर्ण राज्य में, प्रत्येक नगर में स्थान-स्थान पर मनाया गया। दूसरा उत्सव था पुष्यमित्र के विवाह का और उसके पश्चात् राज्याभिषेक उत्सव की तैयारी होनी थी।

पुष्यमित्र के विवाह पर उत्सव केवल पाटलिपुत्र तक ही सीमित रखा गया।

यद्यपि प्रजा-परिषद् ने सर्व सम्मति से पुष्यमित्र का नाम राजा के रूप में स्वीकार कर लिया था, इस पर भी प्रजा का एक अंश इससे असन्तुष्ट था। यह अंश बौद्धों से प्रभावित होने के कारण अपना असन्तोष प्रजा में फैला रहा था।

एक बात तो निश्चित थी कि राज्य में व्यवसाय सुचारु रूप से चल रहा था। सुख-सम्पदा का विस्तार हो रहा था। अतएव राज्य की निन्दा

—११

का प्रभाव बिल्कुल नहीं पड़ सकता था। हाँ, पुष्यमित्र के ऊपर लाँछन लगाने का प्रयत्न किया जाने लगा।

एक सेट्ठी की दुकान पर इसी विषय पर दो ग्राहक बातचीत कर रहे थे। एक ग्राहक ने कहा, "कलियुग आ गया है। तभी तो ब्राह्मण राजा होने लगे हैं।"

इस पर दूसरे ने कह दिया, "हाँ भाई! और शूद्र ब्राह्मण हो गये हैं।"

पहिले ने पूछ लिया, "कौन शूद्र ब्राह्मण हो गया है?"

"भिक्षु बादरायण।"

"वह शूद्र है क्या? किसका पुत्र है वह?"

"किसी अज्ञात माता-पिता का। तभी तो उसको शूद्र कहता हूँ।"

"वाह! जिनके माता-पिता का ज्ञान न हो, वह शूद्र कैसे हो गया?"

"जब माता-पिता का ज्ञान न हो और कर्म सन्दिग्ध हों, तब कहा ही क्या जा सकता है?"

"क्या बुरा कर्म किया है उसने?"

"एक दास प्रवृत्ति के व्यक्ति के कर्म, स्वार्थ, भय, तथा मूर्खता के आधार पर स्थिर होते हैं। ये सब महाप्रभु के कर्मों में ठीक बैठते हैं। इसी कारण उसको शूद्र की पदवी देता हूँ।"

इस वाद-विवाद को सुन सेट्ठी, जिसकी दुकान पर ये ग्राहक खड़े थे, खिलखिलाकर हँस पड़ा। इस पर तो दोनों गाहक उसका मुख देखने लगे। उस सेट्ठी ने कहा, "यदि आप रुष्ट न हों तो एक बात पूछूँ? क्या आपके विवाह हो चुके हैं?"

दोनों ने बताया कि हो चुके हैं। इस पर सेट्ठी ने पूछ लिया, "सन्तान भी होगी?"

इसका उत्तर भी 'हाँ' में मिला।

"कुछ काम-धंधा करके आय भी होती है क्या?"

"हाँ, भगवान की कृपा है।"

"अच्छा, तो यह बताओ कि यदि यहाँ यवन आ जाते और वही

कुछ करते, जो उन्होने कौशाम्बी मे किया था, तब तो बड़े आनन्द मे रहते न ?"

इस पर महाप्रभु की निन्दा करने वाले ने कह दिया, "आनन्द मे तो अब है।"

दूसरे ने कहा, "परन्तु इस बात का श्रेय क्या पडित पुष्यमित्र को है ?"

"तो और किसको है ?" दूसरे ने कह दिया।

सेट्ठी ने पुन वार्तालाप मे भाग लेते हुए कहा, "देखो भाई ! राज्य-कार्य बडा विकट है। इसमे सहस्रो व्यक्ति मिल कर कार्य करते है। सब अपने-अपने भाग का कार्य सुचारु रूप से करते है तो राज्य मे सुख-सम्पदा का विस्तार होता है। यदि कोई एक भी अपने कार्य मे आलस्य, प्रमाद आदि करे तो काम बिगड जाता है।

"पुष्यमित्र ने राज्य के हित मे कार्य करने वालो को एक सूत्र मे बाँध दिया है।"

इस प्रकार की चर्चा स्थान-स्थान पर चलती थी और प्रजा के बीच मे से ही निन्दा करने वालो का खडन करने का प्रयत्न भी होता रहता था। पुष्यमित्र पर लाछन यह भी था कि उसने राज्य की उच्च पदवियाँ अपने घर वालो मे ही वितरित कर दी है, वह अभी अल्पायु है, उसका सम्बन्ध अरुन्धति से है। अरुन्धति एक ब्राह्मण कन्या नही है—इत्यादि।

इस प्रकार की सूचनाएँ गुप्तचरो द्वारा मन्त्रि-मडल के पास पहुँचती थी और गुप्तचरो का यह भी कहना था कि इनका स्रोत पद्मा-विहार है तथा वे सेवक हैं, जो पहले वृहद्रथ के काल मे राज्य-भवन मे सेवा-कार्य करते थे और अब वहाँ पर नही रहे थे।

विवाहोत्सव समीप आने पर अरुन्धति ने गुप्तचर-विभाग शखपाद के अधीन कर दिया। अभी तक शखपाद महाप्रभु के पास उपासक बन कर ही रहता था, परन्तु उसका इस प्रकार उनको छोडकर गुप्तचर-विभाग मे आना, सबको विस्मय मे डालने वाला सिद्ध हुआ। केवल अरुन्धति और

पुष्यमित्र ही जानते थे कि उनकी योजना की सफलता मे उसका कितना हाथ है ।

महाप्रभु तो शखपाद की नियुक्ति पर अति क्रोधित हुआ। वह समझ गया कि उसी के कारण उसकी सभी योजनाएं असफल हुई हैं ।

शखपाद पद्मा-विहार तथा अन्य षड्यन्त्र के स्थलो एवं व्यक्तियो से भली-भांति परिचित था । इस कारण उसको सब पर दृष्टि रखने मे कठिनाई नही हुई ।

यह सूचना आई थी कि विवाह और राज्याभिषेक के बीच काल मे किसी दिन पुष्यमित्र की हत्या का षड्यन्त्र बनाया जा रहा है । यह बृहद्रथ की हत्या के प्रतिकार मे था। शतधन्वन् का, एक दासी से, एक पुत्र महेन्द्र था । उसको कही से ढूंढ कर लाया गया और पुष्यमित्र के स्थान पर उसको राज्य पर बैठाने का विचार होने लगा ।

यद्यपि इस षड्यन्त्र को चलाने वाले बौद्ध भिक्षु थे, परन्तु इसके समर्थन के लिये बृहद्रथ के सम्बन्धियो को एकत्रित करने का यत्न किया गया। बृहद्रथ की द्वितीय रानी सौम्या इसमे सम्मिलित हुई तो महेन्द्र का विचार छोडना पडा और सौम्या को मगध की महारानी घोषित करना स्वीकार हो गया ।

जब शखपाद महाप्रभु के साथ था, तब ही षड्यन्त्र का चिन्तन हो रहा था। शखपाद इसको अभी दूर से ही देख रहा था कि उसको राज्य के गुप्तचर-विभाग मे कार्य करने के लिये आना पडा । इस पर भी उसको इस षड्यन्त्र की सम्भावना थी । इस कारण उसने गुप्तचर-विभाग मे आते ही कुछ चुने हुए गुप्तचर उन व्यक्तियो के साथ लगा दिये, जिनकी इस षड्यन्त्र मे भाग लेने की सम्भावना थी ।

बृहद्रथ की द्वितीय रानी सौम्या इस षड्यन्त्र की धुरी बनी हुई थी । बृहद्रथ की मृत्यु के पश्चात् वह भिक्षुणी बन चुकी थी और पूर्ण रूप से बौद्ध महाप्रभु बादरायण के प्रभाव मे थी । उसने, महाप्रभु की सम्मति से कुछ सैनिक इस षड्यन्त्र मे सम्मिलित करने के लिये, अपने पिता वीरभद्र

को भी इस षड्यंत्र मे सम्मिलित करने का विचार कर लिया।

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये एक दिन वह अपने घर जा पहुँची और वीरभद्र के सम्मुख पुष्यमित्र की निन्दा करने लगी। उसने अपने पिता से कहा, "पिताजी! मेरे हृदय को तब ही शान्ति मिलेगी, जब पुष्यमित्र का सिर वैसे ही मेरे चरणो मे आकर गिरेगा, जैसे महाराज का उसके पाँव मे गिरा था।"

वृहद्रथ की हत्या के समय वीरभद्र भी वहाँ उपस्थित था। उसने सेना मे, अपनी पक्ति मे खडे-खडे वह पूर्ण दृश्य देखा था। इस कारण उसने कहा, "बेटी सौम्या! तुम्हारे दु ख को मैं अनुभव करता हूँ, परन्तु तुमने कभी उन स्त्रियो के दु ख का अनुमान लगाया है, जिनके पतियो को यवनो ने कौशाम्बी मे अथवा अन्य स्थानो पर मृत्यु के घाट उतारा था?"

"परन्तु पिताजी! उनका महाराज के साथ क्या सम्बन्ध था?"

"तुम्हारा पति महाराज उन यवनो को दड देने के लिये सेना भेजने मे बाधा बना हुआ था। वह उन यवन आतताइयो को दंड से बचाने मे सदा यत्न-शील रहा है।"

"दड तो प्रकृति देती है, मनुष्य इसमे क्यो अपना हाथ गदा करे?"

"यही तो मैं कह रहा हूँ। तुम्हारा पति प्रकृति के मार्ग मे बाधा बन रहा था। प्रकृति ने उसको मार्ग से एक ओर हटा दिया। अब तुम प्रकृति के मार्ग मे बाधा बनने की इच्छा कर रही हो। स्मरण रखो, तुम्हारा भी वही परिणाम हो सकता है, जो उस भीरु वृहद्रथ का हुआ था।"

"नही पिताजी! आपके समझने मे भूल है। देखिये, मैं आपके पास आई हूँ कि आप मेरे पति की हत्या का प्रतिकार लेंगे। यदि आप यह मेरा काम नही करेंगे तो फिर मेरे जीने का प्रयोजन ही क्या है? मैं इससे तो भूखी रह कर मर जाना पसन्द करूँगी।"

वीरभद्र इसको धमकी मात्र ही समझता था, परन्तु अगले ही दिन से सौम्या ने वीरभद्र के घर पर ही, भूखे रहकर प्राण त्याग करने का निश्चय कर लिया।

९

ज्यो-ज्यो विवाहोत्सव समीप आता गया, षड्यन्त्र में गंभीरता आती गई और अनेक दिशाओं से इसकी सूचना आने लगी। इन सूचनाओं को शखपाद एकत्रित कर, उनसे षड्यन्त्र की रूपरेखा का अनुमान लगाता और तत्पश्चात् उसका परिचय मन्त्रिमण्डल को देता।

शखपाद को यह सूचना मिल चुकी थी कि जब सौम्या भूख से मरणासन्न हो गई तो वीरभद्र अपनी लड़की के प्रति स्नेह में वशीभूत हो मान गया था। इस कारण वीरभद्र के ऊपर विशेष देख-रेख रखी जाने लगी।

अन्तिम समाचार इस विषय में यह आया कि हत्या का समय विवाहोत्सव के पश्चात् राज्याभिषेक के अवसर पर, ठीक उस समय निश्चित हुआ है, जब पुष्यमित्र तिलक के पश्चात् सिंहासनारूढ़ होने लगें। इस सूचना के मिलने पर भी वीरभद्र को बन्दी बनाना उचित नहीं समझा गया। शखपाद का कहना था कि पहले ही बंदी बना लेने पर प्रजा में असन्तोष फैलेगा, जिसका लाभ उठाकर षड्यन्त्रकारी प्रजा को भड़का सकेंगे। हत्यारे को अपराध करते समय पकड़ने का निश्चय किया गया। साथ ही वीरभद्र के साथियो का भी पता किया जा रहा था।

विवाह-सस्कार सायकाल राज्य-भवन के प्रागण मे होना था। आँगन को पताका, तोरण, पुष्प-पत्र आदि से सुसज्जित किया गया था। पूर्ण प्रागण पर एक सत्त रग का कौशेय वितान लगाया गया था और उसके नीचे विवाह-वेदी रखी गई थी।

अरुन्धति अपने आगार मे इस सस्कार के लिये तैयार हो रही थी। उसकी कुछ सखियाँ, जो आश्रम में उसकी सहपाठिनी थी, उसका शृगार कर रही थी। इसी समय एक प्रतिहारिन ने आकर सूचना दी कि एक स्त्री राज्य-भवन-द्वार पर आई है और देवी से इसी समय भेंट करने की आज्ञा माँग रही है। उसने अपना नाम-धाम नही बताया।

अरुन्धति ने कुछ क्षण तक विचार किया और उसके पश्चात् कहा, "उसको सुरक्षा से ऊपर ले आओ।"

प्रतिहारिन गई और दो सुभट्टों के साथ वह स्त्री लाकर अरुन्धति के सम्मुख उपस्थित कर दी गई। उस समय तक अरुन्धति का शृंगार पूर्ण हो चुका था और वह वेदी पर जाकर बैठने के लिये तैयार हो चुकी थी।

उस स्त्री को सामने खड़े देख अरुन्धति ने पूछा, "हां, बताओ क्या बात है?"

"एकान्त मे निवेदन करना चाहती हूं।" स्त्री की आवाज भर्राई हुई थी। अरुन्धति को ऐसा समझ आया कि वह रो पडेगी। स्त्री प्रौढावस्था मे थी, परन्तु बहुत ही दुर्बल प्रतीत हो रही थी। उसका मुख पीत वर्ण हो रहा था और होठ कांप रहे थे।

अरुन्धति ने देखा कि वह किसी प्रकार की भी हानि करने के अयोग्य है। अत उसको लेकर वह भीतर के आगार मे चली गई। भीतर पहुंच उस स्त्री ने आगार का द्वार बंद कर लिया और भूमि पर बैठ विह्वल हो रोने लगी।

अरुन्धति ने उसको चुप कराते हुए कहा, "देवी! क्या बात है? नि शक हो कर स्पष्ट कहो। तुम देखती हो, यह मेरे जीवन की अत्यन्त मधुर घडी है। बताओ क्या चाहती हो?"

उस स्त्री ने अभी भी रोते हुए कहा, "मै अपने सुहाग का दान मांगती हूं।"

अरुन्धति ने समझा कि कदाचित् इसका पति किसी अपराध मे बंदी बना लिया गया है और उसके लिये यह क्षमा मांगना चाहती है। अतएव वह विचार मे पड गई कि धर्म-व्यवस्था के अनुसार इसको कैसे वचन दे। कुछ विचार कर उसने कहा, "देवी! न्याय तो अपना मार्ग बनायेगा। हाँ, जब महाराज से दया की प्रार्थना की जायगी, तो तुम्हारी मांग पूरी कर दी जायगी। महाराज दया कर सकते है और यह तुम पर कर दी जायगी।"

इस पर उस स्त्री ने अरुन्धति के चरण-स्पर्श करके कहा, "मै वृहद्रथ महाराज की दूसरी पत्नी सौम्या की मां और सेनानायक वीरभद्र की पत्नी हूं।

"मेरे पति ने सौम्या के कहने पर महाराज की हत्या करने का निश्चय किया है। हत्या करने के लिये वे एक झूठे प्रवेश-पत्र को लेकर आ रहे हैं और महाराज की हत्या के लिये कटिबद्ध हैं।

"जैसे मैं स्वय विधवा होना नही चाहती, वैसे ही मैं किसी भी नारी का सुहाग लुटते नही देख सकती। इसी कारण मैं सूचना देने चली आई हूं। परन्तु इसके प्रतिकार मे मैं अपने सुहाग की भिक्षा मांगती हूं। बेटी! तुम नारी हो और एक नारी के भावो को समझ सकती हो।"

अरुन्धति कर्तव्य-विमूढ एक क्षण के लिये अनिश्चित सी रही। तत्पश्चात् तुरत अपने को सम्भाल कर उसने कहा, "देवी! जिसके लिये तुम दया की भीख मांग रही हो, वह एक अत्यन्त ही घृणित कार्य करने जा रहा है। इस कारण नही कि वह मेरे होने वाले पति की हत्या करने जा रहा है, प्रत्युत इस कारण कि वह देश को एक महापुरुष की सेवाओ से वचित करने का प्रयत्न कर रहा है।

"परन्तु अब मैं तुमको वचन दे चुकी हूं और मैं इसका पालन करूंगी। मेरी सम्मति है कि अभी तुम यही बैठो। अब समय नही रहा और बाहर जाना भी सुगम नही। तुम्हारे जलपान का प्रवन्ध यही हो जायगा और कुछ समय पश्चात्, कदाचित्, तुम्हें तुम्हारे पति के साथ ही विदा कर सकूं।"

इतना कह अरुन्धति उस आगार से बाहर आई और प्रतिहारिन को उसने उस स्त्री के विषय मे उचित निर्देश दे दिया। पश्चात् उसने शख-पाद को बुला भेजा और सारी घटना उससे कह सुनाई।

इसका परिणाम यह हुआ कि दो सहस्र अभ्यागतो मे वीरभद्र की खोज होने लगी। वीरभद्र को पहचान सकने वाले कई गुप्तचर वहाँ उपस्थित थे और उन्होने चौथाई घडी मे उसको एक सेट्ठी के वस्त्रो में बैठे, पहिचान लिया।

विवाह का समय हो गया था। वर तथा वधू की प्रतीक्षा की जा रही थी और विवाह-सस्कार कराने के लिये आचार्य श्वेताश्वर अपने पाँच शिष्यो के साथ विराजमान थे।

इस समय एक हृष्ट-पुष्ट युवक भीड को चीरता हुआ वेदी के समीप आया और वहाँ सेट्ठी के वस्त्र पहने हुए वीरभद्र को बुलाकर वाहर ले गया। वह युवक वीरभद्र को भवन के गुप्तचर कार्यालय मे ले गया। वहाँ शखपाद बैठा हुआ उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। जब वीरभद्र उसके पास पहुँचा तो उसको पहिचान कर शखपाद ने कहा, "वीरभद्र जी ! यह क्या पहिरावा पहिना हुआ है आपने ?"

वीरभद्र ने कहा, "मैं लक्ष्मीचन्द्र हूँ। आप क्या कह रहे है ?"

"ओह ! भूल हो गई। क्षमा कीजिये, आपका प्रवेश-पत्र कहाँ है ?"

वीरभद्र ने लक्ष्मीचन्द्र के नाम का प्रवेश-पत्र शखपाद को दिखा दिया। शखपाद ने प्रवेश-पत्र देख, एक अश्वारोही को सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र के घर, उनके घर से किसी को बुला लाने के लिये भेज दिया, जो सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र की पहिचान कर भ्रम-निवारण कर सके।

कुछ देर तक वीरभद्र वहाँ बैठा रहा। उसके पश्चात् कहने लगा, "वहाँ विवाह-सस्कार आरम्भ हो गया है और मैं उसमे सम्मिलित होने के लिये आया हूँ।"

"विवाह अभी आधा प्रहर चलेगा और हम आपको आधी घडी मे वहाँ ले जायेंगे।"

'परन्तु वात क्या है ? कुछ पता भी तो चले ?"

"वात यह है कि आप भूतपूर्व महाराज बृहद्रथ के स्वसुर वीरभद्र हैं, परन्तु आप कह रहे है कि आप सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र हैं। आपने सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र को कहाँ रोक रखा है, यह जानना आवश्यक है। हमको उनके जीवन का भय लग गया है।"

"तो मैं हत्यारा हूँ ?"

"यह मैं अभी नही वता सकता।"

कुछ काल पश्चात् वह अश्वारोही एक युवक को अपने साथ लाया और कहने लगा, "सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र का यह सुपुत्र है।"

उस युवक ने वीरभद्र को देख विस्मय मे पूछा, "क्या वात है पिताजी !

यहां आप कैसे बैठे है ?"

"देखो बेटा ! ये कहते है कि मैं तुम्हारा पिता नही हूँ और वीरभद्र हूँ।"

इस बातचीत को सुन शखपाद विस्मय मे उन दोनो का मुख देखता रह गया। इस समय युवक ने कहा, "ये मेरे पिता हैं और इनका ही नाम लक्ष्मीचन्द्र है।"

शखपाद ने समझा कि वीरभद्र को पहिचानने मे भूल हो गई है। इस कारण उसने पिता-पुत्र दोनो से क्षमा मांगी और सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र को विवाह उत्सव मे जाने की स्वीकृति दे दी।

अब पुन वीरभद्र की खोज होने लगी।

विवाह-सस्कार समाप्त हुआ तो सब उपस्थित अभ्यागत पुष्यमित्र और उसकी पत्नी को भेट देने लगे। सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र भी भेट मे देने के लिये एक चाँदी की सदूकची लाया था। अपने स्थान से उठकर वह उपस्थित अभ्यागतो को सबोधित कर कहने लगा, "मगध के भद्र नागरिको ! मैं महर्षि पतजलि का शिष्य हूँ। वे स्वय इस यज्ञ मे सम्मिलित हो, वर-वधू को आशीर्वाद देना चाहते थे, परन्तु किसी कार्य-विशेष से वे स्वय नही आ सके और उन्होने मुझको अपना प्रतिनिधि बनाकर यहाँ भेजा है। मैं महर्षि की ओर से आशीर्वाद के रूप मे मगध-शासक पडित पुष्यमित्र शुंग तथा उनकी धर्मपत्नी देवी अरुन्धति को यह भेट देता हूँ।"

इतना कह उसने एक चांदी की सन्दूकची दोनो हाथो से पकड कर पुष्यमित्र को पकडाने के लिये आगे की। पुष्यमित्र ने आदर-भाव से कुछ झुक कर दोनो हाथो से सदूकची पकड ली। इस समय सदूकची छोडकर सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र ने सदूकची के नीचे से एक तीक्ष्ण कटार निकाली और पुष्यमित्र की पसली पर वार कर दिया। परन्तु उसका हाथ अभी पसलियो से दूर ही था कि अरुन्धति ने लपक कर पकड लिया।

जिस समय लक्ष्मीचन्द्र ने अपना वक्तव्य समाप्त किया था, अरुन्धति बडे ध्यान से उसको देख रही थी। जब लक्ष्मीचन्द्र ने अपने-आपको महर्षि पतजलि का शिष्य कहा था, अरुन्धति को उसी समय उस पर संदेह हो

गया था। उसने महर्षिजी के आश्रम मे इस रूपरेखा का कोई शिष्य नही देखा था और न ही महर्षिजी के मुख से कभी लक्ष्मीचन्द्र का नाम सुना था। वह विचार करती थी कि कदाचित् यह उसके काल से पहिले का कोई शिष्य हो। इस पर भी उसका सन्देह बना हुआ था।

जब लक्ष्मीचन्द्र ने सदूकची पुष्यमित्र के हाथ मे पकड़ा कर सदूकची के नीचे कटार निकालने के लिये हाथ डाला, तो उसी समय अरुन्धति समझ गई कि क्या करने जा रहा है। जब लक्ष्मीचन्द्र ने वार करने के लिये हाथ उठाया तो वह आगे हो कर उसका हाथ रोकने के लिये तैयार थी।

लक्ष्मीचन्द्र, जो वास्तव मे वीरभद्र ही था, हृष्टपुष्ट था और अरुन्धति एक लडकी थी। इस कारण उसका वार तो हुआ, परन्तु अरुन्धति के हाथ पकडने के कारण निशाना चूक गया। कटार पुष्यमित्र को लगने के स्थान चौकी की पीठ पर लगी और उसके पतरे को चीरती हुई उसमे धँस गई। वीरभद्र ने कटार को खीचकर चौकी मे से निकाला और पुन॰ वार करना चाहा, परन्तु इस समय सुरक्षा-दल के लोगो ने आगे बढकर उसको पकड लिया।

: १० :

जब सौम्या की अवस्था अनशन से चिन्ताजनक हो गई तो वीरभद्र का मन डोल गया। उसकी पत्नी पद्मा यह तो जानती थी कि उसकी लडकी अपने पिता को किसी कार्य मे सम्मिलित करने के लिये अनशन कर रही है, परन्तु उसको यह विदित नही था कि यह षड्यन्त्र है और किसी के विरुद्ध है।

वीरभद्र ने पुन सौम्या को समझाने का यत्न किया। उसने कहा, "देखो सौम्या! बृहद्रथ महाराज की हत्या पुष्यमित्र ने नही की। वह तो अन्त तक महाराज से कहता रहा है कि वे नवीन सेना को भेंट स्वरूप स्वीकार कर ले और यवनो से युद्ध की घोषणा कर दें। बृहद्रथ ने न केवल भेंट अस्वीकार की, प्रत्युत उसको बदी बनाने की भी आज्ञा दे दी। इसी के परिणामस्वरूप एक सेना-नायक ने उसकी हत्या की थी। इसमे पुष्य-

मित्र का अपराध कैसे हो गया ?"

"नही पिताजी ! वह इस मगध सेना का था । नहीं, सेना का वह सेनापति था और उसी का यह कर्त्तव्य था । उसको यह अधिकार था कि महाराज को विवश करे। युद्ध करना अथवा न करना तो अपनी आत्मा और विश्वासो की बात है। कोई किसी को अपने विश्वासों के विरुद्ध कार्य करने पर विवश क्यों करे ?"

"यह कोई और किसी का प्रश्न नही है सौम्या ! यह एक राज्या-धिकारी की बात थी। देश मे रहने वाले नागरिकों के जीवन तथा उनकी धन-सम्पदा की रक्षा का प्रश्न था। यदि महाराज बृहद्रथ यह समझते थे कि उनकी आत्मा युद्ध करने से सहमत नहीं, तो उनको राज्य-गद्दी छोड़ देनी चाहिये थी। वह राजा बने रहे। प्रजा ने कर प्राप्त कर अपने परिवार का पालन-पोषण करते रहे और अपने कर्तव्य-पालन से पीछे हटते रहे। पुष्यमित्र प्रजा का प्रतिनिधि था। उसने तो बृहद्रथ को राजगद्दी मे उतार कर बंदी बनाने की आज्ञा दी थी, क्योंकि बृहद्रथ न तो कर्तव्य-पालन कर रहा था और न ही राजगद्दी छोड़ना चाहता था। यह सर्वथा अनुचित था। हत्या तो उसके भागने के प्रयत्न के पश्चात् हुई थी।"

"नही, पुष्यमित्र का कोई अधिकार नही था।"

यह कोई युक्ति नही थी, हठ था। जब वीरभद्र ने देखा कि सौम्या उसके सम्मुख मरणासन्न पडी है और जब तक वह इस षड्यन्त्र मे सम्मिलित नही होता, वह हठ नही छोडेगी तो उसका स्नेह उमड आया। उसने षड्-यन्त्र मे सम्मिलित होने का वचन दे दिया।

षड्यन्त्र वृद्धि पाने लगा और इसमे कई सैनिक सम्मिलित हो गये। कुछ सेट्ठियो ने भी इसमे सहयोग देने का वचन दे दिया। वीरभद्र के कन्धो पर पुष्यमित्र की हत्या का भार डाला गया। महाप्रभु का कहना था कि वह पुष्यमित्र की हत्या के पश्चात् अपने आपको मगध का शासक घोषित कर दे।

परन्तु वीरभद्र जानता था कि यह सभव नही। हत्या के पश्चात् वह

बंदी बना लिया जायगा और कदाचित् उसी समय महाराज के सुरक्षा दल के लोग उसकी हत्या कर देंगे। राज्य हथियाना तो कदापि संभव नही था। लक्ष-लक्ष सेना सेनापति विद्रुम के अधीन है और फिर महामात्य अरुण-दत्त तथा मंत्रिमंडल के अन्य सदस्य, कोई भी तो उसके पक्ष में नही। वह षड्यन्त्र मे महाराज बनने के लिए सम्मिलित नही हो रहा था, प्रत्युत् केवल सौम्या के प्रति स्नेह के कारण वह अपना जीवन निछावर करने को तैयार हो गया था।

हत्या का दिन ज्यों-ज्यों समीप आता गया, वीरभद्र के मन की चंचलता बढ़ती गयी। इस कारण वीरभद्र ने यह निश्चय किया कि जो भी प्रथम अव-सर उसको मिलेगा, वह हत्या कर देगा। उसका कहना था कि विलम्ब करने के साथ-साथ षडयन्त्र के प्रकट होने की संभावना बढ़ती जायगी।

वीरभद्र की पत्नी पद्मा अपने पति की चंचलता को अनुभव कर रही थी। उसको षड्यन्त्र के विषय मे पूरा ज्ञान नही था। वह यह देखती रहती थी कि पिता तथा पुत्री गुप्त वार्त्ता करते रहते हैं। अन्तिम रात्रि, हत्या से पूर्व उसने अपने पति को बहुत ही बेचैनी से रात व्यतीत करते देखा। उस रात वीरभद्र सो नही सका और सारी रात करवटें बदलता रहा। इससे पद्मा को संदेह हो गया कि कदाचित् कोई भयंकर घटना घटने वाली है। उसने निश्चय कर लिया कि वह अपने पति की गति-विधि के विषय मे पूरी जानकारी प्राप्त करके रहेगी।

अगले दिन सौम्या विहार से आई और अपने पिता के आगार मे उससे मिलने चली गई। वीरभद्र बाहर गया हुआ था। मध्याह्न के समय वह आया तो आगार को बंद कर सौम्या से वार्तालाप करने लगा। पद्मा द्वार के साथ कान लगा कर खड़ी हो गयी।

सौम्या कह रही थी, "हमारे सब साथी यह मान गये है कि हत्या आज ही की जाय। विवाह के पश्चात् आप पुष्यमित्र को भेंट देने जायंगे। उसी समय यह कार्य आपको करना है। वहां उपस्थित अभ्यागतो मे कई हमारे साथी होगे और हत्या के तुरन्त पश्चात् वे आपको सुरक्षा से उपा-

सक महावीर के गृह पर ले जायेंगे और वहाँ इस बात की घोषणा कर दी जायगी कि आप मगध के शासक हैं। सारे राज्य में बौद्ध उपासक आपको राजा मान विप्लव कर देंगे।"

इस पर वीरभद्र ने कहा, "देखो सौम्या! हत्या के पश्चात् क्या होगा और कौन शासक बनेगा, यह देखना मेरा काम नही। मैं तो एक बात जानता हूँ कि तुम्हारा बृहद्रथ से विवाह मेरी बड़ी भारी भूल थी। अब मैं तुम्हारे पति के हत्यारे की हत्या कर उस भूल का प्रायश्चित करूँगा। शीघ्रातिशीघ्र इस कार्य को सम्पन्न कर मैं अपने मन की शान्ति चाहता हूँ।"

"ठीक है पिता जी! आपको राजा बनाना हमारा काम है और वह हम करेंगे। विवाह के अवसर पर राज्य-भवन के भीतर जाने का प्रवेश-पत्र मैं ले आई हूँ। सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र बौद्ध उपासक तो है, परन्तु पुष्यमित्र के प्रशसको में से है। इसी कारण यह प्रवेश-पत्र उसी के नाम का है, जिससे सदेह न हो। उसको महाप्रभु ने कार्यवश विहार मे बुलवा कर वहाँ बदी बना लिया है और उसका प्रवेश-पत्र उससे छीनकर मुझे दे दिया है। आपने सेट्ठियो के से वस्त्र पहिन, सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र बनकर वहाँ जाना है।

"सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र के घर पर हमारा एक युवक कार्यकर्ता रहेगा, जिससे यदि कोई पूछताछ हुई तो वह उचित उत्तर दे सकेगा।"

वीरभद्र ने प्रवेश-पत्र ले लिया और विवाह पर जाने की तैयारी करने लगा।

पद्मा ने सारी बात सुन ली थी। इससे उसका हृदय बैठने लगा। एक तो वह भी नवीन राज्य के पक्ष मे थी और नही चाहती थी कि पुष्य-मित्र की हत्या हो। दूसरा उसको विश्वास हो गया था कि हत्या के पश्चात् वीरभद्र को सूली पर चढा दिया जायगा और वह विधवा हो जायगी। इससे उसका मन डोल उठा और इस सम्पूर्ण घटना मे उसने अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया।

जब वीरभद्र सेट्ठियो के से वस्त्र पहन विवाहोत्सव पर गया तो वह

अवसर पा, देवी अरुन्धति से भेंट करने के लिए चल पडी।

: ११ :

वीरभद्र को बंदी बनाकर पुन भवन के कार्यालय मे लाया गया। दूसरी ओर विवाह का शेष कार्यक्रम चलता रहा। विवाह के पश्चात् सब अभ्यागतो के लिये एक बृहत् भोज का प्रबन्ध था। भोज तीन घडी तक चला और उसके पश्चात् धीरे-धीरे सब अभ्यागत विदा हो गये। इस समय अरुन्धति को अपराधी का स्मरण हो आया। वह अभी तक राज्य-भवन के कार्यालय मे बंदी बना कर बैठाया हुआ था। अरुन्धति तथा पुष्य-मित्र दोनो वहाँ पहुँचे। शखपाद उनको देख अपनी असफलता पर लज्जा अनुभव कर रहा था। उसने उनको वीरभद्र के पकडे जाने तथा लक्ष्मी-चन्द्र के घर से एक युवक के आकर साक्षी देने की कि यह उसका पिता लक्ष्मीचन्द्र ही है, सारी बात बता दी। इसी कारण, उसने कहा, कि वीरभद्र को पुन वेदी के समीप बैठने की स्वीकृति दे दी गई थी।

अरुन्धति ने अब अपराधी से पूछा, "क्या नाम है तुम्हारा ?"

"लक्ष्मीचन्द्र।"

इस पर अरुन्धति को पद्मा का ध्यान हो आया। उसने एक प्रतिहारिन को भेज उसको बुला भेजा। पद्मा आई और अपने पति को बँधे हुए देख कर समझ गई कि वह बंदी बना लिया गया है। अरुन्धति ने उससे पूछा, "देवी! पहचानती हो इसको ?"

"हाँ, यह मेरे पति हैं।" पद्मावती ने आँखें नीची किये हुए कहा।

"वीरभद्र ?"

"जी हाँ।"

"अच्छी बात है तुम जा सकती हो।"

"और ये ?" पद्मा ने पूछ लिया।

"इनके साथ न्याय होगा। उसके पश्चात् तुम दया के लिए महाराज से प्रार्थना करना। तब मै वचन पालन करने का यत्न करूँगी। परन्तु इस व्यक्ति ने एक अन्य अपराध किया है। एक सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र का प्रवेश-पत्र इसके पास

है और उस सेट्ठी को इसने कहीं छुपा रखा है। यदि उसके साथ भी कुछ किया गया है तो बात कठिन हो जायगी।"

इसके पश्चात् अरुन्धति ने शखपाद से कहा, "इसको कारावास भेज दो और कल इसको न्यायाधीश के सम्मुख उपस्थित कर दो। इस समय तक लक्ष्मीचन्द्र का पता करो।"

पंचम् परिच्छेद

: १ :

राज्याभिषेक का निमन्त्रण जहाँ मगध-राज्य के अन्दर विशेष अधिकारियों तथा प्रजा के प्रतिनिधियों को भेजा गया, वहाँ मगध से वाहर के राज्यों को भी भेजा गया।

जिस गति से यवनों को देश से निकाला गया था और जिस पूर्णता से यवनों को भारतीय समाज में विलीन किया गया था, वह भारत के अन्य नरेशों के लिये चमत्कार ही था। जहाँ यवन सेना को देश से ढकेल कर निकालने का श्रेय पुष्यमित्र की नवीन सेना को मिल रहा था, वहाँ विदेशियों को समाज में मिला लेने का श्रेय महर्षि पतंजलि के आश्रम-निवासियों के प्रचार को प्राप्त था।

यों तो बौद्ध-सम्प्रदाय के भिक्षु भी विदेशी और भारतीय समाज में एकीकरण का यत्न कर रहे थे, परन्तु उनके प्रयत्न का फल एक अन्तर्राष्ट्रीय समाज की स्थापना होती थी, जो भावों और विचारों में अभारतीय था। परन्तु इसका प्रभाव भारत से वाहर नहीं हो पा रहा था, अर्थात् भारत में रहने वाले तो अपने को अन्तर्राष्ट्रीय अर्थात् अभारतीय मानने लगे थे, लेकिन भारत से वाहर वाले उनको ऐसा नहीं मानते थे।

महर्षि पतंजलि के शिष्य वैदिक विचारधारा के अनुसार भारतीय समाज में विदेशियों को सम्मिलित करते जाते थे। इसका एक चमत्कारिक प्रभाव यह हुआ कि जहाँ बौद्ध प्रयास का फल भारतीयता को दुर्बल कर रहा था, वहाँ वैदिक प्रचार भारतीयता को पुष्ट कर रहा था।

—१२

दो वर्षों मे ही, मौर्य राज्यकाल मे भारत मे आकर बसे विदेशी, विदेशी न रहकर भारतीय समाज मे ऐसे घुल-मिल गये थे कि उनमे भेद-भाव नही रहा था।

इन सभी प्रयत्नो का परिणाम यह हुआ कि भारत के नरेश पुष्य-मित्र को और मगध मे चल रही वैदिक विचारधारा को पुन मान की दृष्टि से देखने लगे और जब उनको पुष्यमित्र के राज्यारोहण के उत्सव पर आने का निमन्त्रण मिला तो बहुत से नरेश अथवा उनके प्रतिनिधि इस उत्सव को देखने के लिये चल पड़े।

भारत के स्वतन्त्र नरेशो अथवा उनके प्रतिनिधियो के ठहरने और भोजनादि का प्रबन्ध मगध-राज्य की ओर से किया गया। एक सप्ताह भर पाटलिपुत्र मे ऐसी चहल-पहल रही, जैसी चन्द्रगुप्त के काल के पश्चात् देखने मे कभी नही आई थी।

राज्यारोहण के अवसर पर पुन वैसी दुर्घटना न हो सके, जैसी पुष्य-मित्र के विवाह पर हुई थी, इस निमित्त कई सहस्र सैनिक, बौद्ध उपासक और भिक्षु तथा मौर्य वंश के सम्बन्धी पकड़ कर राज्य मे, दूर-दूर बंदी-गृहो मे भेज दिये गये थे। पाटलिपुत्र को षड्यन्त्रकारियो से रिक्त रखने के लिए जिस पर भी किसी प्रकार का सन्देह हुआ, उसको पकड़ कर बंदी-गृह मे डाल दिया गया।

राज्याभिषेक का कार्यक्रम निर्विघ्न समाप्त हुआ। इस सब अवधि मे जहाँ राज्य की ओर से प्रजागणो को पुरस्कार दिये जा रहे थे और प्रजा की ओर से महाराज और महारानी को भेंट दी जा रही थी, वहाँ महर्षि भी देश-विदेश के नरेशो तथा उनके प्रतिनिधियो से, भारत मे एक सुदृढ संगठन निर्माण करने के हेतु विचार-विनिमय कर रहे थे।

इन वार्त्तालापो का एक परिणाम यह हुआ कि राज्याभिषेक के तीन दिन पश्चात् अभ्यागतो को विदा करने से पूर्व एक सार्वभौमिक सभा का आयोजन कर दिया गया। इसमे भारत के उन सब नरेशो को तथा उनके प्रतिनिधियो को आमन्त्रित किया गया, जो मगध के महाराजा के राज्या-

भिषेक के अवसर पर पधारे थे। उस सभा का प्रधानत्व महर्षि पतञ्जलि ने किया। उन्होंने इस सभा का प्रयोजन वर्णन करते हुए बताया, "भारत देश सुमेरु पर्वत से लेकर हिन्द महासागर तक फैला हुआ है। भौगोलिक दृष्टि से यह देश एक है। यहाँ के निवासी न केवल एक ही संस्कृति के मानने वाले हैं, प्रत्युत उनका जीवन-दर्शन भी एक समान ही है।

"इसके अतिरिक्त विदेशी आक्रमणकारियों से बचने के लिए तथा प्रतिकूल विचारधाराओं का विरोध करने के लिए इस पूर्ण देश के निवासियों का, एक प्रकार के ऐक्य-सूत्र में बद्ध होकर रहना अत्यावश्यक है।

"इस एक सूत्र में बँधकर रहने का अर्थ यह नहीं कि सब एक ही राज्य के अधीन हो जायँ, देश मे एक सम्राट् हो और उस सम्राट् के अधीन पूर्ण देश हो, सब नरेश उस सम्राट् को कर दे और प्रत्येक बात मे सम्राट् की आज्ञा का पालन करे। यह तो विधि है, जिसको साम्राज्य स्थापित करना कहते हैं। चन्द्रगुप्त मौर्य के पूजनीय गुरु भगवान् चाणक्य ने इस विधि को ठीक समझा और इसके अनुरूप ही अशोक तक यह चलन चलता रहा।

"इस विधि के संगठन से जहाँ दृढता अधिक आई, वहाँ देश के भिन्न-भिन्न घटकों की बहुत अंशों में स्वतन्त्रता छिन गई।

"इस कारण हम देश में अपनी प्राचीन विधि का संगठन अधिक पसन्द करते हैं, अर्थात् देश के सब नरेश अपने-अपने राज्य में स्वतन्त्र हों, परन्तु अपने राज्य से बाहर वालों के साथ सम्बन्ध के विषय में और देश पर साझी विपदा के समय सब एक राज्य के, जिस पर सबका विश्वास हो, अधीन हो कर रहें।

"प्रत्येक नरेश दूसरे नरेशों से सम्बन्ध के विषय में और विदेशियों से सम्बन्ध के विषय में यदि स्वतन्त्र रहा तो जहाँ, एक ओर परस्पर द्वेष उत्पन्न होगा, वहाँ दूसरी ओर उस द्वेष से लाभ उठा कर विदेशी तथा विधर्मी हम पर शासन करने के लिए आ जायँगे।

"अत मेरा यह प्रस्ताव है कि इस भारतवर्ष में पुन चक्रवर्ती महाराजाओं की परम्परा चलाई जाय। 'चक्रवर्ती राजा सम्राट् नहीं होता।

वह वहुसख्यक राज्यो की अनुमति से एक सम्माननीय राजा होता है और कभी-कभी इस पद पर कोई छोटा सा राज्य भी आसीन हो सकता है।

"एक चक्रवर्ती राजा के गुणो मे उसकी न्याय-वुद्धि, पक्षपात रहित स्वभाव, दीर्घ दृष्टि और राष्ट्र की सस्कृति तथा धर्म पर दृढ निष्ठा, मुख्य हैं। साथ ही उस राजा मे इतनी शक्ति होनी चाहिए कि वह देश पर आई विपदा का विरोध कर सके।"

महर्षि की साम्राज्य और चक्रवर्ती राज्य मे अन्तर पर विवेचना इतनी स्पष्ट थी कि किसी को आपत्ति नही हो सकी।

इस सभा मे कुछ नरेशो ने पुन मगध-साम्राज्य की स्थापना का प्रस्ताव रखा, परन्तु अधिकाश नरेश चक्रवर्ती राज्य की प्रथा के पक्ष मे ही रहे।

महर्षि का प्रस्ताव वहुमत से स्वीकार हुआ और यह निश्चय हुआ कि मगध-राज्य को चक्रवर्ती राज्य की उपाधि देने के लिये पुष्यमित्र अश्वमेध यज्ञ करे, जिससे यह विदित हो जाय कि सव राज्य इस उत्तरदायित्व को पुष्यमित्र के कधो पर डालने के लिये तैयार हैं अथवा नही।

राज्याभिषेक का उत्सव पुष्यमित्र की ओर से उपहार तथा पुरस्कार दे-दे कर, सवको विदा करने पर समाप्त हुआ।

२

राज्याभिषेक उत्सव के समाप्त होते ही सव वदियो को पाटलिपुत्र मे लाकर न्यायाधीश के सम्मुख उपस्थित किया गया।

राज्य के सूचना विभाग ने उनके विरुद्ध अभियोग उपस्थित किया। अभियोग यह था कि इन वन्दियो ने षड्यन्त्र कर अकारण महाराज पुष्य-मित्र की हत्या तथा राज्य को पलटने का यत्न किया।

इस अभियोग के प्रमाण मे वीरभद्र की पत्नी पद्मा ने साक्षी दी। उसने वताया, "एक वार मेरी लडकी, अपने पिता से, किसी विषय पर मतभेद हो जाने के कारण, हमारे घर पर अनशन कर लेट गई। उस समय मैं इन अनशन का कारण स्पष्ट रूप से नही जानती थी। आठ-दस दिन के पश्चात् लडकी की अवस्था चिन्ताजनक हो गई। मेरे और मेरे पति

के मन मे उसकी अकाल मृत्यु का भय समा गया। मैंने अपने पति से कहा कि लड़की को समझा कर उसका अनशन तुड़वाना चाहिए और इस प्रकार हमें उसको मरने से बचाना चाहिए।

"इस पर भी मेरे पति ने नही बताया कि लड़की क्या चाहती है। मेरे आग्रह पर और लड़की की शोचनीय दशा से प्रभावित हो, मेरे पति ने लड़की से कुछ बात की और उसने अन्न ग्रहण करना स्वीकार कर लिया।

"इसके पश्चात् लड़की और अन्य बहुत से लोग मेरे पति से मिलने के लिये आते रहे।

"महाराज के विवाहोत्सव के पूर्व मेरे पति अत्यन्त चचल दिखाई देने लगे। वे रात-भर सोते नही थे और दिन-भर कही बाहर घूमते रहते थे। उनकी इस अवस्था पर मुझको बहुत चिन्ता लग गई। मुझको कुछ सन्देह हुआ कि लड़की उनसे वह कुछ करने को कह रही थी, जिसको करने के लिए उनकी आत्मा नही मानती थी।

"विवाह के दिन मैंने बाप-बेटी मे हो रहे वार्तालाप को छिपकर सुना तो मेरे रोगटे खड़े हो गये। उस दिन मेरे पतिदेव पुष्यमित्र की हत्या के लिये जाने वाले थे। मैं बहुत देर तक तो अपना कर्त्तव्य समझ नही सकी। मैं अपने पति के विरुद्ध कुछ भी करने के लिये अपने मन को तैयार नही कर सकी। विवाह-सस्कार के कुछ ही क्षण पूर्व मेरी समझ मे आया कि किसी प्रकार इस हत्याकाण्ड को रोकने का यत्न करना चाहिए। उस समय मेरे पति घर से जा चुके थे। अत उनको रोकने मे स्वय को असमर्थ पा, मैं महारानी जी की सेवा मे पहुँची और उनको पूर्ण स्थिति से अवगत कराया।"

इस वक्तव्य के पश्चात् सूचना-विभाग के अधिकारी ने पूछा, "क्या तुम पहचान सकती हो कि उस समय तुम्हारे पति से कौन-कौन व्यक्ति मिलने के लिये आते थे?"

"कुछ को तो मैंने कई बार देखा था, अत उनको मैं पहचान सकती हूँ।"

उसके सम्मुख कई सौ बन्दी लाये गये, जिनमें से उसने लगभग बीस व्यक्तियों को पहचान लिया। उनमें सौम्या, महाप्रभु बादरायण तथा कई उपासक, सैनिक और भिक्षुक थे।

इसी प्रकार कई अन्य व्यक्तियों की साक्षी हुई। कुछ थे, जिन्होंने वीरभद्र का, महाराज पुष्यमित्र को चाँदी की सन्दूकची देते समय, सन्दूकची के नीचे से छिपी कटार निकाल कर, महाराज पर आक्रमण करने की घटना का आँखों देखा विवरण बताया। कई साक्षियों ने पद्मा-विहार में होने वाली षड्यन्त्रकारियों की बैठकों का वर्णन सुनाया।

इन सब साक्षियों में मुख्य साक्षी लक्ष्मीचन्द्र की हुई। उसका कहना था, "मैं बौद्ध उपासक हूँ, इस पर भी मैं नये राज्य के प्रशासकों में से हूँ। मैंने कई बार महाप्रभु बादरायण से कहा था कि उनको राजनीति में हस्त-क्षेप नहीं करना चाहिये। अन्य कई बौद्ध उपासक और कुछ बौद्ध-भिक्षु भी इस विषय में मुझसे सहमत थे। इस पर भी महाप्रभु कुछ न कुछ जोड़-तोड़ करते रहते थे।

"एक कारण उनके हस्तक्षेप का यह भी था कि पहले राज्य की ओर से विहारों को बहुत सहायता मिलती थी। यह सहायता महाराज पुष्य-मित्र के काल में बन्द हो गई थी। महाप्रभु इसको अपने अधिकारों की हत्या मानते थे। वे समझते थे कि मगध-राज्य से इस प्रकार की सहायता लेना उनका अधिकार है।

"मैंने कई बार समझाया भी था कि जब राज्य की ओर से शिव-मन्दिरों को अथवा जैन मन्दिरों को किसी प्रकार की सहायता नहीं दी जाती तो फिर बौद्ध-विहारों को ही क्यों मिले? इस पर महाप्रभु कहा करते थे कि मगध-राज्य एक सौ वर्ष से भी अधिक काल से विहारों को धन देता आया है तो यह बौद्ध विहारों का पैतृक अधिकार हो गया है, जिसको कोई तोड़ नहीं सकता।

"महाप्रभु की इस अनुचित युक्ति को, अनेक उपासक और भिक्षु उचित मानते थे और वे महाराज के राज्य से असन्तुष्ट हो रहे थे।

"मुझको महाराज की हत्या के षड्यन्त्र का ज्ञान नहीं था। कदाचित् मेरे विचारों को जानकर ही मेरे साथ इस विषय में कभी बातचीत नहीं की गई।

"विवाह का निमन्त्रण मुझको मिला था। मैं नगर में एक प्रसिद्ध व्यापारी हूँ और अपनी आय का दशांश कर के रूप में राज्य को नियमित रूप से देता हूँ। मेरा वार्षिक कर लगभग पन्द्रह-बीस सहस्र स्वर्ण-मुद्रा में होता है। कदाचित् यही कारण है कि मुझको विवाह का निमन्त्रण दिया गया था। विवाह के दिन प्रातःकाल ही मुझको महाप्रभु का, उपासना में परिवार सहित सम्मिलित होने का निमन्त्रण मिला। उपासना में मैं सम्मिलित होने गया तो मुझको विहार के उस कक्ष में ले जाया गया, जिधर महारानी सौम्या, स्वर्गीय महाराज बृहद्रथ की विधवा पत्नी, रहती थी। वहाँ महारानी सौम्या ने मुझे तथा मेरी पत्नी एवं बच्चों को अपने साथ भोजनादि में सम्मिलित किया और उसके पश्चात् मुझसे विवाहोत्सव पर न जाने का आग्रह किया। मैं मान गया। एक स्त्री का, इतनी-सी तुच्छ बात के लिये, आग्रह मैं टाल नहीं सका। इस पर मुझे वहीं विहार में ही रह जाने की सम्मति दी गई। मैंने इसमें भी कोई हानि नहीं समझी। दिन-भर मैं और मेरी पत्नी भगवान् तथागत के चरणों में बैठकर मन्त्रजाप करते रहे और हमारे बच्चे वहाँ खेलते रहे। सायंकाल हम घर लौट आये। घर पहुँच कर हमें पता चला कि हमारे घर का ताला तोड़ा गया है और मेरी सन्दूकची, जिसमें विवाहोत्सव में सम्मिलित होने का निमन्त्रण-पत्र भी रखा था, खोली गई है।

"मेरी कोई अन्य वस्तु चोरी नहीं गई थी। अतः मैं नगरपालक के पास इस घटना की सूचना देने अथवा न देने के विषय पर विचार ही कर रहा था कि राज्य के सूचना-विभाग के कर्मचारी आये और मुझको राज्यभवन में ले गये। वहाँ मैंने यही वक्तव्य दिया। इस पर मुझे घर आने की स्वीकृति दी गई। यह बात तो मुझको बाद में विदित हुई कि महाराज की हत्या का यत्न किया गया है और हत्यारे के पास मेरा प्रवेश-पत्र था।"

पूर्ण अभियोग के उत्तर में सौम्या की ओर से यही कहा गया कि पुष्यमित्र हत्यारा है और इसकी हत्या कर देना अपराध नहीं था।

इस पर न्यायाधीश ने सौम्या से पूछा, "यदि देश के लिये किये गये युद्ध में कोई सैनिक शत्रुओं की हत्या करता है तो क्या वह भी हत्यारा है और उसकी हत्या करना क्या पाप माना जायगा ?"

"नहीं, देश के राजा की आज्ञा के अधीन शत्रु से लड़ते हुए जो हत्या करता है, उसका पाप उसको नहीं लगता।"

"तो क्या यह सिद्ध नहीं हो गया कि हत्या करना सदैव ही पाप नहीं होता। कभी यह पुण्य भी हो सकता है।"

"हाँ, श्रीमान् ! मैं यही कह रही हूँ। मेरे पिता जब हत्या करने गये थे, तो वे किसी प्रकार का पाप करने नहीं गये थे।"

"वह सैनिक, जो युद्ध में शत्रु से लड़ने के लिये जाता है, उस युद्ध से कुछ प्रयोजन सिद्ध करने जाता है। क्या मैं जान सकता हूँ कि वीरभद्र कौन सा प्रयोजन सिद्ध करने गया था ?"

"प्रयोजन तो स्पष्ट ही था कि वह पुष्यमित्र को समाप्त कर, पाटलिपुत्र में पुन मौर्य अधिकारी को राज्य देना चाहता था।"

"मौर्यवंशीय ही राजा हो, यह कहाँ का पुण्य कार्य हो गया ? पुष्यमित्र ने हत्या की थी अथवा नहीं, यह आज का विचारणीय विषय नहीं है। यह प्रश्न उस समय उत्पन्न हो सकता था, जब प्रजा-परिषद् की बैठक में पुष्यमित्र के राजगद्दी पर बैठने का निश्चय हुआ था। प्रजा-परिषद् में पुष्यमित्र को हत्यारा नहीं माना गया। उसको वैसा ही वीर पुरुष माना गया था, जैसे शत्रु से लड़कर शत्रु की हत्या करने वाले सैनिक को समझा जाता है।

"अत वीरभद्र का उस प्रजा-परिषद् के निर्णय के पश्चात् भी पुष्यमित्र को हत्यारा मानना, कैसे ठीक हो गया ? साथ ही विचारणीय बात यह है कि पुष्यमित्र की हत्या से कैसे मौर्यवंशीय को राज्य मिल जाता ? कौन मौर्यवंशीय है, जो राज्य का अधिकारी है ? क्या केवलमात्र मौर्यवंश

मे उत्पन्न होना ही किसी को राज्य पाने का अधिकारी बना देता है ?

"हत्या करने मे समाज-कल्याण का विचार भी तो होना चाहिये। यदि किसी देश का राजा अपने सैनिको को आज्ञा देता है कि वे किसी सुन्दर स्त्री के पति को मार कर उसकी पत्नी को उठा लाएँ तो क्या उस राजाज्ञा को मानने वाला भी पुण्यकार्य करने वाला कहा जायगा ? किसी हत्या मे समाज का कौनसा हित निहित है, यह भी विचारणीय है। इस कारण हम यह जानना चाहते है कि किसी अज्ञात मौर्यवशीय को गद्दी पर बैठाने मात्र के लिए उस राजा की हत्या से, जिसको प्रजा-परिषद् ने राजा स्वीकार किया है, कौन सा समाज का कल्याण होने वाला था ?"

"श्रीमान् ! मैं तो यह कह रही हूँ कि मेरे पति वृहद्रथ की हत्या मे ही कौन-सा समाज का कल्याण निहित था ?"

"तो श्रीमती यवनो का देश से निकाल देना समाज-कल्याण की बात नही मानती ? क्या इस कार्य को करने से वृहद्रथ ने इन्कार नही किया था और क्या यह कार्य पुष्यमित्र ने राज्य-भार सम्हालने के पश्चात् नही किया ?"

सौम्या निरुत्तर हो गई। उसे चुप देख न्यायाधीश ने अपना निर्णय सुना दिया। उसने अपने निर्णय मे लिखा, "पुष्यमित्र की हत्या का यत्न वीरभद्र ने किया। इस हत्या के लिए महाप्रभु वादरायण, सौम्या तथा अन्य एक सौ बीस व्यक्तियो ने, जिनके नाम नीचे दिये जा रहे है, षड-यन्त्र किया। इस हत्या मे किसी प्रकार की लोक-कल्याण की भावना निहित नही थी। ईर्ष्या-द्वेष तथा प्रतिकार के विचार से यह षड्यन्त्र रचा गया था। अत इन सब व्यक्तियो को अपराधी माना जाता है और सभी को मृत्यु-दण्ड दिया जाता है।

"शेष वन्दियो के विषय मे निश्चित रूपेण नही कहा जा सकता कि उनका कुछ भाग इस षड्यन्त्र मे था अथवा नही। इस कारण उनको मुक्त किया जाता है।"

इसके पश्चात् पद्मा ने अपनी और अपनी लडकी सौम्या पर दया

यदि कर देने की ही बात हो, तो पाटलिपुत्र विदर्भ को कर दे। यही युक्तियुक्त होगा।"

यह उत्तर प्राप्त करने के पश्चात् पाटलिपुत्र फिर इस विषय मे मौन रहा। वास्तव मे यज्ञसेन ने जो कुछ कहा था, वह ठीक ही था। पाटलिपुत्र अब कर प्राप्त करने का अधिकारी नही रहा था।

जब पुष्यमित्र मगध का शासक बना तो यज्ञसेन चिन्ता अनुभव करने लग गया था। वह विचार कर रहा था कि अब पुष्यमित्र के साथ वह किस प्रकार का व्यवहार करे।

पुष्यमित्र का पत्र आया था कि वह विदर्भ से मैत्री चाहता है। इस मैत्री का अर्थ यज्ञसेन नही समझा। उस समय यवनो ने भारत मे कुछ इस प्रकार का आतक जमा रखा था कि यवनो से युद्ध करने मे सभी झिझकते थे। इस आतक का कारण यह था कि मगध यवनो का विरोध करने के लिये समर्थ होता हुआ भी, पग-पग पीछे हटता जा रहा था। दूर से देखने वाले यह समझते थे कि यवनो को युद्ध-विद्या का ज्ञान बहुत अधिक है। इस कारण पुष्यमित्र के मित्रता के निमन्त्रण से यज्ञसेन को यह समझ आया कि वह यवनो के विरुद्ध लडने के लिये विदर्भ की सेना से सहायता चाहता है। व्यर्थ मे ही अपनी सेना को जलती आग मे झोकने का विचार न रखने के कारण, उसने पुष्यमित्र के मित्रता के निमन्त्रण का उत्तर ही नही दिया।

परन्तु जब पुष्यमित्र ने एक ही युद्ध मे यवन-सेना को पूर्ण रूप से परास्त कर सिन्धु पार कर दिया तो यवनो का आतक मिट गया और पुष्यमित्र की धाक जम गई।

इसके पश्चात् भी यज्ञसेन की चिन्ता मिटी नही। वह समझता था कि अब पुष्यमित्र पहले की अपेक्षा अधिक बलशाली हो गया है। अत अब वह मित्रता पर सन्तोष न कर विदर्भ का स्वामी बनने का यत्न करेगा। इस कारण उसने अपनी सेना और रक्षा केन्द्रो को सुदृढ करने मे धन, पानी की भाँति बहाना आरम्भ कर दिया।

इस समय पुष्यमित्र के राज्याभिषेक-उत्सव पर उपस्थित होने का निमन्त्रण आया। अब केवल भय के कारण यज्ञसेन ने राज्य के महामात्य राक्षस को राज्य का प्रतिनिधि बना कर पाटलिपुत्र भेज दिया।

राक्षस से पुष्यमित्र मिला और सहृदयतापूर्ण वार्तालाप हुआ। महर्षि पतंजलि से मिला तो देश में एक संगठन बनाने की बात होने लगी। राज्या-रोहण के अवसर पर विदर्भ-प्रतिनिधि को बैठने के लिए मानयुक्त स्थान दिया गया और अन्त में जब महर्षि के सभापतित्व में भारत के नरेशों तथा उनके प्रतिनिधियों का सम्मेलन हुआ तो साम्राज्य और चक्रवर्ती राज्य के अन्तर पर विवेचना सुनने को मिली।

इस सभा के पश्चात् तो राक्षस स्वयं महर्षि जी से मिलने के लिए गया। उसने अपने मन के संशय व्यक्त कर दिये। उसने कहा, "भगवन्! चक्रवर्ती ढांचा तो इतना ढीला होगा कि देश पर विपत्ति के समय वह टूट जायगा।"

"वह तो साम्राज्य में भी हो सकता है। साम्राज्य देश के विभिन्न भागों के लिए दासता का प्रतीक है और चक्रवर्ती ढांचा सबके लिये मान तथा प्रतिष्ठा का प्रतीक है। स्वेच्छा से बनाये मानयुक्त स्थान में अधिक स्थिरता की सम्भावना होती है और एक के स्वामित्व और दूसरे के दासत्व का सम्बन्ध कभी भी विश्वास योग्य नहीं होता।

"मैं तो यह समझता हूँ कि राजनीतिक बन्धन कृत्रिम होते हैं। उनका कठिनाई के समय कुछ भी मूल्य नहीं होता। सम्बन्ध, जिनका आधार, विचार, धर्म और संस्कृति हों, वे अधिक स्थिर और स्थायी होते हैं।

"चक्रवर्ती ढांचे में देश के सब नरेश धर्म और विचार-सामान्य में आस्था रखने से परस्पर अधिक समीप होते हैं और साम्राज्य में केवल राजनीतिक बंधन होने से वे स्वार्थ और लाभ-हानि पर निर्भर होते हैं। उनमें दृढ़ता कम होती है।"

राक्षस जब लौटकर आया तो यज्ञसेन के साथ वहाँ के प्रस्ताव पर विचार होने लगा। यज्ञसेन समझता था कि यह भी मगध वालों की चाल है और

अन्त मे ये पुन अपना साम्राज्य बनाना चाहेगे ।

राक्षस इससे भिन्न मत रखता था। उसका कहना था कि साम्राज्य हो अथवा चक्रवर्ती राज्य, उद्देश्य देश को एक सूत्र मे बांधना है। देश से बाहर बडे-बडे राज्य निर्मित हो रहे है। वे भारत की उर्वरा-भूमि पर कुदृष्टि रखते है। अतएव भारत को उनकी कुदृष्टि से सुरक्षित रखने के लिए यहां के सब नरेशो मे ऐक्य होना आवश्यक है। किस प्रकार का ऐक्य अधिक मानयुक्त होगा, यह विचारणीय बात है।"

"तो क्या ऐसा सगठन अत्यावश्यक है ?"

"निस्सन्देह महाराज !"

"जब विदेशी आक्रमण हो, तब सीमा के समीप के राज्यो को सगठित होना आवश्यक होता है। हम तो देश के मध्यभाग मे हैं। हम अपनी भौगोलिक स्थिति से स्वय ही सुरक्षित है।"

राक्षस हंस पड़ा। उसने कहा, "जो लोग हिमालय लांघ कर सहस्रो कोस की यात्राकर कौशाम्बी मे आ सकते हैं, क्या वे एक सौ कोस और यात्रा कर नीरा मे नही पहुँच सकते ? हमारा लाभ तो इसी मे है कि विदेशियो को सीमा पार ही रोक दिया जाय और इसके लिये सीमावर्ती राज्यो को धन तथा जन की सहायता यहां से जानी ही चाहिये। हमारा स्वार्थ भी इस बात मे है कि युद्ध हमारे देश से दूर रहे। ऐसा तब ही हो सकता है, जब देश के प्रत्येक भाग से देश की सीमाओ की रक्षा हो।

"परन्तु महाराज ! महर्षि जी ने एक अन्य प्रकार के समर का उल्लेख किया है। वह समर है सस्कृति का। विदेशो से लोग राज्य-प्रसार के लिये नही, प्रत्युत विचार-प्रसार के लिये भी आ सकते हैं। इन विचारो को हम, बिना उनकी उपयोगिता का विचार किये अपनी प्रजा मे प्रचलित नही होने देंगे। एतदर्थ देश के विद्वान् धर्मशास्त्रियो को एकसूत्र बद्ध होना अत्यावश्यक है।

"महर्षि जी का कथन है कि राजनीतिक समर से सास्कृतिक पराजय सम्भव है और सास्कृतिक पराजय से राजनीतिक समर भी सम्भव है।

अत उनका कहना था कि दोनो प्रकार के विदेशी ममर से रक्षा की आवश्यकता है। इस कारण वे चक्रवर्ती राज्य का समर्थन करते थे।"

देश के नरेशो मे अभी महर्षि पतजलि के प्रस्ताव की चर्चा चल ही रही थी कि पुष्यमित्र की हत्या करने वालो पर अभियोग चल पड़ा।

न्यायाधीश का निर्णय हुआ और पश्चात् दया भी हो गई। इस पर सौम्या और वीरभद्र तथा उसकी पत्नी पद्मा विदर्भ की राजधानी नीरा मे आ पहुँचे।

: ४ :

विदर्भ की राजधानी मे पहुँच एक साधारण-सा गृह बना, वीरभद्र रहने लगा। वीरभद्र यज्ञसेन से मिल, कुछ भूमि लेकर उस पर कृषि करने लगा और इस प्रकार निर्वाह होने लगा। सौम्या को कुछ काम नही था और वह पर्याप्त अवकाश रहने के कारण अपनी वर्तमान अवस्था से सदा असन्तुष्ट रहती थी। इस असन्तोष की अवस्था मे वह मन-ही-मन कुढा करती थी और मन के असन्तोष को दूर करने के उपाय सोचा करती थी।

एक दिन वीरभद्र खेत मे बीजारोपण कर घर आया, तो हताश सा खाट पर लेट गया। पद्मा ने उसको इस प्रकार निस्तेज देखकर पूछा, "क्यो ! स्वास्थ्य तो ठीक है न ?"

"मैं भीतर ही भीतर मन मे अपने जीवन पर ग्लानि अनुभव कर रहा हूँ। मैं क्षत्रिय-सन्तान होकर, वैश्य का कर्म करने लगा हूँ। इस पतन से तो मैं समझता हूँ, मर जाना ही उचित था।"

"आप सेना मे तो थे। उसको छोडने के लिए अपने ही कर्मों को धन्यवाद दे सकते है।"

"मैंने सेना को छोडा नही, प्रत्युत छोडने पर विवश हो गया था।"

"विवशता थी लडकी से अत्यधिक स्नेह की।"

"मैंने एक भूल की थी। सौम्या का विवाह वृहद्रथ से एक भूल थी और सौम्या का कहा मान एक हत्यारा बन मैं अपनी भूल का प्रायश्चित कर

रहा था।"

"बहुत खूब ! एक भूल का प्रायश्चित करने के लिये एक महान् पाप करने पर उतारु हो गये थे। देखिये देवता ! क्षत्रिय का यह अर्थ नही कि वह अपनी बुद्धि ही खो बैठे।"

सौम्या अभी तक चुपचाप बैठी माता पिता मे चल रहे विवाद को सुन रही थी। माँ को पिता की भर्त्सना करते देख, उससे चुप नही रहा गया। उसने कहा, "माँ ! एक हत्यारे की हत्या करना अनुचित अथवा मूर्खता कैसे हो गई ?"

"न्यायाधीश ने तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे दिया था। उस समय तुम निरुत्तर हो गई थी। अब मेरे साथ यह व्यर्थ की युक्ति क्यो कर रही हो ?"

"माँ ! मैं जब अपनी दुर्दशा देखती हूँ तो पागल हो जाती हूँ। मै जब पुष्यमित्र की देश मे मान-प्रतिष्ठा बढते देखती हूँ तो ईर्ष्या से जल-भुन जाती हूँ।"

"यह ईर्ष्या और द्वेष महा पतनकारक हैं। इसे किसी प्रकार श्लाघनीय नही कह सकते।"

"पर माँ ! मैं मानव हूँ। मानव होने के नाते ईर्ष्या, द्वेष इत्यादि भावो से रहित नही हो सकती।"

"देखो सौम्या ! तुमने जो कुछ किया, वह तो मृत्युदण्ड के योग्य ही था। तुम बच गईं तो केवल इसलिये कि अरुन्धति ने हम पर दया की। परन्तु तुम सदा उसकी दया की पात्र नही बन सकोगी। यदि तुम यह सरल सी बात, कि हत्या केवल तभी क्षम्य होती है जब वह लोक-हित मे हो, नही समझ सकती, तो भगवान् ही तुम्हारा रक्षक है।"

वीरभद्र अपनी भूल को समझ गया था। उसने कहा, "पद्मा ठीक कहती है। ईर्ष्या, द्वेष कुछ अच्छी भावनाएँ नही हैं। मैंने जो कुछ किया, अब पुन वैसा ही करने का साहस नही कर सकता।

"इस पर भी मैं यह समझता हूँ कि यदि वहाँ मृत्यु-दण्ड पा जाता तो इस पतन के कार्य को करने पर विवश तो नही होता।"

"यह तो एक सरल सी बात है आर्य ! यदि आप अपनी धमनियों में अभी भी क्षत्रिय रक्त का प्रवाह मानते हैं, तो आप यहाँ के महाराज के पास जाकर अपने वर्ण के अनुकूल कोई सेवा क्यों नहीं माँगते ? आपने भूमि माँगी, वह मिल गई। आप कुछ और माँगते, तो कदाचित् वह भी पा जाते।"

वीरभद्र अगले दिन विदर्भ के महामात्य राक्षस के सम्मुख जा उपस्थित हुआ। उसने अपनी पूर्ण कथा बताकर किसी क्षत्रियोचित सेवा-कार्य के लिये याचना की।

"तो तुम बृहद्रथ के श्वशुर हो ?"

"जी हाँ, उसकी तीन रानियाँ थी, जिनमे से मँझली रानी सौम्या मेरी कन्या थी।"

"और तुमने पुष्यमित्र की हत्या करने का षड्यन्त्र किया था ?"

"हाँ श्रीमान् ! मुझे अपनी कन्या के विधवा हो जाने का बहुत दु.ख था और उस दु.ख मे यह घृणित कार्य करने पर उद्यत हो गया था।"

"अब तुम पर दया कर तुम्हें देश निश्कासन की आज्ञा हो गई है ?"

"यह मुझ पर दया तो नहीं कही जा सकती। मेरी पत्नी पर महारानी अरुन्धती ने उसके सौभाग्य को अटूट रखने के लिये दया कर मेरे प्राण बचाये है।"

"तुम क्या कर सकते हो ?"

"मुझे बीस-वर्ष का सेना-कार्य का अनुभव है।"

राक्षस ने कुछ विचार कर कहा, "तुम एक सप्ताह के पश्चात् मिलना। तब तुमको कोई कार्य दिया जायेगा।"

राक्षस एक अति चतुर और सूझ-बूझ वाला व्यक्ति था। उसने वीरभद्र जैसे व्यक्ति को नौकर रखने का निश्चय तो उसकी कथा सुनकर ही कर लिया था। इस पर भी वह विचार करना चाहता था कि उसको किस कार्य पर नियुक्त किया जाय।

एक सप्ताह पश्चात् जब वीरभद्र पुन. राक्षस के सम्मुख उपस्थित हुआ

तो उसको बिना किसी प्रकार का कार्य-भार मांगे राज्य का सेवक नियुक्त कर दिया गया और एक सौ स्वर्ण मुद्रा उसका वार्षिक वेतन निर्धारित कर दिया गया ?

वीरभद्र ने पूछा, "मुझे क्या कार्य करना होगा ?"

"जहाँ रहते हो, वहाँ का पता लिखा दो। हमें जब किसी कार्य के लिए आवश्यकता होगी, तब बुला लेंगे। वेतन यदि चाहो तो अग्रिम ले सकते हो।"

इस आज्ञा को सुन, प्रसन्नवदन वीरभद्र घर चला आया। पद्मा और सौम्या का विचार था कि केवलमात्र उसके बृहद्रथ से सम्बन्ध के कारण ही उसको कार्य के बिना यह वेतन मिला है, जो किसी प्रकार भी अच्छी बात नहीं है।

वीरभद्र का प्रश्न था, "कैसे ?"

"देखिये, आपको पुष्यमित्र का विरोधी मान यह सेवा-कार्य मिला है। और आपसे आशा की जायगी कि उसके विरोध के लिये आप तत्पर रहें। यह तो एक प्रकार से आपको शूद्र का कार्य दिया गया है।"

"नहीं, ऐसा नहीं होगा। एक क्षत्रिय से क्षत्रिय के योग्य ही कार्य लिया जायेगा।"

वह अवसर भी बहुत शीघ्र आ गया, जबकि वीरभद्र से कार्य लिया गया।

: ५ :

भारत के सभी नरेशों को यह सूचना मिली कि मगधराज पुष्यमित्र अश्वमेध-यज्ञ करने जा रहे हैं। इस सूचना से वह विचार, जो महर्षि पतञ्जलि ने पुष्यमित्र के राज्याभिषेक के समय नरेशों को दिया था, विचार का विषय बन गया। भिन्न-भिन्न राज्यों में इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार होने लगा।

चिरकाल से भारतवर्ष में किसी ने अश्वमेध-यज्ञ नहीं किया था। जब से बौद्धों का प्राबल्य हुआ था, यज्ञ प्रायः बन्द कर दिये गये थे। अब

पुन एक वेदानुयायी राजा का राज्य हुआ और देश का शासन व्यवस्थित हो गया ।

महर्षि पतंजलि अश्वमेध-यज्ञ करने के पक्ष में थे । वे मानते थे कि यज्ञ तो एक विशेष प्रकार की विचारधारा का प्रतीक है, परन्तु यज्ञ का उद्देश्य तो तभी सिद्ध होगा, जब पुष्यमित्र चक्रवर्ती सम्राट बन जायेगा । अत अश्वमेध-यज्ञ ही शुभ समझा गया ।

बौद्धो ने इस यज्ञ के होने का समाचार सुना तो वे इसका प्रबल विरोध करने के लिए कटिबद्ध हो गये । महाप्रभु आत्मवत्स तो इन्द्रप्रस्थ में भाग हो चुके थे । कपोत-विहार गिरा कर समतल कर दिया गया था । बहुत से भिक्षु वहाँ से अन्यत्र विहारों में चले गये थे ।

अश्वमेध-यज्ञ की बात का पता चलते ही सब भिक्षु इसका विरोध करने के लिये देश भर मे फैल गये । उनका कहना था कि घोड़े की बलि होगी और उसका मांस पका कर खाया जायगा । इसका परिणाम यह हुआ कि पूर्ण देश मे हिंसा और अहिंसा पर विवाद चल पड़ा ।

मगध के मन्त्रिमण्डल ने यज्ञ के विषय मे यह घोषणा कर दी—'मगध-राज्य ने यवनो की सेना को देश से निकालकर और सहस्रो यवनों को वैदिक धर्म मे सम्मिलित कर यह सिद्ध कर दिया है कि यह राज्य देश, राष्ट्र और धर्म का नेता है । इस अश्वमेध-यज्ञ से हम इसी बात की प्रतिष्ठा करना चाहते है ।

"जो लोग यह समझते है कि मगध-राज्य ने देश, राष्ट्र तथा धर्म की सेवा की है, उनको इस यज्ञ मे हमारा समर्थन करने के लिये तैयार रहना चाहिये ।"

इस विज्ञप्ति ने बौद्धो का मुख बन्द कर दिया । जिनको वे यह कहने जाते थे कि यज्ञ मे हिसा होगी, उनको लोग कहते थे कि उनकी अहिसा का वे क्या करें, जो दुष्ट, विधर्मी, विदेशियो को देश मे अनाचार फैलाने से रोक नही सकती ।

बौद्धो के सिद्धान्त को स्वीकार न करते हुए भी कुछ शुंग-परिवार के

विरोधी नरेश बौद्धो की बात को मान, इस यज्ञ का बहिष्कार करने पर उद्यत हो गये।

इन विरोधियो मे आन्ध्र, विदर्भ और कलिंग मुख्य थे। प्राय सब स्थानो से पुष्यमित्र को यज्ञ करने के निश्चय पर बधाई-पत्र आये, परन्तु उपरोक्त राज्यो से कुछ उत्तर नही आया।

इस पर मगध के मन्त्रिमण्डल ने दूसरी विज्ञप्ति निकाल दी। उसमें उन्होंने स्पष्ट लिख दिया, "मगध राज्य के अश्वमेध-यज्ञ करने मे भारत देश के प्राय सभी राज्यों का समर्थन प्राप्त है। दो चार राज्यो ने इस विषय मे रुचि नही दिखाई। इस पर भी बहुसख्यक राज्यो ने प्रस्ताव का समर्थन किया है। अत यज्ञ होगा ही।

"इस अश्वमेध-यज्ञ का प्रारम्भ चैत्र-शुक्ला त्रयोदशी को होगा और पूर्णिमा को अश्व छोड दिया जायेगा। मगध के दस अनुभवी सैनिक अश्व-रक्षा के लिए साथ रहेंगे। हम आशा करते है कि जो नरेश हमारी योजना मे सम्मिलित होना चाहते है, वे अश्व को निर्विरोध अपने राज्य मे से निकल जाने देंगे और जिनको हमारा चक्रवर्ती होना स्वीकार नहीं, वे चाहे तो अश्व को पकड ले। इस पर हम यहाँ से उस अश्व को छुडाने के लिये सेना भेजेंगे।

"यदि हम इसमे सफल न हुए तो हम स्वय को चक्रवर्ती पद पर आसीन नही मानेंगे और उस राज्य को, जिसने हमारा अश्व पकड़ रखा होगा, चक्रवर्ती बनने मे सहयोग देंगे।"

इस विज्ञप्ति के उत्तर मे भारत भर के नरेश तथा उनके प्रतिनिधि यज्ञ मे सहयोग देने के लिये उद्यत हो गये।

पाटलिपुत्र मे गगा के किनारे, एक विशाल मण्डप बनाया गया। उस मण्डप मे, दस सहस्र प्रजा के प्रतिनिधियो के लिए बैठकर यज्ञ देखने को स्थान रखा गया। इसी मण्डप मे भारत के नरेशो अथवा उनके प्रतिनिधियो के बैठने के लिये पृथक् आसन बनाये गये। मण्डप के बीचो-बीच यज्ञ-वेदी बनी थी।

त्रयोदशी के दिन ब्रह्म-मुहूर्त्त मे पुष्यमित्र उस मण्डप मे पहुँच, यज-मान के आसन पर विराजमान हो गया। उसके बाई ओर उसकी धर्म-पत्नी, मगध की साम्राज्ञी, अरुन्धति बैठ गई। ब्रह्मा के स्थान पर महर्षि पतजलि विराजमान हो गये। आचार्य विश्वेश्वर, आचार्य आत्रेय, आचार्य कण्व और अनेक अन्य देशो के वेदवेत्ता-विद्वान यज्ञ कराने के लिये आ बैठे।

दो-दिन तक हवन होता रहा। मनो घी, सामग्री, समिधा तथा अन्य सुगन्वित द्रव्य होम किये गये। तीसरे दिन पूर्णिमा थी। उस दिन एक श्वेत निष्कलक अश्व का, यज्ञ-वेदी मे खडा कर, पूजन किया गया। तत्प-श्चात् अश्व को स्वर्ण, रजत तथा मणि-माणिक्यादि रत्नो से सुशोभित कर मध्याह्न के समय छोड दिया गया। अश्व के साथ दस वीर सैनिक अश्वो पर सवार, साथ-साथ चल पडे।

अश्व उत्तर दिशा को भेजा गया। भारत देश के प्राय सब राज्यो के प्रतिनिधि यज्ञ मे उपस्थित थे। केवल विदर्भ, आन्ध्र और कलिंग राज्यों ने अपने प्रतिनिधि नही भेजे थे।

नीरा मे जब सूचना मिली कि अश्व उत्तर की ओर गया है, तब यज्ञसेन ने राक्षस को बुलाकर इस परिस्थिति मे अपना व्यवहार निश्चित करने का यत्न किया।

"महामात्य!" यज्ञसेन का प्रश्न था, "हमको क्या करना चाहिये ?"

"देखिये महाराज! अश्व को पकडना और उसको अपने राज्य मे रोकने का अर्थ होगा कि हम, मगध से स्वय को अधिक बलशाली मान, चक्र-वर्ती पद पाने के अधिकारी है। इस चुनौती को स्वीकार कर मगध प्रबल सेना यहाँ भेज देगा। तदनन्तर युद्ध होगा। यदि मगध की विजय हुई तो मगध आपको राजगद्दी से उतार कर किसी अपने अनुकूल व्यक्ति को राज्य पर बैठा देगा और यदि हमारी विजय हुई तो मगध का राजा चक्र-वर्ती महाराज नही होगा। इस पर भी हम चक्रवर्ती पद तभी प्राप्त कर सकेंगे, जब हम अश्वमेध-यज्ञ कर भारत के अन्य राज्यो का समर्थन प्राप्त

कर लेगे ।"

"तुम क्या समझते हो कि हम मगध को परास्त नही कर सकते ?"

"महाराज ! हमारे पास कितनी सेना है ?"

"साठ सहस्र के लगभग है ।"

"मगध के पास इस समय पांच लक्ष चतुरगिणी सेना है ।"

"हमने सुना है कि आन्ध्र और कलिग भी मगध की श्रेष्ठता को नही मान रहे ।"

"यह बात सत्य है ।"

"तो क्या हम तीनो राज्य मिलकर मगध का विरोध नही कर सकते ?"

"कर सकते हैं, परन्तु मगध के साथ पच्चीस राज्य हैं । इस अवस्था मे मगध भी अपने साथियो को लेकर युद्ध मे उतर आयगा ।"

"और यदि हम अश्व को न रोके तो क्या होगा ?"

"इसका अभिप्राय यह होगा कि मगधराज का चक्रवर्ती होना हमे स्वीकार है । उस अवस्था मे हम धर्म से तीन बातो मे मगध से बँध जायेंगे । एक तो यह कि हमे अपनी सेना किसी भी समय-कुसमय मगध की सहायता के लिये भेजनी पडेगी । दूसरे विदेशी आक्रमण के समय हमारी सेना मगध की सेना के साथ मिल कर शत्रु से लडेगी और तीसरे हम स्वय को भारतवर्ष के राष्ट्र का अग मानेंगे, जिसके नेता होगे मगध-राज पुष्यमित्र ।"

"देखो महामात्य ! कुछ ऐसी बात करो, जिससे सांप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे ।"

राक्षस यह बालको की सी ईर्ष्या और द्वेष-भाव देखकर विस्मय मे डूब गया ।

: ६ :

विदर्भ के महामात्य राक्षस इस बात को समझ चुके थे कि देश मे एक राष्ट्र का होना अत्यावश्यक है । एक राष्ट्र स्थिर रखने के लिये दो उपाय थे । एक था भारत मे साम्राज्य स्थापित करना । इस अवस्था में सम्राट्

को न केवल राष्ट्रसम्बन्धी आज्ञाओं का पालन करना पड़ता, प्रत्युत धर्म-सम्बन्धी आज्ञाओं का भी पालन करना पड़ता। इसका उपाय महर्षि पतञ्जलि ने सम्मुख रखा था। चक्रवर्ती राज्य में राज्यान्तर्गत विषयों में चक्रवर्ती महाराज हस्तक्षेप नहीं करता। देश की रक्षा, धर्म की रक्षा और राष्ट्र की सुरक्षा ही चक्रवर्ती राज्य में कार्य होती है। यह इस राजा को पसन्द न था।

परन्तु यज्ञसेन हठी राजा था। वह भावनाओं से प्रभावित होकर ही अपने विचारों और कार्य का निश्चय करता था। जब से वह मगध-राज्य से स्वतन्त्र हुआ था, वह अपने राज्य-कार्य में बहुत सीमा तक सफल हो चुका था। उसके राज्य पर किसी पड़ोसी राज्य से आक्रमण नहीं हुआ था और न विदेशी यवन ही उसके राज्य तक पहुँच सके थे। इससे वह यह समझने लगा था कि उसके राज्य की भौगोलिक स्थिति और उसके अपने प्रबन्ध की कुशलता ही इसका कारण है। इससे उसके मस्तिष्क में कुछ सीमा तक अभिमान की मात्रा भी बढ़ गई थी।

एक दिन उसने राक्षस को बुला कर कहा, "कोई ऐसा व्यक्ति बनाओ जो पुष्यमित्र के यज्ञ के अश्व को पकड़कर छिपा सके और यह विदित न हो कि हमने उसे छिपा रखा है।"

"इससे क्या होगा?"

"इससे यह होगा कि यदि हमारी सेना दुर्बल सिद्ध हुई, तो हम कह देंगे कि हमारी जानकारी के बिना किसी अज्ञात व्यक्ति ने अश्व पकड़ लिया है और यदि हम मगध-सेना को अपने से दुर्बल पायेंगे तो उसको परास्त कर स्वयं चक्रवर्ती महाराज बनने का यत्न करेंगे।"

राक्षस इस महत्वाकांक्षा को सुन और उसकी पूर्ति का उपाय जान हँस पड़ा। उसने कहा, "ऐसा प्रबन्ध हो सकता है। आपको एक विकट युद्ध के लिये तैयार रहना चाहिये। कदाचित् वर्तमान मगध-सम्राट् बृहद्-वर्मन और बृहद्रथ की भाँति सरलचित्त नहीं है। वह अश्व के आपके राज्य में रुक जाने का उत्तरदायित्व आप पर डालेगा।"

"यह तो बाद मे देखा जायगा।"

छ: मास इधर-उधर भ्रमण के पश्चात् उस अश्व ने विदर्भ मे प्रवेश किया। विदर्भ से उसे आन्ध्र और तत्पश्चात् कलिंग जाना था।

कावेरी के दक्षिण राज्यो को अभी छोड दिया गया था। महर्षि पतजलि का विचार था कि उत्तरी भारत मे सगठन की आवश्यकता दक्षिण के राज्यो से अधिक है। अत कावेरी के दक्षिण राज्यो की ओर ध्यान नही दिया गया।

उत्तरी भारत के अन्य सब राज्यो ने अश्व को सुरक्षित अपने-अपने राज्य मे से निकल जाने दिया था। विदर्भ मे भी यह कई दिन तक भ्रमण करता रहा। प्रत्येक गाँव मे अश्व की रक्षा का प्रबन्ध होता था, परन्तु जब वह नीरा से पचास कोस के अन्तर पर रह गया तो एक रात वह लापता हो गया। प्रात काल अश्व के दस सरक्षको ने ढूंढना आरम्भ कर दिया। चार-पाँच दिन की खोज के पश्चात् भी जब अश्व नही मिला, तो इसकी सूचना पाटलिपुत्र भेज दी गई।

पाटलिपुत्र मे अश्व के लापता हो जाने की सूचना मिलते ही विदर्भ के राजा यज्ञसेन के पास चेतावनी भेज दी गई। इसमे लिखा गया, "यदि इस चेतावनी के मिलने के दस दिन के भीतर यज्ञ का अश्व उपस्थित नही किया गया तो विदर्भ राज्य की ईंट से ईंट बजा दी जायेगी।"

विदर्भ नरेश यज्ञसेन ने इस चुनौती का उत्तर इस प्रकार दिया—"यज्ञ के अश्व के विषय मे विदर्भ-राज्य कुछ नही जानता। वह अश्व हमारी सरक्षता मे नही था, अत उसको ढूंढने का कार्य हमारा नही है।

"इस अवस्था मे यदि एक भी मागधी सैनिक हमारे राज्य मे आया तो हम इसको युद्ध की घोषणा समझेंगे और उसका उचित उत्तर देंगे।"

इस उत्तर के पहुँचने पर, विदर्भ पर आक्रमण की तैयारी कर दी गई। तीन ओर से आक्रमण कर दिया गया। प्रत्येक सेना मे पचास-पचास सहस्र सैनिक थे।

सेना के विदर्भ राज्य मे प्रवेश करने से पूर्व विदर्भ के राजा यज्ञसेन

"यह बात नही है महाराज ! आप युद्ध की घोषणा कर दे और फिर देखें कि आपकी सेना और सेनापति क्या करते हैं ।"

"आप बताइये महामात्य ?"

"मगध की एक लक्ष पचास सहस्र सेना कल विदर्भ मे प्रवेश करने जा रही है । विदर्भराज आज विचार कर रहे है कि क्या करना चाहिये ! आपको तो आज से कई दिन पूर्व अपनी नीति का निर्धारण कर लेना चाहिये था ।"

"तो क्या यह महामात्य का कार्य नही है कि वह हमे समय पर सुझाव दे कि वर्तमान परिस्थिति मे हमे क्या करना चाहिये ?"

"मैंने तो महाराज ! समय पर अपना सुझाव दे दिया था । घोडे को लुप्त करने से पूर्व ही मैंने निवेदन कर दिया था कि मगध के पास पाँच लक्ष चतुरंगिणी सेना है । उसने अभी तो उस सेना का एक अशमात्र ही भेजा है । अब तो मगध मे यह मानापमान का प्रश्न बन गया है और यदि आवश्यकता पडी तो उनकी सम्पूर्ण सेना विदर्भ पर चढ आयेगी ।"

"तो हमारे महामात्य का यह विचार है कि हम विदर्भ पर आक्रमण करने वालो को घोडा वापस देकर, उनसे क्षमा-याचना कर लें ।"

"मैंने इस प्रकार की कोई बात नही कही । मेरा तो कहना यह है कि श्रीमान् यह देखना चाहते थे कि मागधी-सेना हमारी सेना से अधिक है अथवा नही ? सो श्रीमान् जान गये हैं । अत अब जो आज्ञा प्रसारित करना चाहे वह शीघ्र ही करवा दी जाय, जिससे हम लोग तदनुसार कार्य में अग्रसर हो सकें ।"

इस पर यज्ञसेन ने कहा, "मैं चाहता हूँ कि सेना का विरोध न किया जाय । उसको भीतर प्रविष्ट होने दिया जाय । जब तीनो सेनाये नीरा के चारो ओर एकत्रित हो जाये तो अपनी सेना लेकर, पीछे से आक्रमण कर दिया जाय । इधर नगर के द्वार बन्द कर दिये जायें ।

"यह चाल कितनी युक्ति-युक्त है इस विषय मे सेनापति ही बता सकते हैं । जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मुझको आज्ञा दे दी जाय । मैं तदनुसार ही

उसका पालन करूँगा ।" राक्षस का कथन था ।

"तो हमारी आज्ञा है कि अपनी सेना को तीन ऐसे स्थानों पर छिपा कर रख दो, जहाँ उनके होने की आशंका भी न हो । जब मागधी सेना सीमा से चल कर राजधानी के आगे और पार्श्व मे हो जाय, तब राजधानी के द्वार बन्द कर दिये जायं और तीनो ओर से अपनी सेना मागधी सैनिको पर आक्रमण कर दे ।'

सेनापति गम्भीर विचारो मे निमग्न था । महाराज ने प्रश्नभरी दृष्टि से उसकी ओर देखा तो उसने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा और उठ कर चलते हुए बोला, "महाराज की आज्ञा का यथावत् पालन किया जायेगा ।"

: ६ :

मागधी सैनिक पग-पग पर विदर्भ की सेना की ओर से विरोध की आशा करते थे । परन्तु उनके विस्मय का ठिकाना नही रहा, जब उनको किसी स्थान पर भी विरोध होता दिखाई नही दिया ।

सेनापति विद्रुम इस समर का संचालन कर रहा था । वह स्वयं उत्तर की ओर से आने वाली सेना के साथ था । इस पर भी वह तीनो ओर की सेना के समाचार प्राप्त कर, उनकी गतिविधि पर नियन्त्रण रख रहा था ।

तीन दिन की यात्रा मे तीनो सेनाएँ पचास कोस के लगभग राज्य मे घुस आई थी । अभी तक एक भी सैनिक उनके विरोध के लिये सम्मुख नही आया था । मागधी सैनिक भी उस गति से नही चल रहे थे, जिस गति से किसी समर के लिये सेनाएँ चला करती है । इसमे कारण यह था कि मगध की सेना विदर्भ को विजय करने नही, प्रत्युत यज्ञ के अश्व को ढूंढने आई थी । इसमे समय लग रहा था ।

विद्रुम दिन भर की खोज के पश्चात् सैनिक शिविर मे विश्राम कर रहा था । अन्य दो दिशाओ से सेना के बढने के समाचार आ रहे थे । इस समय एक सैनिक ने उसके सम्मुख उपस्थित हो कर कहा, "श्रीमान् ! एक युवक भेंट करना चाहता है ।"

"उसकी तलाशी ले कर, उसको भीतर आने दो ।"

एक स्वस्थ, मुन्दर युवक विद्रुम के सम्मुख खडा हो बोला, "मैं सेनापति महोदय से एकान्त मे बात करना चाहता हूँ।"

"ठीक है, बैठ जाओ।"

इसके पश्चात् सुरक्षा मे नियुक्त सैनिक खेमे से बाहर हो गये। एकान्त पा युवक ने कहा, "मैं महाराज यज्ञसेन के भाई का लडका हूँ। मेरा नाम माधवसेन है। मुझे विदर्भराज की नीति पसन्द नही। अत' मैं मगध की सहायता करना चाहता हूँ।"

"क्या सहायता कर सकते हो युवक!"

"मुझे यह विदित है कि अश्व का यज्ञ कहाँ पर छिपा कर रखा गया है। अत यदि मुझे अश्व को दिलाने का पुरस्कार मिले तो मैं बिना युद्ध के अश्व दिला सकता हूँ।"

"अश्व तो हम ढूंढ लेंगे। हम राज्य की पूर्ण प्रजा की नाक मे दम कर देंगे और अश्व को कही न कही से खोज लेंगे।"

"प्रजा को तग करने की क्या आवश्यकता है? वह तो निर्दोष है। इसमे आज्ञा तो महाराज यज्ञसेन की है और छिपा कर रखने वाला एक विशेष व्यक्ति है।"

"तुम इसके प्रतिकार मे क्या पुरस्कार चाहते हो?"

"अपने चाचा के पश्चात् यहाँ का राज्य।"

"परन्तु यज्ञसेन ने अभी तक हमसे युद्ध की घोषणा नही की। उसके सैनिको ने अभी तक हमारे सैनिकों का विरोध नही किया। अत धर्म के नियमो से वह हमारा शत्रु नही कहा जा सकता और इस कारण हम उसे पदच्युत् भी नही कर सकते।"

"परन्तु यह सब कुछ तो होने वाला है ही। कुछ ही दिनो मे दोनों सेनाओ मे घोर युद्ध होगा और कदाचित् उस युद्ध मे स्वय यज्ञसेन सेनाध्यक्ष का पद अपने हाथ मे ले ले।"

"जब ऐसा होगा, तभी तो हम तुम्हे, तुम्हारी सेवाओ के लिये पुरस्कृत कर सकेंगे।"

"अच्छी बात है, यदि तुम ऐसा कर सको तो मगध राज्य तुम्हारा राज्यारोहण स्वीकार कर लेगा।"

विद्रुम शत्रु के किसी भी व्यक्ति पर विश्वास नहीं कर सकता था। इस पर भी माधवसेन की बात की परीक्षा आवश्यक थी।

विद्रुम ने पूर्ण सेना मार्ग में ही छोड दी। सेना के दो विभाग, जिसमे दो सहस्र सैनिक थे, साथ लेकर उसने राजधानी को पूर्व और पश्चिम से घेर लिया। माधवसेन के कथनानुसार अन्तिम दिवस दुगुना मार्ग चल, सेना के साथ, यज्ञसेन की आशा से एक दिन पूर्व ही, वह राजधानी मे पहुँच गया। इससे वहाँ घबराहट फैल गई।

रात के समय जैसा कि माधवसेन से निश्चय हुआ था, पाँचसौ योद्धाओ को नगर के पूर्वी द्वार के पास छिपा कर रखा गया। एक अन्य पाँच सौ सैनिको की टुकडी, कुछ अन्तर पर पेडो के झुरमुट मे छिपा कर खडी कर दी गई और शेष सैनिको को ठीक समय पर आक्रमण करने के लिए तैयार रखा गया।

विद्रुम स्वय द्वार के समीप खडा द्वार खुलने की प्रतीक्षा कर रहा था। यह निश्चय था कि मध्यरात्रि के समय नगर का पूर्वी द्वार खुलेगा और खुलते ही मागधी सेना को द्वार मे घुस कर अधिकार कर लेना चाहिए।

योजनानुसार ठीक मध्यरात्रि के समय द्वार खुला और मगध के पाँच सौ सैनिक द्वार मे घुस गये और उन्होने द्वार पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् उस द्वार मे से शेष सैनिक नगर मे प्रविष्ट हो गये और पूर्ण नगर पर अधिकार कर लिया गया। विदर्भ की पूर्ण सेना तो, योजनानुसार मगध पर पीछे से आक्रमण करने के लिये, नगर से बीस कोस के अन्तर पर पडाव डाले पडी थी।

तत्पश्चात् राज्यप्रासाद पर आक्रमण कर दिया गया। यज्ञसेन और विदर्भ का सेनापति, दोनो राज्य-प्रासाद के सम्मुख लडते-लडते मारे गये। महामात्य राक्षस को बन्दी बना लिया गया और तदनन्तर युद्ध मे

यज्ञसेन की मृत्यु की घोषणा कर दी गई। इस घोषणा का परिणाम यह हुआ कि विदर्भ की सेना ने शस्त्र डाल दिये।

माधवसेन रात्रि के समय, पूर्वी द्वार पर गवाक्ष से द्वार खोल बाहर जाने लगा था कि मागधी सेना ने आक्रमण कर दिया। इस घमासान युद्ध में वह भी बन्दी बना लिया गया था।

७ :

यज्ञ के अश्व को वीरभद्र ने चुराया था और महामात्य की आज्ञा से राज्यप्रासाद के नीचे, एक गुफा में छिपा कर रखा हुआ था। स्वयं ही वह उस अश्व की देखभाल भी कर रहा था।

राक्षस की आज्ञा थी कि वीरभद्र अश्व को मगध सेना के हाथ में तब तक न दे, जब तक कि उसको उसके लिये स्वीकृति न दी जाय।

यदि वीरभद्र को, मागधी सेनाओं के नीरा पहुँचने से पूर्व, अश्व को नीरा से निकाल ले जाने की स्वीकृति दे दी जाती, तो मगधवालों को उसका ढूंढ निकालना कठिन हो जाता। कदाचित् राक्षस के मन में यह विचार भी था, परन्तु मगध-सेना के निर्धारित समय से पूर्व वहाँ पहुँच जाने पर, इस योजना में बाधा खड़ी हो गई और फिर उसी रात एक रहस्य-मय ढंग से पश्चिमी द्वार खुल जाने और मागधी सेना के नगर के भीतर घुस आने से राक्षस की योजना कार्यान्वित नहीं हो सकी।

नगर पर अधिकार होते ही नगर के द्वार बन्द कर दिये गये और माधवसेन तथा यज्ञ के अश्व की खोज होने लगी।

पूरे एक दिन तक बहुत ही गड़बड़ रही। माधवसेन, जो नगर के पूर्वी द्वार पर बंदी बना लिया गया था, अपना नाम बताये बिना बंदीगृह के संरक्षकों से कहता रहा कि उसको सेनापति विद्रुम से कार्य है और संर-क्षक उसकी बात का विश्वास न कर उसे बन्दी बनाये रहे।

जब विदर्भ की सेना ने शस्त्र डाल दिये और सेना को विघटित कर दिया गया तो राज्य-भर में घोषणा कर दी गई कि यज्ञ के अश्व का पता देने वाले का दस सहस्र स्वर्ण पुरस्कार में दिया जायेगा।

पूर्ण राज्य मे अश्व की खोज आरम्भ हो गई। दूसरे दिन माधवसेन ने वदीगृह के सरक्षक से कहा, "मुझको सेनापति विद्रुम से मिला दो। मैं उनको एक विशेष सूचना देना चाहता हूँ।"

सरक्षक एक साधारण सैनिक था और उसकी बुद्धि वहुत ही मोटी थी। उसने कहा, "तुम पर विश्वास नही किया जा सकता।"

"क्यो ?"

"तुम सन्देहात्मक परिस्थिति मे पकडे गये हो। तुमको न्यायाधीश के सम्मुख उपस्थित किया जायेगा।"

"तो कर दो, किसी के पास तो ले चलो। मैं एक अत्यावश्यक समाचार देना चाहता हूँ।"

"मेरी निन्दा करोगे न ? और क्या समाचार हो सकता है तुम्हारे पास ?"

"सेनापति विद्रुम से पता तो करो कि वे मुझसे मिलना चाहते हैं अथवा नही ? तुम स्वय ही न्यायाधीश क्यो वन रहे हो ?"

"तो तुम अपना नाम क्यो नही वताते ?"

"यदि मैं वता दूं तो वह नाम तुम सेनापति के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति को तो नही वताओगे ?"

"तुम क्या यज्ञसेन के पुत्र हो, जो अपना नाम इतना छिपाकर रख रहे हो ?"

माधवसेन को उस पर क्रोध आ रहा था। उसने कहा, "यज्ञसेन के पुत्र से भी अधिक।"

"ओह !" सरक्षक ने हँसते हुए कहा, "तो यज्ञसेन स्वय हो। ठीक है न ?"

"हाँ, अव तुम ठीक समझ गये हो।"

"पर मैं तो यह जानता हूँ कि यज्ञसेन की, पहली रातही लडते-लडते, मृत्यु हो गई थी। उसका तो कल दाह-सस्कार भी हो चुका है। दाह-सस्कार के समय उसकी रानियाँ भी उपस्थित थीं।"

"यही तो भूल हो रही है। देखो, तुम अपने सेनापति तक एक सूचना भेज दो कि एक बन्दी कहता है कि विदर्भ के राजा की अभी मृत्यु नहीं हुई है। वह बन्दी-गृह मे है और तुरन्त उनसे मिलना चाहता है।"

वह सरक्षक यह सुन कर खिलखिला कर हँस पड़ा और बोला, "मैं तुमको पागलखाने भिजवाने का प्रबन्ध किये देता हूँ।" इतना कह वह हँसता हुआ बन्दीगृह से बाहर चला गया। उसके मन मे यह विश्वास बैठ गया था कि यह बन्दी पागल हो गया है।

वह बन्दीगृह से बाहर निकला ही था कि सेनापति विद्रुम सेना-शिविर मे आ पहुँचा। बन्दीगृह के सरक्षक ने विचार किया कि वह सेनापति को सूचना दे दे कि एक बदी का मस्तिष्क खराब हो गया है, जो अपने को विदर्भ का राजा कहता है। आते ही सेनापति के पास पहुँचा, और नमस्कार करके बोला, "श्रीमान्! मेरे बन्दीगृह मे आक्रमण की रात्रि मे एक युवक को पकड़कर लाया गया था। वह कहता है कि विदर्भ का महाराज यज्ञ-सेन वह ही है। श्रीमान् मेरा अनुमान है कि वह पागल हो गया है।"

विद्रुम भी उस बदी के स्वय को यज्ञसेन घोषित करने पर मुस्कराया और बोला, "उसके हाथ-पाँव बाँधकर मेरे पास ले आओ। भला हम भी तो देखे कि यह नया यज्ञसेन कौन उत्पन्न हो गया है।"

जब माधवसेन को विद्रुम के सम्मुख उपस्थित किया गया तो वह खिल-खिला कर हँस पड़ा। उसने कहा, "हम दो दिन से तुम्हारी खोज कर रहे हैं। तुम्हे यहाँ कौन ले आया है?"

"मैंने उस रात द्वार खोलने के लिये एक षड्यन्त्र किया था। महाराज के हस्ताक्षरो से एक आज्ञा-पत्र तैयार कर मैं द्वारपाल के पास लाया। उस आज्ञा-पत्र मे लिखा था, पत्र-वाहक विश्वस्त गुप्तचर है। इसको हम मागधी-सेना का समाचार जानने के लिये भेज रहे है। इसको जाने दिया जाय।

"यह आज्ञा पा द्वारपाल ने खिड़की खोल दी, परन्तु मैं अपने साथ अश्व लाया था। वह अश्व खिड़की मे से नही निकल सका। अत पूर्ण

द्वार खोलना पड़ा। ज्योंही द्वार खुला मागधी सेना भीतर घुस आई। मैं बाहर नहीं निकल सका। आपकी सेना द्वारा ढकेला हुआ मैं पुन: नगर में पहुँच गया। तत्पश्चात् मुझे विदर्भ का सैनिक समझ बन्दी बना लिया गया। मैं तभी से यत्न कर रहा हूँ कि आपसे मिलने का अवसर मिले, परन्तु यह सरक्षक तो न्यायाधीश ही बन बैठा। मैं सत्य बोलता हूँ अथवा झूँठ, मुझको आपसे कोई कार्य है अथवा नहीं, मैं यज्ञसेन हूँ अथवा कोई अन्य, यह स्वयं ही निर्णय कर उस पर दण्ड भी घोषित कर देता है।

"आज मैंने इसको कहा कि मैं विदर्भ का राजा हूँ, तो इसने निर्णय सुना दिया कि मैं पागल हो गया हूँ।"

विद्रुम माधवसेन की बात पर बहुत हँसा। उसने सैनिक को आज्ञा दी कि वह माधवसेन के हाथ खोल दे। जब माधवसेन स्वतन्त्र हो गया तो सेनापति ने कहा, "हमे अभी तक यज्ञ का अश्व नहीं मिला।"

"इसीलिए तो मैं आपसे मिलना चाहता था। परन्तु आपके मूर्ख वन्दी-गृह सरक्षक ने मुझको आपसे दूर रखने के कारण दो मूल्यवान दिवस गँवा दिये हैं। मैं जानता हूँ कि अश्व कहाँ था। यदि वह अब तक मार नहीं डाला गया, तो आपको वहाँ पर मिल जायेगा।"

"उसके मारे जाने की भी सम्भावना है क्या ?"

"हाँ, वह अश्व एक ऐसे व्यक्ति के सरक्षण मे रखा गया है, जिसकी लड़की मगधराज से अत्यन्त द्वेष रखती है।"

"कौन है वह ?"

"वीरभद्र और उसकी लड़की सौम्या।"

इस समाचार से तो विद्रुम घबरा उठा। उसने तुरन्त पचास सैनिक माधवसेन के साथ कर कहा, "इनके साथ जाओ और अश्व को छुड़ा कर ले आओ। यदि कोई बाधा उपस्थित करे तो उसको मृत्यु के घाट उतार देना।"

: ८ :

वीरभद्र ने जब अपनी पत्नी को बताया कि उसको बिना किसी कार्य

—१४

के विदर्भ राज्य मे एक सौ स्वर्ण वार्षिक पर नौकर रख लिया गया है तो उसकी पत्नी पद्मा ने आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछ लिया, "यह तो बात कुछ समझ मे नही आई।"

"मैने तो कुछ कार्य मांगा था, परन्तु महामात्य मेरा परिचय प्राप्त कर बोले एक सप्ताह बाद आना। मै एक सप्ताह के पश्चात् गया तो उन्होने कहा तुम बूढे हो गये हो, सेना मे कार्य नही कर सकोगे। इस पर भी राज्य तुमसे कुछ न कुछ कार्य लेगा और अभी तुमको एक सौ स्वर्ण वार्षिक वेतन मिलेगा। जब कोई कार्य करने के लिए दिया जायगा तो उसके लिये विशेष पुरस्कार भी मिलेगा।"

"देखिये आर्य! आप एक क्षत्रिय का कार्य मांगने के लिये गये थे, किन्तु यह तो एक प्रतिहार का कार्य मिल गया है?"

"कैसे?"

"अब आप विदर्भ राज्य के सेवक है। कार्य कुछ निश्चित नही। जब भी, जो कुछ भी महाराज के मन मे आयेगा, वह करने के लिए आप से कह दिया जायगा। कार्य होने पर पुरस्कार मिल जाया करेगा।"

"तो क्या यह प्रतिहारो का कार्य है? खैर, जो कुछ भी है, थोड़े ही दिनो मे सब ठीक हो जायेगा।"

परन्तु ठीक नही हुआ। एक दिन महामात्य राक्षस ने वीरभद्र को बुलाकर कहा, "वीर सैनिक! महाराज तुमसे एक कार्य कराना चाहते है?'

"आज्ञा कीजिये श्रीमान्!"

"पुष्यमित्र ने अश्वमेध-यज्ञ रचाया है। यज्ञ का अश्व देश-देशान्तर का भ्रमण करता हुआ हमारे राज्य मे आ पहुँचा है। महाराज का विचार है कि अश्व को चुरा कर छिपा लिया जाय।

"इस कारण हमारा विचार है कि तुम पचास सैनिको को साथ लेकर यह कार्य करो। अश्व को छिपाने के लिए स्थान हम बता देंगे। उन पचास सैनिको की सहायता से तुम उस स्थान की रक्षा करना। इस कार्य को सफलतापूर्वक करने के लिए तुम्हे भारी पुरस्कार दिया जायेगा।"

वीरभद्र इसको राजनीति समझता था और अपने स्वामी के कार्य का उद्देश्य जाने बिना, वह कार्य करने के लिए तैयार हो गया।

एक बात उसके मन मे संशय उत्पन्न कर रही थी। वह थी अश्व का चोरी करना और उसको छिपा कर रखना। यज्ञ के अश्व को रोकने की सामर्थ्य हो तो फिर लुकाव-छिपाव की आवश्यकता नही और यदि सामर्थ्य न हो तो फिर यज्ञ के अश्व को चुराना अधर्म हो जायेगा।

परन्तु यह विचार कर कि एक सैनिक को अपने अधिकारी की आज्ञा का पालन करना चाहिये, उसमे मीन-मेख निकालना उसका कर्तव्य नही है, धर्माधर्म का उत्तरदायित्व आज्ञा देने वाले पर है, वह एक सैनिक पर नही हो सकता।

अत. जब अश्व राजधानी से कुछ अन्तर पर रह गया तो रात के समय उसे वीरभद्र के साथी पकड कर ले गये। अश्व के सरक्षक इतने लम्बे-चौडे भ्रमण मे सतत् विरोध के अभाव मे निश्चिन्त हो गये थे। विदर्भ मे भी जब किसी प्रकार का विरोध नही दिखाई दिया तो संरक्षक अश्व को खुला छोड आनन्द मे सो रहे थे।

वीरभद्र और विदर्भ के सैनिक अश्व को रात ही रात मे राजधानी मे ले आये और उसको राज्यप्रासाद के नीचे एक गुफा मे, जिसका द्वार गुप्त स्थान पर था, ले जाकर रख दिया गया।

यह सब कार्य इतनी चतुराई से किया गया कि संरक्षक यज्ञ के अश्व के खुरचिह्न भी नही पा सके। साथ ही यह कार्य विदर्भ की जनता से भी गुप्त रखा गया।

अश्व की चोरी करने के अगले दिन जब वीरभद्र घर पर आया तो पद्मा ने उसके पहली रात घर से बाहर रहने का कारण पूछा। वीरभद्र अपना कार्य किसी को भी बताना नही चाहता था। इस कारण उसने कह दिया, "राज्य-कार्य से गया था।"

"तो राज्य ने कुछ कार्य आपके योग्य समझा है ?"

"हाँ, तभी तो करने के लिए दिया है। कार्य के समाप्त होने पर

भारी पुरस्कार की आशा दिलाई है।"

"तब तो हमारा भाग्य-चक्र घूम गया समझना चाहिये ?"

"हाँ, कुछ ऐसा ही प्रतीत होता है।"

पद्मा तो चुप कर रही, परन्तु उसकी लड़की सौम्या, जो इस वार्तालाप को सुन रही थी, इस समय मुस्करा रही थी। वीरभद्र को उसके मुस्कराने पर विस्मय हुआ था। उस दिन विश्राम कर वीरभद्र जब अश्व की रक्षा का प्रबन्ध देखने के लिए जाने लगा तो सौम्या ने उसको अकेले देख पूछ लिया, "पिता जी! कब तक इस पर चौकीदारी करते रहेंगे ?"

"किस पर बेटी ?"

"यज्ञ के अश्व पर।"

वीरभद्र इस गुप्त रहस्य का उद्घाटन सौम्या के मुख से सुन, भौचक्का हो उसका मुख देखता रह गया। इस पर सौम्या ने हँसते हुए कहा, "मुझको विश्वस्त सूत्र से ज्ञात हुआ है कि महाराज आपको अश्व चुराने और सुरक्षा से छिपाकर रखने का दस सहस्र पुरस्कार देंगे।"

'मैं भी तो यही जानना चाहता हूँ कि वह विश्वस्त सूत्र कहाँ है ? यह बात इतनी गुप्त रखी गई है कि इसका तुमको ज्ञान हो जाना आश्चर्य की बात है।"

"आपको आज्ञा देने वाले को और आपको तथा आपके साथियो को तो इस बात का ज्ञान है ही। जब कोई रहस्य की बात इतने व्यक्तियो को विदित हो जाती है तो वह फिर छिपी नही रह सकती। इसीलिये कह रही हूँ कि इसको समाप्त कर दो। न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी।

"क्या मतलब है तुम्हारा ? किसको समाप्त कर दूँ ?"

"देखिये पिताजी! यह अश्व लापता हो गया है। इसके लापता होने की सूचना पाटलिपुत्र पहुँची तो दल के दल सैनिक विदर्भ पर उमड़ आयेंगे। सम्भव तो यह है कि यज्ञसेन वहाँ की टिड्डी-दल के समान सेना को देखकर अपनी पराजय स्वीकार कर ले और अश्व वापस कर दे। यह भी हो सकता है कि यज्ञसेन युद्ध करे और परास्त हो मारा जाय। दोनो अव-

स्थाओं मे आपका पुरस्कार एक कल्पना-मात्र रह जायगा।

"मेरी सम्मति यह है कि अश्व की हत्या कर दी जाय। इसकी सूचना विदर्भराज-को पहुँचा कर पुरस्कार प्राप्त कर लिया जाय। पीछे विदर्भ का यज्ञसेन चक्रवर्ती राजा हो अथवा मगध का पुष्यमित्र, हमे इससे क्या ? हम तो पुरस्कार पा ही जायेंगे।"

"देखो सौम्या ! यज्ञ का अश्व मैंने अपने लाभ अथवा हानि के लिए नही पकडा है। मैं विदर्भ का सेवक हूँ और उसकी आज्ञा से अश्व को पकड कर लाया हूँ। यह उसका कार्य है कि वह उसको रखे अथवा मरवा डाले।"

"यह ठीक है पिताजी ! मैं आपकी बात समझती हूँ। परन्तु आपको यह विदित होना चाहिए कि वह कार्य किसी अन्य सैनिक को न देकर आपको ही क्यो दिया गया है ? क्या इसमे कुछ भी कारण नही ? मैं समझती हूँ कि हमारा मगध-राज्य से पूर्व सम्बन्ध जानकर ही हमको यह कार्य करने के लिए कहा गया है। महाराज यज्ञसेन और महामात्य राक्षस जानते है कि हम इस विषय मे स्वय अपने मन की अवस्था के कारण भी रुचि रखते है।"

"यह तुम कैसे जानती हो ?"

"कैसे भी सही, किन्तु यह ठीक नही है क्या ?"

"मैं नही जानता। मुझको आज्ञा मिली है कि मैं अश्व को चुराकर ले आऊँ। मैं ले आया। मुझको आज्ञा हुई कि मैं उसकी रक्षा करूँ, वह कर रहा हूँ। जब मुझको आज्ञा मिलेगी कि उसकी हत्या कर दी जाय, तो कर दूँगा।"

"तो आज्ञा मिलनी चाहिये ? ठीक है, एक व्यक्ति, जो जीवन भर दूसरो की सेवा करता रहा है, वह सेवा-कार्य से आगे नही देख सकता।"

"पर मैं तो देख सकता हूँ। यदि मैं सेवक न होता और स्वतन्त्र होने पर भी अश्व को रोक रखने की शक्ति रखता, तो यज्ञ के इस अश्व को कभी न रोकता।"

"क्यों, पुष्यमित्र जैसे व्यक्ति को चक्रवर्ती बनते देख, आपका मन नहीं होता क्या ?"

"यदि वह चक्रवर्ती न बन सके तो क्या मैं चक्रवर्ती बन जाऊँगा। देखो सौम्या ! मैं इस मन को पालता और वह भी चोरी-चोरी, पसन्द नहीं करता। यह पाप है। किसी भी मन में निज पालना हमारा काम नहीं है।"

"महाराज यज्ञसेन का भी नहीं ?"

"यज्ञसेन का कार्य हो जाता है, यदि वह स्वयं चक्रवर्ती राजा बनने की अभिलाषा, सामर्थ्य और अवसर रखता हो। अन्यथा नहीं।"

६

वीरभद्र के विस्मय का ठिकाना नहीं रहा, जब उसको विदित हुआ कि महाराज यज्ञसेन ने उसको बुलाया है। अभी तक तो महाराज की आज्ञा महामन्त्री राक्षस के द्वारा ही मिला करती थी। आज जब वह गुफा-द्वार पर अश्व की सुरक्षा का प्रबन्ध देख रहा था तो महाराज के प्रासाद का एक प्रतिहार उसको बुलाने वहाँ पहुँच गया और पूछने लगा, "वीरभद्र कौन है ?"

"मैं हूँ। क्या बात है ?"

"महाराज बुलाते हैं।"

"कौन महाराज ?"

"विदर्भ के महाराज यज्ञसेन।"

"चलो।"

वीरभद्र उसके साथ राज्यप्रासाद के मुख्य द्वार में से होता हुआ, महाराज के सम्मुख जा उपस्थित हुआ। यज्ञसेन ने उसको सिर से पाँव तक देखकर पूछा, "तुम वीरभद्र हो ?"

"जी महाराज ! सेवक का यही नाम है।"

"तुम बृहद्रथ के श्वसुर हो ?"

"हाँ महाराज ! दुर्भाग्य से मैं उसका श्वसुर था। अब मेरी लड़की

विधवा है और मेरे पास ही रहती है।"

"तुमने पुष्यमित्र की हत्या का यत्न किया था ?"

"हां, श्रीमान् !"

"देखो, हमने तुम्हे एक काम सौंपा है। तुमको पुष्यमित्र के यज्ञ के अश्व की रक्षा और उसको छिपाकर रखने का कार्य दिया गया है।"

"अपनी पूर्ण सामर्थ्य से उस आज्ञा का पालन कर रहा हूं, महाराज !"

"उसके विषय मे हमारी यह आज्ञा है कि यदि युद्ध मे हमारी पराजय हुई तो अश्व उनके हाथ मे नही जाना चाहिये।"

"श्रीमान् की पराजय की अवस्था मे सेवक का शव भी रणभूमि मे ही मिलेगा, महाराज !"

"परन्तु हम यह नही चाहते। हम चाहते है कि जब तुमको विश्वास हो जाय कि हमारी पराजय होगी ही, तो अश्व को उसी गुफा मे निर्वन्ध्या नदी के किनारे ले जाकर, उसके टुकडे-टुकडे कर तुम नदी मे बहा देना।"

वीरभद्र इस आज्ञा को सुन अवाक् खडा रह गया। यज्ञसेन ने उसे चुप देख समझा कि वह यह कार्य कर देगा। इस पर उसने पुन कहा, "दस सहस्र स्वर्ण इस कार्य के पुरस्कारस्वरूप तुम्हे महामात्य की ओर से यथा समय मिल जायेगा।"

इतना कहकर महाराज यज्ञसेन उठ खडे हुए और वीरभद्र अपने मन मे एक विशेष प्रकार की चंचलता अनुभव करता हुआ वहां से चला आया। वह इस कार्य को धर्मविपरीत समझता था। यज्ञ का अश्व तो किसी का भी शत्रु नही था। शत्रु तो पुष्यमित्र था। यदि पुष्यमित्र को परास्त नही किया जाता तो यज्ञ के अश्व की हत्या से वह कैसे परास्त हो जायेगा। अश्व तो एक सकेत मात्र था।

वह वहां से अपने घर पहुंचा तो पद्मा और सौम्या मे विवाद चल रहा था। पद्मा को सौम्या ने, वीरभद्र को मिले कार्य का विवरण सुना दिया था और पद्मा को यह कार्य पसन्द नही आया था। वह समझती थी यह कार्य क्षत्रियोचित नही है। सौम्या अपनी मां को समझा रही थी कि कार्य

भले ही अच्छा न हो, परन्तु इससे उसके पिताजी को बहुत बड़ा पुरस्कार मिलेगा।

"उस पुरस्कार का क्या करेंगे ? यदि हम अपने क्षत्रिय धर्म से ही पतित हो गये तो ?"

"इस कार्य से हम पतित क्यो होंगे ?"

"एक वीर क्षत्रिय का यह कर्तव्य नहीं है कि वह चोरी करे और फिर उस चोरी के माल को छिपाकर रखे।"

"परन्तु यह तो महाराज की ओर से हो रहा है। चोर हैं तो वे हैं, हम तो वेतन-भोगी सैनिक होने के कारण उनकी आज्ञा का पालन कर रहे हैं, जो हमारा कर्तव्य है।"

इस समय वीरभद्र आ गया। उसके आते ही पद्मा ने कहा, "मैंने आपको पहले ही कह दिया था कि आपको एक प्रतिहार का कार्य मिला है। अब आपकी समझ मे आया है न ?"

"हाँ पद्मा ! तुम सत्य ही कहती थी। मुझे चोरी करने के लिए कहा गया। पश्चात् चोरी के माल की रक्षा करने के लिये और अब एक विशेष परिस्थिति मे चोरी के माल को नष्ट कर देने का आदेश मिल गया है।"

इस पर वीरभद्र ने वह आदेश, जो यज्ञसेन ने उसको दिया था, सुना दिया। यह सुनकर तो पद्मा भी अवाक् बैठी रह गई। किन्तु सौम्या यह सुन प्रसन्नता से भर कर बोली, "तो आप पुरस्कार ले आइये। आज ही महामात्य से मिल लीजिये।"

"मैं इस कार्य का पुरस्कार लेने नही जाऊँगा। देखो सौम्या ! मैं अभी इस कार्य के लिए मन को तैयार भी नही कर सका। जब अश्व की हत्या करने का निश्चय कर लूंगा, तब पुरस्कार के विषय मे भी विचार कर लूंगा।"

"परन्तु आप यह क्यो नहीं करेंगे ?"

"यह तो एक बन्दी को बंदीगृह मे डाल कर, उसको मार डालने के समान है। यह कार्य एक क्षत्रिय का नही। यह तो एक हत्यारे का काम है। मैं हत्यारा नही हूँ।"

"एक समय तो आप पुष्यमित्र की हत्या करने के लिए तैयार हो गये थे ?"

"हाँ, परन्तु पुष्यमित्र बंदी नही था। वह असावधान अवश्य था और उसको सावधान करना मेरा काम नहीं था। अब की हत्या तो भीरुता है, जो कदाचित् मैं नही कर सकूँगा।"

"परन्तु इस आज्ञा-उल्लघन से तो आपकी हत्या हो सकती है।"

"मैंने अभी निश्चय नही किया। जब निश्चय करूँगा तो इस दण्ड पर भी विचार कर लूंगा।"

"कब तक निश्चय कर लेंगे आप ?"

"सौम्या !" वीरभद्र के मन मे एक सन्देह उत्पन्न हो गया था, "तुम ऐसी बातें कर रही हो, जैसे यह आज्ञा देने वाली तुम ही हो।"

"नही पिताजी ! मैं तो नही हूँ, इस पर भी मै उस व्यक्ति के मन की बात जानती हूँ, जिसने यह आज्ञा दी है।"

"और तुम्हारा उस व्यक्ति से क्या सम्बन्ध है ?" वीरभद्र का हाथ अनायास ही अपनी खड्ग के मूठ पर चला गया।

"मै मगध-राज्य की उत्तराधिकारिणी हूँ। मेरी और यज्ञसेन की सधि हो चुकी है। हम दोनो पुष्यमित्र को नीचा दिखाने की योजना बना रहे है।"

"परन्तु सौम्या !" वीरभद्र के मन मे जिस बात का सन्देह हुआ था, वह मिट गया और अपना हाथ खड्ग की मूठ से हटाकर उसने कहा, "यह तो सरासर हारने की योजना है।"

"नही पिताजी ! हमने पूर्ण योजना के प्रत्येक पग पर विचार कर लिया है। देखिये, मगध-सेना बढती हुई चली आ रही है। बिना विरोध यह राजधानी के द्वार तक आने दी जायेगी और वहां नगर के बाहर खाई मे सब भर दी जायेगी।"

"ओह ! अब तो हमारी सौम्या सेनापति की भाँति बाते करने लगी है। देखो सौम्या, यदि यह करना है और ऐसा करने की सामर्थ्य है तो

अश्व को चोरी कर छिपाने की आवश्यकता नहीं थी और फिर उसको अभी मार देने की बात भी व्यर्थ है।"

"जहां तक चोरी करने की बात है, यह नीति है। हम मगध-सेना को परेशान करना चाहते हैं। जहां तक अश्व की हत्या का प्रश्न है, वह तो पराजय के समय ही होगा। हम अपने पराजित होने के पश्चात् भी मगध को परेशान करना अपना धर्म समझते हैं।"

वीरभद्र कुछ बोला नहीं। उसने अपने मन में विचार किया कि अश्व को छिपाकर रखना तो किसी प्रकार भी अनीति नहीं कही जा सकती। हां, हत्या की बात उसके मन में नहीं बैठी। इस पर भी वह चुप था।

एक दिन वह महामात्य राक्षस से मिलने के लिए गया। वह चाहता था कि अश्व की रक्षा के विषय में अपने प्रबन्ध का उल्लेख कर दे। प्रबन्ध इतना सुरक्षापूर्ण था कि पूर्ण नगर के आग में भस्म हो जाने पर भी अश्व को आंच नहीं आ सकती थी।

राक्षस ने वीरभद्र को आया देखा तो उसको पृथक् आगार में ले जाकर पूछ लिया, "पुरस्कार लेने आये हो क्या ?"

"पुरस्कार तो मिलेगा ही, परन्तु अभी कार्य समाप्त नहीं हुआ।"

"हम तुम्हारे प्रबन्ध से सर्वथा सन्तुष्ट हैं। इस कारण तुम्हारा पुरस्कार तुमको देते हैं। इस विषय में इतनी आज्ञा और है कि यह अश्व तुमको उसके हाथ में देना होगा, जिसके पास उसे प्राप्त करने के लिए हमारे हस्ताक्षरों से अंकित आदेश-पत्र होगा।"

इस आज्ञा को सुन, वीरभद्र का चित्त कुछ हल्का हो गया। वह समझ गया कि अब अश्व का हत्यारा, वह नहीं होगा। कौन उसकी हत्या करेगा, यह उसके जानने की बात नहीं है।

१०

इसके पश्चात् जब भी सौम्या और वीरभद्र का साक्षात्कार होता, सौम्या मुस्करा देती थी। यह मुस्कराहट वीरभद्र को तनिक भी पसन्द नहीं थी, परन्तु वह शान्त रहता था। सौम्या ने उसको बताया था कि

उसकी यज्ञसेन से संधि हो गई है। अत अब वह उसके स्वामी के समान ही पदवी वाली थी। इस कारण वह चुप था।

समय व्यतीत होता गया। मागधी सेनाएँ विदर्भ मे राजधानी की ओर बढती चली आ रही थी। राजधानी मे इससे हलचल मच रही थी। जहाँ जन-साधारण दूसरे देश की सेनाओ को वे रोक-टोक चले आते देख भय-भीत था, वहाँ सैनिको का राजधानी मे जमाव बढता जा रहा था। लोग इससे भी सुख का अनुभव नही कर रहे थे। नित्य अनेक स्थानो पर नागरिको एव सैनिको मे झगडे होते थे।

इस दुर्व्यवस्था को राज्य-परिवार के अन्य लोग भी देख रहे थे। यज्ञसेन का एक बडा भाई था। नाम था भद्रसेन। वह रहता तो छोटे भाई के साथ ही था, परन्तु राज्य-कार्य मे वह किसी प्रकार का हस्तक्षेप नही करता था। उससे परिचित लोग जानते थे कि वह साधु-स्वभाव का व्यक्ति है।

जब नागरिको की चचलता बढने लगी तो उसने भी इन समाचारो को सुना और उनका कारण जानकर तो वह विक्षुब्ध हो उठा। एक दिन यज्ञसेन के सम्मुख जा, उसने पूछा, "यज्ञसेन! यह क्या हो रहा है?"

"क्या हो रहा है भैया?"

"सुना है तुमने मगध-राज्य से आया हुआ यज्ञ का अश्व पकड लिया है?"

"नही भैया! मैने नही पकडा है। सुना है कि वह हमारे राज्य मे पकडा गया है। अभी तक पता नही चला है कि किसने उसे पकडा है।"

"यह तुम कहते हो! क्या यह तुम्हारा कर्तव्य नही था कि तुम उसकी रक्षा करते?"

"मेरा कर्तव्य कैसे हो गया?"

"वह अश्व एक प्रकार की चुनौती थी। उसका अभिप्राय था कि मगधराज पुष्यमित्र चक्रवर्ती सम्राट् की पदवी प्राप्त कर रहा है और तुमको इसमे आपत्ति है अथवा नही? अब तो यह समझा जायेगा कि तुम्हारे

ज्ञान के विना, तुम्हारी प्रजा ने मगध को चुनौती दी है। वह अज्ञात वीर, मगधराज के चक्रवर्ती होने मे, आपत्ति करता है, परन्तु उसमे साहस नही कि वह डट कर मगध का विरोध कर सके। मगध के क्रोध का फल तुमको सहन करना पडेगा।"

"भैया! मैं मगध-राज्य का चौकीदार नही कि उनके घोडे, कुत्तो की देखभाल करता फिरूँ। उसके सरक्षको को मैंने यहाँ आने से रोका नहीं। इस पर भी यदि उन्होने अपना कर्तव्य-पालन नही किया तो मैं दोषी नही हो सकता।

"हाँ, यदि उनकी सेना ने मेरे एक भी नागरिक पर अत्याचार किया तो लोहे से लोहा बजेगा और फिर ब्राह्मण कुमार को पता चलेगा कि राज्य-कार्य क्षत्रियो का कार्य है, ब्राह्मणो का नही।"

"तुम कुछ मूर्ख होते जाते हो।" भद्रसेन ने माथे पर त्योरी चढाकर कहा, "यदि तुम इस अश्व को ढूंढकर उनको वापस नही करते तो उनकी सेना को तुम्हारे राज्य मे आकर अश्व ढूंढने का अधिकार हो जाता है। जब उनकी सेनाएँ यहाँ आयेंगी तो युद्ध होगा। यह अकारण ही तुम युद्ध मोल ले रहे हो। तुम्हारे अपने सैनिक भी तुम्हारी प्रजा पर अत्याचार कर रहे हैं, तो दूसरे राज्य के सैनिक क्या कुछ नही करेंगे?"

"मै इस विषय मे कुछ नही कर सकता।"

"यज्ञसेन! तुम भूल कर रहे हो। इसमे तुमको लज्जित होना पडेगा।"

"भैया! आप भगवदभजन कीजिये। राजनीति आपका कार्य नही है।"

भद्रसेन का पुत्र माधवसेन भी यह वार्त्तालाप सुन रहा था। जब पिता-पुत्र अपने आगार मे पहुँचे तो माधवसेन ने अपनी सूचना सुना दी। उसने कहा, "पिता जी! वास्तविक बात यह है कि अश्व की चोरी महाराज की अनुमति से ही हुई है। जिस व्यक्ति ने उस अश्व को चुराया है, वह मगधाधिपति से द्वेष रखता है। इस कारण ही वह उस प्रकार का घृणित कार्य करने के लिए तैयार हो गया है। न केवल यही कि अश्व को चुराकर छिपाकर रखा गया है, प्रत्युत उसको यह आदेश भी है कि

कहीं विदर्भ की पराजय हुई, तो अश्व को मार, कर निर्विन्ध्या नदी में वहा दिया जाय।"

"तो यज्ञसेन इतना दुष्ट हो गया है ?"

"पिताजी ! बृहद्रथ की विधवा रानी सौम्या नित्य महाराज से मिलने आती है और इस पूर्ण योजना मे उसकी सम्मति है। वह यह कह रही है कि यदि एक वार मगध की सेना को यहाँ पराजय मिल गई, तो वह मगध-राज की पूर्ण बौद्ध-जनता को विद्रोह के लिए तैयार कर लेगी।

"केवल यही नही, प्रत्युत् आन्ध्र और कलिंग राज्यो ने भी यह वचन दिया है कि यदि मगध को पहली पराजय विदर्भ दे सका तो पीछे वे भी उससे युद्ध करने के लिये तैयार हो जायेंगे।"

"इससे क्या होगा ?"

"होगा यह कि पहले मगध का राज्य बृहद्रथ की विधवा को दिलवा दिया जायेगा और तत्पश्चात् यज्ञसेन अश्वमेघ-यज्ञ कर चक्रवर्ती राजा बन जायेगा।"

"योजना तो सुन्दर है, परन्तु है अव्यवहारिक।"

"मैंने महाराज से कहा था। मैं जब महाराज पुष्यमित्र के राज्याभिषेक के समय मगध मे गया था तो वहाँ के सेट्ठियो और शूद्रो के विचार जान आया था। दोनो पुष्यमित्र को भगवान का अवतार मान, पूजा करते हैं। ऐसी अवस्था मे छल-बल से यदि बृहद्रथ की विधवा को वहाँ की रानी बनाया गया, तो पूर्ण राज्य की जनता विद्रोह कर देगी।

"इसके अतिरिक्त पुष्यमित्र राज्य की रक्षा के लिए सेना की आवश्यकता को समझता है और उसने पाँच लाख चतुरंगिणी सेना तैयार कर रखी है। कदाचित् इस यज्ञ को सम्पन्न करने के लिए सेना मे और भी वृद्धि हुई हो। ऐसी अवस्था मे विदर्भ, आन्ध्र और कलिंग मिलकर भी मगध को परास्त नही कर सकेंगे।"

"यह तो विदर्भ का दुर्भाग्य है कि यज्ञसेन जैसा अभिमानी व्यक्ति यहाँ का शासक है।"

पिता-पुत्र का वार्तालाप तो यहीं समाप्त हो गया, परन्तु माधवसेन का मन शान्त नहीं था। उसके मन मे दो विचार काम कर रहे थे। एक तो यह कि राज्य स्वतन्त्र बना रहे और दूसरा राज्य मे सब जन-कल्याण हो।

उसके मन मे एक विचार आया और वह मगध सेनापति विद्रुम से मिल, कुछ निश्चय कर आया। उसने मगध की सेना से विदर्भ की रक्षा के लिए यत्न और संधि कर ली।

परिणाम यह हुआ कि समय पर माधवसेन की सहायता से मगध-सेना ने राजधानी पर अधिकार कर लिया और पूर्व इसके कि विदर्भ की सेना पीछे से आक्रमण करती, यज्ञसेन और उसका सेनापति मारे जा चुके थे। इनके मर जाने पर विदर्भ सेना ने निरुत्साहित हो शस्त्र डाल दिये।

माधवसेन बन्दी बना लिया गया था। अत वह सेनापति विद्रुम से मिल नही सका। सेनापति ने महामात्य राक्षस को बुलाकर अश्व के विषय मे पूछा। राक्षस ने कहा, "सेनापति! मैंने अभी मगध की सेवा स्वीकार नही की है।"

"तो महामात्य जानते है कि अश्व कहां है, इस पर भी बताना स्वीकार नही करते?"

"अश्व का पता बताने का तात्पर्य हुआ कि मैं अपने मृत स्वामी के साथ विश्वासघात करता हूं।"

इस उत्तर से विद्रुम बहुत ही परेशान था। इस कारण उसने राक्षस को भी बन्दीगृह मे डालने की आज्ञा दे दी।

अश्व की खोज निरन्तर जारी रही। राजधानी के सब द्वारो पर देख-भाल के लिए सैनिको का पहरा बिठा दिया गया। साथ ही एक घोषणा कर दी गई कि यदि दो दिन के भीतर यज्ञ का अश्व नहीं मिला तो नाग-रिको के घर-घर मे घुसकर उसकी खोज की जायेगी। इस खोज मे बाधा उपस्थित करने वाले को मौत के घाट उतार दिया जायेगा। इस घोषणा को वीरभद्र ने भी सुना। उसके सहायक सैनिक, जो अश्वपालक के रूप मे अश्वशाला में पहरा देते थे, राज्य पर मगध सेना का अधिकार होने पर,

भाग चुके थे और वीरभद्र अकेला ही अश्व की सुरक्षा का भार लिए बैठा था। सेनापति की घोषणा सुन, उसने निश्चय कर लिया कि चूंकि यज्ञसेन मारा जा चुका है, अत अश्व को बदी बनाये रखने का कोई लाभ नही। व्यर्थ में सारी प्रजा पर अत्याचार होगा, इसलिए अश्व का पता सेनापति विद्रुम को दे देना चाहिये। अत ऐसा निश्चय कर वह घर से निकला तो सौम्या भी उसके साथ चल पडी।

"किधर चल रही हो ?" वीरभद्र ने पूछा।

"आप बताइये, आप किधर जा रहे है ?"

वीरभद्र ने उसके मुख को देखते हुए कहा, "तुम अब मगध की रानी तो बनने से रही। मैं समझता हूँ कि इस स्थिति मे अश्व अब मगध सेनापति को वापस कर दिया जाय।"

"परन्तु पिताजी ! अश्व तो घुडसाल मे है न ?"

"परन्तु मैं वहाँ बिना सैनिको को साथ लिये नही जाऊँगा।"

"अच्छी बात है।" यह कहकर सौम्या वही खडी रह गई। वीरभद्र ने उसके मुख पर देखा, परन्तु वहाँ उसके विचारो का किसी प्रकार का भी सकेत न था, वह राज्यप्रासाद की ओर चल पडा।

सौम्या ने जब यह जाना कि उसका पिता अश्व को मगध-सेनापति को सौंपने जा रहा है, तो वह स्वय अश्वशाला की ओर चल पडी। उसको विदित था कि अश्व कहाँ रखा गया है। वह स्वय उसकी हत्या करना चाहती थी। राज्यप्रासाद की घुडसाल के प्राय सब अश्व विदर्भ सैनिक अपने-अपने लिये खोल कर ले गये थे और अश्वपालक तो पहले ही निकाल दिये गए थे। अश्वपालको के स्थान पर उनके वेश मे सैनिक रहते थे। वे भी अश्वशाला छोडकर चले गये थे।

जब सौम्या वहाँ पहुँची तो घुडसाल खाली पडी थी। सौम्या ने गुफा का द्वार खोला। इस गुफा के विषय मे उसने सुन रखा था, परन्तु वह वहाँ आज प्रथम बार ही आई थी। इस कारण अंधेरा देख, भीतर जाने से वह डर रही थी। कुछ देर वहाँ ठहरने पर उसको वहाँ कुछ-कुछ दिखाई देने

छड़ मिला, जो एक ओर से तीखा था। उसका यह किनारा इसलिए तीखा किया गया था, जिससे वह भूमि में सुगमता से गाढ़ा जा सके।

उसने उसका परीक्षण किया और उससे अच्छी अन्य कोई वस्तु न देख, उसी को लेकर चल पड़ी। अश्व के समीप पहुँच, उसने दीपक को एक ओर रख दिया और नेजे की भाँति छड को हाथ में ले, विचार करने लगी कि किस स्थान पर वार करे, जहाँ कम-से-कम परिश्रम से अधिक-से-अधिक आघात पहुँचाया जा सके। वह इसी निश्चय पर पहुँची कि पेट ही इस कार्य के लिए सर्वोत्तम स्थान है।

वह उस छड को तान, अपने पूरे बल से अश्व के पेट पर वार करने वाली थी कि किसी ने पीछे से उसके कंधे पर हाथ रख, उसको वार करने से रोक दिया। यह माधवसेन था।

सौम्या माधवसेन को पहचानती नहीं थी। अत उसने क्रोध में पूछा, "कौन हो तुम ?"

माधवसेन ने केवल यह कहा, "ठहरो !" उसी क्षण उसके साथ आये सैनिको ने सौम्या को घेर लिया। अपने को इस प्रकार घिरी देख, वह सामने खडे एक सैनिक पर लोहे के छड से झपटी। एक अन्य सैनिक ने, एक ही वार से उसका सिर धड से अलग कर दिया।

अश्व को सब सामान सहित तथा सौम्या का शव, गुफा से बाहर लाया गया। इस समय वीरभद्र तथा सेनापति विद्रुम अपने अंगरक्षको के साथ वहाँ आ पहुँचा। अश्व को हानिरहित पाकर सेनापति ने भारी प्रसन्नता प्रकट की। परन्तु माधवसेन ने सौम्या का धड और सिर सामने उपस्थित कर बताया कि यह स्त्री अश्व को मार डालने के लिए वहाँ पहुँच गई थी और यदि वे दो-तीन क्षण विलम्ब से पहुँचते तो अवश्य ही अश्व घायल हो चुका होता।

वीरभद्र ने सौम्या को पहचाना तो उसका मुख विवर्ण हो गया। माधवसेन ने बताया, "यही बृहद्रथ की विधवा स्त्री तथा इस वीरभद्र की कन्या सौम्या है।"

इससे वीरभद्र को भी बन्दी बना लिया गया। सौम्या का दाह-संस्कार कर दिया गया। पद्मा को जब विदित हुआ कि उसका पति और पुत्री दोनों अश्व को मार डालने के षड्यन्त्र मे पकडे गये हैं, तो वह अपने भाग्य को कोसती हुई, अनशन कर अपना प्राणान्त कर बैठी।

विदर्भ के पराजित होने का समाचार जब कलिंग और आन्ध्र देशो को मिला तो उन्होंने अश्व को अपने-अपने देशो से सुरक्षित निकल जाने देने मे, किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नही की।

इस प्रकार सफलता से अश्वमेध यज्ञ पूर्ण हुआ। इसकी पूर्णाहुति देने के लिए पुन सब उत्तरी भारत के नरेशो को आमन्त्रित किया गया और यज्ञ को बहुत ही धूम-धाम से समाप्त किया गया। यज्ञ के निर्विघ्न समाप्त होने की प्रसन्नता मे सब बन्दी मुक्त कर दिये गए। इस प्रकार वीरभद्र और राक्षस भी मुक्त हो गये।

पूर्णाहुति देते समय महर्षि पतजलि ने यजमान को आशीर्वाद दिया और भारत के नरेशो को इस यज्ञ मे सम्मिलित होने तथा इसके सफल होने मे, सहयोग देने के लिये धन्यवाद दिया।

महर्षि पतजलि ने धन्यवाद करते हुए कहा, "भारत-नरेशों को मैं इस नवयुग के आगमन पर बधाई देता हूँ। पिछले एक सौ वर्ष से भी अधिक काल से देश पर अज्ञानता की काली घटा छाई रही है। ये काली घटाएँ बौद्धमत की नही थी। हम बौद्धमत को भी भारत मे चल रही अनेक जीवन-मीमासाओ मे से एक मानते है। प्रत्येक व्यक्ति को अपना जीवन चलाने के लिए अपना-अपना मार्ग स्वीकार करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। परन्तु महाराज अशोक के काल से तो बौद्ध जीवन-मीमासा को, पूर्ण समाज की जीवन मीमासा बनाने का बलपूर्वक यत्न किया जाता रहा है। दुर्भाग्य से उस जीवन-मीमासा को राज्य-संचालन मे भी प्रयोग किया गया। उसका परिणाम, देश मे घोर अन्यायाचरण और उत्साह-हीनता का प्रसार होना, हुआ।

"हम पुन अपनी थाह पा गये हैं। नदी मे डूब रहे व्यक्ति की भाँति,

जैसे उसके पांव भूमि पर लग जाते है, वैसे ही हम आश्रय पा गये अनुभव करते है ।

"हम पुन. यज्ञमय जीवन पर विश्वास रखने लगे है । इस सब परिवर्तन को लाने मे महाराज पुष्यमित्र का अथक प्रयास ही कारण हुआ है । भारत के सब सम्राट् पुष्यमित्र को चक्रवर्ती राजा का पद देकर, इस नवीन युग के स्वागत मे सम्मिलित हुए है ।

"हमारी भगवान से प्रार्थना है कि वह हम भारतवासियो को सुमति और शक्ति दे जिससे हम देश और राष्ट्र को स्वतन्त्र, सबल और सत्यमार्ग का पथिक रख सके ।"

इसके पश्चात् पुष्यमित्र ने छत्तीस वर्ष तक चक्रवर्ती राज्य का भोग किया और देश ने इस राज्य मे अभूतपूर्व उन्नति की ।